DCEEC-101 (N)

आर्थिक विकास एवं पर्यावरण

परामर्श–समिति

प्रोफेसर सीमा सिंह — **कुलपति–अध्यक्ष**

प्रो. सत्यपाल तिवारी — निदेशक, मानविकी विद्याशाखा–कार्यक्रम संयोजक

श्री विनय कुमार — कुलसचिव–सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी	**अध्यक्ष**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ अनिल कुमार यादव	**संयोजक**	उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो.किरन सिंह		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. एम.के. सिंह		एम.जे.पी. रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली
डॉ. विश्वनाथ कुमार		एस.बी. पी.जी. कालेज, बड़ागाँव, वाराणसी
डॉ. अनूप कुमार		इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

सम्पादक

डॉ. चन्द्र प्रकाश राय — सह आचार्य, अर्थशास्त्र, डी.सी.एस.के. पी.जी. कालेज,मऊ

परिमापक

डॉ. अनिल कुमार यादव — सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

लेखक मण्डल

लेखक

डॉ. अनिल कुमार यादव

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त वि.वि., प्रयागराज

खण्ड–3 इकाई–4

डॉ. दिनेश यादव

सहायक आचार्य, अर्थशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

खण्ड–1 इकाई–1,2,3,4,5

खण्ड–2 इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8

खण्ड–3 इकाई–1,2,3

खण्ड–4 इकाई–1,2,3,4,5,6,7,8

मुद्रित– (माह), (वर्ष)

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – (वर्ष)

ISBN-

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, (माह) (वर्ष), (मुद्रक का नाम व पता)

आर्थिक विकास एवं पर्यावरण
DCEEC-101 (N)

खण्ड 1 – मूल अवधारणाएँ

1. प्राथमिक अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ
2. आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास, विकास के आर्थिक एवं गैर आर्थिक कारक
3. विकास के मान सकल राष्ट्रीय उत्पाद, PQLI जीवन स्तरीय निर्देशांक, मानव विकास (Human Development) एवं मानव विकास निर्देशांक (HDI)
4. उभरती हुई बाजार अर्थव्यवस्था
5. पर्यावरण एवं आर्थिक विकास

खण्ड 2 – अल्प विकास के सिद्धान्त

1. नव–क्लासिकी अपूर्ण बाजार सिद्धान्त, दरिद्रता का दुश्चक्र (नर्क्स) सिद्धान्त
2. मिर्डल का संचयी प्रक्रिया अवधारणा।
3. जनसंख्या एवं आर्थिक विकास, नेल्सन का निम्न स्तरीय संतुलन अवधारणा, (Backwash and spread effects) विपरीत बहाव व फैलाव प्रभाव।
4. लिबेन्सटीन का क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास अवधारणा, लुइस का द्विक्षेत्रीय विकास का मॉडल आदि।
5. संतुलित एवं असंतुलित वृद्धि का सिद्धान्त
6. रोजेन्स्टीन रोडान का ''प्रबल प्रयास'' सिद्धान्त व अन्य सिद्धान्त
7. जॉन रोबिन्सन का संवृद्धि मॉडल
8. तकनीकी द्वय मॉडल

खण्ड 3 – गरीबी एवं न्याय (सशक्तीकरण) के विषय

1. निरपेक्ष एवं सापेक्ष गरीबी
2. गरीबी निवारण हेतु सरकार की योजनाएँ
3. खाद्य सुरक्षा
4. शिक्षा एवं स्वास्थ्य विकास

खण्ड 4 – पर्यावरण

1. पर्यावरण की अवधारणाएँ, जैविक विविधता, वहन क्षमता
2. चक्रीय आर्थिक प्रवाह एवं पर्यावरण
3. पारिस्थितिकी विकास।
4. प्रदूषण एवं प्रदूषण एजेन्ट
5. पर्यावरण क्षरण एवं प्रभाव
6. पर्यावरणीय लेखांकन
7. पर्यावरण प्रबन्धन सिद्धान्त Cossetheorem, polluter pay principle
8. वर्तमान पर्यावरणीय वैश्विक प्रयास एवं संस्थाएँ
   – वियना कन्वेन्शन World summit (Vienna convention) 1985
   – पृथ्वी सम्मेलन

आर्थिक विकास एवं पर्यावरण

DCEEC-101 (N)

खण्ड–1

इकाई–01

प्राथमिक अर्थव्यवस्था की विषेषताऍं

इकाई का संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देष्य
1.3 प्राथमिक अर्थव्यवस्था
1.4 प्राथमिक अर्थव्यवस्था का महत्व
1.5 प्राथमिक/कृषि आधारित अर्थव्यवस्थाएं
1.6 प्राथमिक अर्थव्यवस्था की विषेषताएं
1.7 आर्थिक विकास में प्राथमिक अर्थव्यवस्था का योगदान/महत्व
1.7.1 खाद्य सुरक्षा एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली का आधार
1.7.2 राष्ट्रीय आय में योगदान
1.7.3 विकासशील अर्थव्यवस्था में प्राथमिक क्षेत्र
1.7.4 व्यापार में योगदान
1.8 प्राथमिक अर्थव्यवस्था की चुनौतियां
1.9 बोध प्रष्न /अभ्यास के प्रष्न
1.10 सारांष
1.11 शब्दावली
1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.13 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री
1.14 प्रष्नों का उत्तर
1.15 विषयनिष्ठ प्रष्न

1.1 प्रस्तावना– प्राचीन काल में प्राथमिक अर्थव्यवस्था का क्षेत्र इतना विस्तृत नहीं था अर्थात प्राचीन समय में प्राथमिक अर्थव्यवस्था का अर्थ सिर्फ कृषि से था। परन्तु आज प्राथमिक अर्थव्यवस्था में कृषि सम्बद्व क्षेत्र अर्थात कृषि, वानिकी, पषुपालन व मत्स्य क्षेत्रों को भी शामिल किया गया है। प्रकृतिवादियों ने (18 शताब्दी) में कृषि को अर्थात प्राथमिक अर्थव्यवस्था को अत्याधिक वरीयता दी थी। फलस्वरूप कृषि एक लाभदायक विकासोन्नमुखी के रूप में देखा जाने लगा। परन्तु ऐसा नहीं है कि इनसे पूर्व वणिकवाद में (16वी 18वी शताब्दी) निर्यात को वरीयता दी गयी कृषि क्षेत्र का महत्व नगण्य हो गया था अपितु कृषि क्षेत्र का महत्व पूर्व में भी था अन्तर केवल व्यापार में भागीदारी का था। प्राथमिक क्षेत्र सामान्य जनजीवन को प्रभावित करता रहा है। इसलिए इस क्षेत्र के विकास के लिए लगातार सरकारों द्वारा प्रयास किया जाता रहा है। अतः अर्थव्यवस्था के अध्यनन में प्रा0 क्षेत्र की जानकारी होना महत्वपूर्ण है हम आगे प्राथमिक क्षेत्र के योगदान तथ इसके अन्य पहलुओं पर विस्तृत चर्चा करेगे।

1.2 उद्देश्य–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. प्राथमिक अर्थव्यवस्था अर्थात कृषि सम्बद्व अर्थव्यवस्था की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2. प्राथमिक अर्थव्यवस्था की परिभाषा और उदाहरण दे सकेंगे जिनके आधार पर दैनिक जीवन के आर्थिक को पहलुओं को विष्लेषण कर सकेंगे।
3. प्राथमिक अर्थव्यवस्था के महत्व को समझ सकेंगे।
4. प्राथमिक अर्थव्यवस्था का रोजगार उद्योग व व्यापार में योगदान को बता सकेंगे।
5. प्राथमिक अर्थव्यवस्था की विषेषता बता सकेंगे।
6.प्राथमिक अर्थव्यवस्था की चुनौतियों को समझ सकेंगे।

1.3 प्राथमिक अर्थव्यवस्था–सभ्यता के प्रारम्भ से ही विष्व की आर्थिक गतिविधिया कृषि, पषुपालन, के आस–पास धूमती रही है। पूरी व्यवस्था कृषि से प्रारम्भ हो कर कृषि तक ही सीमित नही रही धीरे–धीरे कृषि क्षेत्र का विकास हुआ जैसे मानव सभ्यता के प्रारम्भ में मानव ने कृषि प्रारम्भ किया, कृषि में चावल गेंहू, जौ तथा अन्य फसलों का उत्पादन हुआ तथा कच्चे मास से खाद्यान की तरफ लोगों ने अपने खाद्य पदार्थ को प्रतिस्थापित कर दिया इस प्रकार कृषि इससे सम्बद्ध क्षेत्र का विकास प्रारम्भ हो गया। कृषि से सम्बद्व क्षेत्र के अन्तर्गत खेती, बागवानी, पशुपालन मुर्गीपालन, मछलीपालन इत्यादि को सम्मलित किया जाता है। यदि ध्यान से देखो तो यह पता चलता हे कि कृषि तथा इससे संबंद्व क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनो का सीधा उपयोग करते है। पहाड़ो, झरनो, तालाबो, नदियों इत्यादि के साथ ही प्राथमिक क्षेत्र का विकास होता गयां। जमीन खोद कर मिट्टी निकालना हो पहाडो को तोड़ कर इसे किसी अन्य रूप में प्रयोग करना हो तथा नदियों समुद्र स्रोतों से रेत का प्रयोग विभिन्न रूपों से करना हो। सभी प्राकृतिक रूप से उपलब्ध संसाधनो द्वारा ही होता है। प्रायः अर्थषास्त्र की भाषा में इसे खनन के रूप में देखा जाता है, को भी प्राथमिक क्षेत्र में सामिल किया जाता है।

इस प्रकार यह कह सकते है कि प्राथमिक क्षेत्र के अन्तर्गत कृषि, वानिकी, मछलीपालन, मुर्गीपालन, पषुपालन और खनन इत्यादि को शामिल किया जा सकता है। अथवा वह अर्थव्यवस्था जहॉ की प्रमुख गतिविधियां कृषि, वानिकी, पषुपालन, मुर्गीपालन, मछलीपालन और खनन के ऊपर अधिकाधिक निर्भर हो वह अर्थव्यवस्था प्राथमिकत क्षेत्र पर आधारित अर्थव्यवस्था कहलाती है। प्रायः यह देखने में मिलता है कि भारत, पाकिस्तान, नेपाल, भूटान, बंग्लादेष, तथा विष्व के अन्य अविकसित देषों की अर्थव्यवस्था प्राथमिक क्षेत्र के ऊपर अधिक निर्भर है यहाँ का विकास कम हुआ है।

1.5 प्राथमिक क्षेत्र पर आधारित अर्थव्यवस्थाएं– प्रायः सभी देषो की अर्थव्यवस्था प्राथमिक क्षेत्र पर कुछ न कुछ जरूर निर्भर होती है। इसका प्रमाण पुरातन भारतीय सहित्यों, वेदों तथा ग्रन्थों से भी प्राप्त होता है। जैसा पराषर संहिता में कृषि के महत्व को दर्षाते हुए कहा गया है कि कृषि जीवन का आधार है। इस प्रकार कोई भी देष चाहे विकसित हो या अविकसित उनकी अर्थव्यवस्था का मजबूत स्तम्भ यही है। प्राथमिक क्षेत्र में अन्तर केवल निर्भरता के प्रवणता की होती है। जो देष अपने प्राथमिक क्षेत्र अर्थात कृषि और इससे संबद्व क्षेत्र में अत्यधिक पूंजी का प्रवाह करने में सफल हो गये वहाँ आज कृषि का अधिक विकास हुआ है जहॉ कृषि क्षेत्र में पूंजी का प्रवाह कम हुआ वहाँ कृषि क्षेत्र कम विकसित हूई इस प्रकार तीसरी दुनिया (विकासषील देष) की अर्थव्यवस्थाएं कृषि के विकास में पीछे रह गयीं। भारत, मिस्र, याुगोस्लविया, मलेषिया तथा अधिकांष एशियाई देष, अफ्रीका और लेटिन अमेरीकी देषों की अर्थव्यवस्था में प्राथमिक क्षेत्र की अधिक योगदान रहा परन्तु समय के साथ ये देष अपने प्राथमिक क्षेत्र के विकास को बढ़ाने में सफल नही हुए अभी भी अविकसित देष जैसे अफ्रीकी देषो तथा एषियाई देषो की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है। कृषि तथा संबंद्व क्षेत्र की अर्थव्यवस्था में योगदान को देखते हुए उन सभी देषों को कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत परिभाषित करते है जहॉ कृषि क्षेत्र का योगदान विकास में अधिक होता है। उन देषों के निर्यात में सर्वाधिक भागीदारी कृषि तथा संबंद्व क्षेत्र के होते है तथा उन देषों में विकास की मुख्य कड़ी में कृषि आधारित उद्योग तथा कार्यक्रम शामिल होते है।

1.7 प्राथमिक अर्थव्यवस्था का विकास में योगदान–कृषि क्षेत्र किसी भी अर्थव्यवस्था में वह ढाँचा है जो विकास की कड़ी को मजबूती प्रदान करती है। जिस प्रकार मानव शरीर में रीढ़ की हड्डी का महत्वपूर्ण स्थान है ठीक उसी

प्रकार प्राथमिक क्षेत्र अर्थव्यवस्था के रीढ़ की हड्डी होती है। प्राथमिक क्षेत्र आज भी विकासषील अर्थव्यवस्थाओं की एक बहुत बडी को रोजगार प्रदान करती है, रोजगार के साथ–साथ यह क्षेत्र रोजमर्रा की जिन्दगी बिताने वाली जनसंख्या को एक बडा हिस्सा पेट भरने का कार्य करती है या विकासषील अविकसित देषों की बहुत बडी जनसंख्या का भाग्य के जीवन निर्वाह का सहारा है। आगे बिन्दुवार महत्व को रेखांकित किया जा रहा है–

01–जनसंख्या के बडे भाग को रोजगार।

02– सार्वजनिक वितरण प्रणाली की आधारषीलता/खाद्य सुरक्षा ।

03–राष्ट्रीय आय में अंषदान।

04–सभी क्षेत्रों के आधार के रूप में।

05–विकासषील अर्थव्यवस्था में महत्व।

06–व्यापार/वाणिज्य गतिविधियों में महत्व।

प्राथमिक क्षेत्र किसी भी देष की प्रषिक्षित जनषक्ति के साथ–2 अप्रषिक्षित जनषक्ति को रोगजार में बनाए रखने में महत्वपूर्ण योगदान करती है। यदि किसी परिवार में 10 सदस्य है तथा उन सदस्यों द्वारा किसी भी प्रकार प्रषिक्षण प्राप्त नही किया गया है और उन्हे रोजगार की आवष्यकता है और उन्हे रोजगार नही मिल रहा है तो ऐसे में सभी सदस्य अपने खेतों में कार्य करते रहते है तथा अपने आप को रोजगार में बनाए रखते है इस प्रकार देखा जाए तो द्वितीयक क्षेत्रों में लगे रोजगार को यदि देष की सम्पूर्ण कार्यषील जनसंख्या से निकाल या दिया जाए तो शेष कार्यषील जनसंख्या प्राथमिक क्षेत्रों में ही संलग्न रहती है इस प्रकार जनसंख्या का एक बहुत बडा भाग प्राथमिक क्षेत्र पर निर्भर रहता है। इस प्रकार जनसंख्या का एक बडा प्रतिषत प्राथमिक क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करता है।

1. खाद्य सुरक्षा सार्वजनिक वितरण प्रणाली का आधार–प्राथमिक क्षेत्र विभिन्न देषों में अलग–2 नामों से प्रचलित खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों का आधार है। यदि प्राथमिक क्षेत्र में उत्पादन अधिक न हो तो इस प्राकर की योजनाओं का संचालन दुरूह कार्य हो जाएगा। खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाली लगभग समस्त वस्तुओं का स्त्रोत प्राथमिक क्षेत्र ही होता है जेसे भारत में संचालित होने वाले खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम का क्रियान्यवन सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न का क्रियान्यवन सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रमों के अन्तर्गत संचालित होता है। और आनाज, दाले तथा तेल इत्यादि का वितरण किया जाता है। इस प्रकार वितरण में प्रयोग होने वाली सामाग्री प्राथमिक क्षेत्र से ही प्राप्त की जाती है।

2. जी0डी0पी0/राष्ट्रीय आय में योगदान–प्राथमिक अर्थव्यवस्था से आषय ही है प्राथमिक क्षेत्र पर आधारित अर्थव्यवस्था। इससे स्पष्ट है कि देश की आर्थिक गतिविधियॉ प्राथमिक क्षेत्र के ऊपर ज्यादा निर्भर रहेगी। निष्चित रूप से ज्यादा आर्थिक गतिविधिया जिस क्षेत्र में होगी अर्थव्यवस्था के विकास में, सकल घरेलु उत्पाद में या आय में उस क्षेत्र का योगदान ज्यादा रहेगा। यही कारण है कि विष्व की समस्त आर्थिक क्षेत्रों का विकास का क्रम प्राथमिक क्षेत्र से होकर ही आगे बढ़ता है। राष्ट्रीय आय तथा जी0डी0पी0 में योगदान भी इसी क्रम में होता है। तथा अल्पविकसित देषों में जी0डी0पी0 एवं रा0 आय में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान अधिक होता है जैसे–जैसे अन्य क्षेत्रों का विकास होता चला जाता है प्रा0 क्षेत्र का योगदान अपेक्षाकृत कम होता जाता है जैसे भारत में स्वतन्त्रता के वाद प्रा0 क्षेत्र का देष में जी0डी0पी0 में योगदान अधिक से अधिक जैसे–जैसे द्वितीयक और तितृयक क्षेत्रों का विकास प्रारम्भ हुआ प्रा0 क्षेत्र का जी0डी0पी0 में योगदान कम होता गया तथा वर्तमान 2021–22 में कृषि का जी0वी0ए0 में हिस्सेदारी लगभग 18.8 प्रतिषत है। विकसित देषों में कृषि तथा इससे संबद्व क्षेत्रों की हिस्सेदारी सम्पूर्ण जी0वी0ए0 में विकसित देषों की अपेक्षा कम होती है। क्योंकि विकासषील देष अभी अपने प्राथमिक क्षेत्र का दोहन नही कर पा रहे होते है। जबकि विकासषील देष अपने प्रा0 क्षेत्र का पूर्व में ही दोहन कर चुके होते है तथा वर्तमान दौर में अपनी औद्योगिक आवष्यकताओ को विकासषील देषों से पूरा करते है। कृषि क्षेत्र द्वितीयक क्षेत्रों के आवष्यकताओं एवं सेवाओ को आधार प्रदान करती है। न जाने कितने खाद्य उद्योग एग्रो प्राफिटेबल उद्योगों को कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होती है। क्षेत्र–व पार्ष्वगमी प्रभाव की क्रिया शीलता कृषि से सम्बद्वता स्थापित करती

है। उत्पादन की प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण उत्पादन में प्रयोग होने वाले का है। क्योकि आयात की उपलब्धता ही उत्पादन का आधार है। जो कृषि क्षेत्र से प्राप्त है। यही नही उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की भी कृषि क्षेत्र से किया जाता है जैसे रसायनिक उर्वरक, कीटनाषक, विद्युत शक्ति डीजल/पेट्रोल, कृषि उत्पादन के प्रारम्भिक चरण से तक में प्रर्याप्त होने वाली सभी सामग्री/मषीनरी, यातायात (ट्रेक्टर एवं इससे संबंधित) एवं अवसंरचना इत्यादि श्रृंखला प्रभाव के द्वारा औद्योगिक उत्पादन के मॉग को कर उत्पादन बढ़ाने का कार्य करती है। ठीक उसी प्रकार विभिन्न सेवाएं जिनके सृजन का मुख्य कारण कृषि होते है। उदाहरण के रूप में पत्थर की खिलौनो इत्यादि के सृजन का कार्य किसी न किसी लघु उघोग द्वारा संचालित की जाती है। तथा उत्पादित वस्तुओं का विभिन्न प्रदाताओं के द्वारा बाजार में अन्तिम उपभोक्ता तक पहुचायी जाती है। इस प्रकार देखा जाए तो बनाने में पत्थर/मिट्टी जो खनन द्वारा प्राप्त कि गयी होगी सीधे रूप में प्राथमिक क्षेत्र द्वारा उपलब्ध करायी जाती है।

इस प्रकार यह जा सकता है कि कृषि क्षेत्र या प्रा0 अर्थव्यवस्था, अर्थव्यवस्था के अधिकांष मॉगे (द्वितीय एवं तृतयक), क्षेत्र के विकास की पृष्ठ भूमि (आधार) उपलब्ध कराती है।

3, विकासषील अर्थव्यवस्था में प्रा0 क्षेत्र–विकासषील अर्थव्यवस्था की प्रमुख समस्या पूंजी निर्माण, रोजगार सृजन, अल्पआय, लाभकारी उद्योगो की स्थापाना, जनसंख्या वृद्वि तकनीक का आभाव, प्रविधि पिछडापन, साहस का आभाव की प्रणाली, जैसे ढेरो समस्याओं से है। इस प्रकार अन्य क्षेत्रों में पिछडेपन के कारण इनका मुख्य व्यवसाय कृषि एवं इससे संबंधित क्षेत्र सीमित हो जाता है। और अन्य क्षेत्रों के विकास की ओर ध्यान नही दे पाते क्योकि प्रायः ये देष अपनी न्यूनतम आवष्यकताओं की पूर्ति नही कर पाते है। औद्योगिक उत्पादन हेतु प्रारम्भ में अत्याधिक पूजी की आवष्यकता होती है। इस कारण औद्योगिक देषो से वस्तुओं का आयात कर लेते है। आज विकासवादी युग का प्रारम्भ हुए काफी समय बीत गया है इसमें जो भी देष उक्त समस्याओं के निवारण हेतु उचित योजनाओं का निर्माण व क्रियान्यवन क्रियाषीलता कर पाया काफी हद तक उक्त समस्याओं का निराकरण करने में सफल रहा। भारत, पाकिस्तान जैसे बहुत देषों एषियायी और अफ्रीकी देषों की अर्थव्यवस्था दषक से कृषि क्षेत्र पर पूर्णतः निर्भर थी परन्तु समय के साथ जिन देषों न अपनी विकास स्ट्रेटजी में परिवर्तन किया उनकी स्थिति वर्तमान में काफी अच्छी है। आनाजों फलों तथा सब्जियों तथा मषीन कच्चे माल के क्षेत्र से संबंधित प्रसंकरण उद्योगो को यदि उचित दिषा में विकास किया जाए तो इसकी संभावना अधिक है कि कोई देष विकास के रास्ते में प्राथमिक क्षेत्र के रास्ते से भी विष्व पटल पर अलग पहचान बना सकता है। जैसे जापान में मषीन कच्चे माल से प्रसंकरण के लिए विष्व स्तर पर अपना अलग पहचान बना रही है। इस प्रकार की संभावनाएं विकसित देषों की अपेक्षा विकासषील देषों में अधिक है। इस प्रकार भारत के अनेक कृषि वस्तुओं तथा बागवानी की वस्तुओं को विष्व उत्पादन/बाजार में विषेष स्थान प्राप्त है तथा विष्व में अग्रणी देषों में सुमार होता है। अतः विकासषील देषों को अपने प्राथमिक क्षेत्रों को अत्याधिक पूजी प्रवाह, जीवन निर्वाह मजदूरों का कृषि क्षेत्र से औद्योगिक क्षेत्र में तथा कृषि सम्बद्व क्षेत्रों का से करते हुए लाभ उठाना चाहिए।

4. प्राथमिक क्षेत्र व व्यापार तथा वाणिज्य– विकासषील और विकसित दोनो अर्थव्यवस्थाओं को अपने उत्पादन क्षमता को बढ़ाने हेतु या उच्च स्तर तक बनाए रखने हेतु लगातार पूंजी निवेष की आवष्यकता होती है। और यह व्यापार व गतिविधियों से प्राप्त की जा सकती है। प्रारम्भिक क्षेत्र भी विष्व व्यापार की असीमित संभावनाए रखता है। आज विष्व व्यापार में कृषि व इससे संम्बद्व क्षेत्रों का योगदान लगातर गिरता जा रहा है इसका प्रमुख कारण प्राथमिक क्षेत्रों की तरफ अर्थव्यवस्थाओं का विकास के क्रम में कम मुकाब व अपने उपलब्ध संसाधनो का उचित दोहन न हो पाना है। इससे ये देष लगातार अपने आप को प्राथमिक क्षेत्र के विकास से हटाकर द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र के उपर ध्यान किये हुए है। परन्तु ध्यान रखना चाहिए की बिना नींव मजबूत किये यदि भवन का निर्माण कराया जाए तो वह भवन दिखने में भले ही सुन्दर दिखे परन्तु व विपरीत परिस्थितियों में ऐसे भवन गिर ही जाते है। हाल के वर्षो में जब सम्पूर्ण विष्व में उत्पादन तथा सेवाओं का विस्तार (द्वितीयक व तृतीयक क्षेत्र) महामारी के कारण बन्द हो गया था बहुत से देष पूर्णतः द्वितीयक/तृतीयक क्षेत्र पर निर्भर रहते है, में खाद्य सामाग्री तथा जीवन निर्वाह जो प्राथमिक क्षेत्र में आसानी से उपलब्ध होते है अन्य देषों की तरफ सहायता की आष

लगाए बैठना पड़ा या इन परिस्थितियों से भविष्य में निपटने हेतु समस्त अर्थव्यवस्थाओं को ध्यान रखना चाहिए की जनसंख्या विस्फोट, बेरोजगारी, मंदी, स्फीति जैसे समस्याओं परिस्थतियों के भयावह परिणाम को कम करने हेतु आवष्यक है कि उनका प्रा0 क्षेत्र/अवसंरचनात्मक विकास पूर्ण रहे और एक बन्द अर्थव्यवस्था की परिस्थिति आ जाने पर लोग सामान्य वस्तुओं के लिए सड़को पर न उतर पाये इसका परिणाम यही होगा कि व्यापार तथा वाणिज्य में प्राथमिक क्षेत्र का योगदान भी बढ़ जायेगा।

1.8 कृषि आधारित/अर्थव्यवस्था की चुनौतियां।

प्राथमिक अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख चुनौतियाँ निम्न प्रकार है–

01– पूंजी निर्माण की निम्न दर
02–जनसंख्या का अत्यधिक दवाब
03– गरीबी, कुपोषण, सुविधा की कमी एवं निम्न रहन–सहन
04– कृषि पर अत्यधिक निर्भरता
05– औद्योगिक विकास में पिछड़ापन
06– कृषि में परम्परागत उत्पादन या कृषि का न होना
07– साहसी का आभाव
08– आय का असमान वितरण
09–तकनीकी/प्रविधिक रूप से अविकसित
10– निर्यात उन्मुखी माहौल का न होना
11– पूंजी का अल्पता
12– श्रम की बहुतमया
13– षिक्षा प्रणाली/रोजगार षिक्षा का आय
14– मानव पूजी (Human capital) का उचित दोहन नही।
15– प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का आभाव
16– रोजगार के उचित औसत नही।
17– उत्पादक वस्तुओं पर ज्यादा खर्च।
18– बचत का न हो पाना।
19– दोषपूर्ण आर्थिक नीतियॉ।
20– भष्ट्राचार युक्त प्रषासनिक प्रणाली।
21– दोषपूर्ण सामाजिक प्रणाली।
22– रूदिवादियों का वर्चस्व/सामाजिक कुरीतियों का प्रचलन में होना।
23– अविकसित बाजार/बाजार प्रणाली।
24–ऋण जाल में फंसे होना।
25– आन्तरिक सुरक्षा के मामलों पर निस्फल होना।
26– क्षेत्रीय व राजनैतिक अंसुलन।
27– प्रदर्षन प्रभाव का हावी होना।

01.प्राथमिक क्षेत्रों में पूजी निर्माण की प्रक्रिया की दर धीमी होती है क्योंकि इस क्षेत्र में अधिकांष लोगों की आय, जीवन निर्वाह आय के बराबर या इससे भी नीचे होती है जिनसे प्राथमिक क्षेत्र पर आधारित अर्थव्यवस्था में निवेष लगभग नगण्य हो जाता है और यदि होता भी है तो उसका प्रभाव लाभकारी नही होता है। प्रायः सभी प्राथमिक क्षेत्र की अर्थव्यवस्थाओं का विकास ही होता है अर्यता अविकसित ढाचा भी निम्न पूजी निर्माण का कारण है।

अर्थात निम्न पूजी निर्माण की दर भी कृषि आधारित अर्थव्यवस्थाओं की समस्या है। जिसका निराकरण आवष्यक है।

02.कृषि आधारित अर्थव्यवस्था विकास के अपने प्रारम्भिक अवस्था में होती है। इस कारण यहा जनसंख्या का अधिक दबाव होता है। यहॉ जनसंख्या का एक बहुत बडा भाग आश्रित जनसंख्या के रूप में बेरोजगार पड़ी रहती है। जिस कारण इन अर्थव्यवस्थाओं में जनसंख्या का दबाव अधिक होता है। जो इनके विकास में बाधक होती है। जनसंख्या का अधिक होना बाधक नही होता है जब किसी देष में विकासषील जनसंख्या का सही ढग से उपयोग हो या कृषि क्षेत्र से उद्योग तथा सेवा क्षेत्र में हो। अर्थात जो लोग बेरोजगार है उनके रोजगार हेतु उन नये क्षेत्रों की खोज सुनिष्चित करना आवष्यक है।

03. गरीबी, कुपोषण, स्वास्थ सुविधा एवं निम्न रहन–सहनः–कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की अधिकांष जनसंख्या गरीबी में जीवन करती है। इनके रहन–सहन का स्तर पूॅजीवादी अर्थव्यवस्था के लोगो के जीवन स्तर से निम्नतर होता है। इन अर्थव्यवस्थाओं में संबंधित सुविधाओं का अभाव होता है। जिससे विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रसित होने की संभावना बनी रहती है। प्राथमिक उपचार संबंधित व्यवस्थाओं का भी आभाव होता है। कुपोषण की दर अपेक्षाकृत अधिक रहती है क्योंकि अर्थव्यवस्था की एक बड़ी जनसंख्या को आवष्यक न्यूनतम संतुलित आधार लम्बे समय तक नहीं मिलता है। जिस कारण महिलाओं, बच्चों का शारिरिक विकास अवरूद्व हो जाता है। अतः गरीबी कुपोषण, स्वस्थ सुविधाओं का आभाव इन देषो की प्रमुख समस्याओं में रहा है।

04. कृषि पर अत्यधिक निर्भरता– अर्थव्यवस्थाओ की एक विषेषता कृषि पर अत्यधिक निर्भरता भी है ये देष अपने कृषि उत्पादित वस्तुओं के आधार पर ही देष की अर्थव्यवस्था को सुदृढता प्रदान करने में विष्वास रखते है। इनकी व्यापार में कृषिगत वस्तुओं की अधिकता रहती है। परन्तु प्रमुख समस्या कृषि क्षेत्र का परम्परागत रूप में अभी भी बना रहता है। ये देष समय और आवष्यकता के अनुरूप अपने कृषि अवस्थापना का विकास नही कर पाते इस कारण कृषि क्षेत्र का योगदान आथिक विकास में कम होता जा रहा है।

05–औद्योगिक पिछडापन भी कृषि आधारित अर्थव्यवस्थाओं की एक प्रमुख समस्या है। प्रा0 अर्थव्यवस्थाओं में पूजी प्रवाह इतना कम होता है कि ये देष अपने दैनिक आवष्यकताओं की पूर्ति में ही परेषान रहते है इनकी बचत का अधिकांष भाग उपभोग पर खर्च होता है। जिस कारण औद्योगिक निवेष के लिए धन की कमी रहती है और औद्योगिक प्रतियोगिता में पिछडापन बना रहता है। औद्योगिक पिछडापन विकास में वाधक होता है।

06–कृषि क्षेत्र में पारम्परिक तरीको को छोडकर आधुनिक तकनीकी का प्रयोग नही होना भी प्रा0 अर्थव्यवस्थाओं के पिछडेपन का कारण होता है। प्रा0 अर्थव्यवस्थाओं बाजार का विकास पूर्ण होने से कृषि के वाणिज्यीकरण में समस्या बनी रहती है। क्योंकि आधुनिक मषीनो का प्रयोग नही होने से कृषि लागत बढ़ती जाती है और उत्पादन भी प्रभावित होता है। वाणिज्यकरण के वजह से कृषि लाभ भी बढ़ता है परन्तु इन देषों में इसका लाभ नही उठा है क्योंकि ये अभी भी मोटे आनाज तथा उपभोग से संबंधित वस्तुओं का उत्पादक अधिक करते है। जिस कारण ये अर्थव्यवस्थाएं पिछडी रहती है।

07–साहसी का अभाव–प्रा0 अर्थव्यवस्थाओं में निवेष हेतु शाहसी का अभाव होता है। साहसी का अर्थ उस व्यक्ति से है जो निवेष के लिए तैयार रहे तथा लाभ जन्म परिस्थितियों में लाभ प्राप्त कर सके। दूसरें शब्दों में नये क्षेत्रों जहां के विषय में बहुत अधिक जानकारी न हो, में धन निवेष करने का कार्य जो व्यक्ति करता है उसे साहसी कहते है। चुकी प्रा0 अर्थव्यवस्थाओं में विकास की आपार संभावनाए होती है परन्तु साहस के आभाव में उसका समुचित उपयोग नही हो पाता है। नीत नये योजनाओं, क्षेत्रों का विकास हो रहा है। परन्तु प्रा0 अर्थव्यवस्थाओं में इसका लाभ विकसित अर्थव्यवस्थाओं के साहसनीयों द्वारा उठाया जा रहा है जिस कारण/धन/लाभ किसी अन्य देष में स्थानांतरण हो जा रहा है और विकास की इस दौड़ में प्रा0 अर्थव्यवस्थाओं पर आधारित देष पिछड़े रह जाते है।

08–कृषि आधारित अर्थव्यस्थाओं की एक प्रमुख समस्या आय असमानता का अर्थ की संपूर्ण अर्थव्यवस्था का बहुत बडा हिस्सा कुछ चुने हुए लोगो या बहुत कम जनसंख्या के पास संकेन्द्रीत हो जाता है तथा देष की बहुत बडी

आजादी गरीबी, भुखमरी, कुपोषण और अषिक्षा का षिकार बना रहती है। अतः उचित आय वितरण संगत समस्या का निवारण किया जा सकता है। जो इन देषो की प्रमुख समस्या है।

09—ये देष तकनीकी प्रावधिक रूप से कम विकसित होते है। किसी भी को तकनीकी रूप से विकसित होने के लिए सबसे पहली आवष्यकता निवेष की होती है। चुकी कृषि आधारित अर्थव्यवस्थाओं में पूजी निर्माण की गति गतिमन्द होती है। जिस कारण निवेष नही होता है और तकनीकी। प्रावधिक विकास नही हो पाता है। इन्ही समस्याओं के निराकरण हेतु प्रा0 अवस्था जैसे देष या कृषि अर्थव्यवस्था वाले देष आज विदेष विष्वविद्यालयो, षिक्षण संरचनो के लिए अपने देष में अवसंरचना विकसित कर ने तथा संस्थाओ के संचालन हेतु अनुमति प्रदान करने लगे है।

10—निर्यात उन्मुखी माहौल की अनुपस्थिति—कृषि आधारित देषो/अर्थव्यवस्थाओं की एक समस्या इन देषों में निर्यात उन्मुखी माहौल का न होना भी है। इन देषो में अधिकतम कृषि पैदावार निर्यात उन्मुखी माहौल न होने के कारण बर्वाद हो जाते है। अतः इन देषो को विदेषो में कृषि आधारित मॉग की पूर्ति अपने आपको ढाल करना रखना चाहिए तथा अपने उपभोग अधिकतम उत्पादन को निर्यात के माध्यम से बाहर भेजकर लाभ अर्जित करना चाहिए।

11—पूजी की अत्यता—कृषि आधारित देषों में मुख्य समस्या पूजी की कमी है। क्योंकि इन देषों की अर्थव्यवस्थाओं में उत्पादन श्रम आजादी अधिक होता है और उत्पादन प्रक्रिया में आवष्यकता से अधिक श्रमषक्ति रूपी रहती है जिसे लाभ का वितरण अधिक हो जाता है तथा साहसी के पास निवेष हेतु पूॅजी की मात्रा कम बचती है। जिससे पूजी का निर्माण नही हो पाता। अतः पूजी अल्पता भी इन देषों की एक विषेषता होती है। तथा इस समस्या का समाधान कृषि प्रधान देषों में एक कठिनाई का कारण बना हुआ है।।

12—श्रम की बहुता—कृषि आधारित देष श्रम बाहुल्य देष होते है। अर्थात पूॅजी की कमी के कारण उद्योगो का सृजन नही होता है। और देष में बहुत बड़ी जनसंख्या का भाग अधिक है जो बिना किसी प्रषिक्षण के होती है इनके पास कोई— नही होती है जिस कारण ये अच्छे जगह कार्य भी नही कर पाते है और अनस्किल्ड लेबर रह जाते है। इन देषों द्वारा नीतियों का अनुरक्षण किया जाता है तो अपने श्रम बाहुलता का अर्थिक लाभ उठा सकते है। जिससे में विकास के मार्ग में आगे बढते।

13—षिक्षा प्रणाली/रोजगार परक षिक्षा का आभाव—अविकसित देषों में षिक्षा का विकास भी नही हुआ होता है और षिक्षा व्यवस्था— तरीके से संचालित हो रही होती है पाठ्यक्रम में—का आभाव होता है। आयु और सिखने—सिखाने की प्रक्रिया सतत वाधित होती रही है। संरचनात्मक विकास भी आधुनिक मॉग के अनुसार नही होता है। अतः बदलते समय के अनुसार षिक्षा व्यवस्था के समायोजन का आभाव होता है जिससे इन देषों के युवाओं को रोजगार परक षिक्षा बही प्राप्त हो पाती है। फलस्वरूप में ही के युवा बिना किसी रोजगार के अतीत जनसंख्या के भार को बढ़ा रहे है होते है। अतः विकास के क्रम में सबसे मजबूत स्तम्भ है षिक्षा क्योकि बिना षिक्षा के भविष्य निर्माण की सभी योजनाएं असफल ही होती है।

14—मानव पूॅजी को दोहन की समस्या भी कृषि आधारित अर्थव्यवस्थाओं की प्रमुख समस्या है। इन अर्थव्यवस्थाओं में पर्याप्त श्रमषक्ति होती है। मानव विषाल जनसंख्या का सही ढ़ग से उपयोग नही होता है। यदि ये देष अपनी मानव पूंजी को स्किल को उपयोग में लाए तो आर्थिक लाभ कमा सकते है। परन्तु कोई भी देष इस प्रतियोगिता भरे माहौल में जनषक्ति की मॉग क्यो करेगा अतः इन देषो द्वारा अपने मानव पूॅजी का सही प्रयोग किया जाता है तो निष्चित रूप से लाभ प्राप्त होता है।

15—प्राकृतिक संसाधनो का दोहन—प्रायः अविकसित देषों में प्राकृतिक संसाधन की प्रचुर मात्रा उपलब्ध होती है। और विकसित देष लगातार इन संसाधनों का दोहन करने का प्रयास करते रहते है। तथा अविकसित देषो से कच्चे माल प्राप्त करके उन्हे ही वापस कई गुना अधिक दाम में बेचते है। चुकि अविकसित देषों में पूॅजी का अभाव होता है उन्नत तकनीकी नही होती है। जिससे ये देष अपने प्राकृतिक संसाधनो का प्रयोग कर सके। कुछ संसाधनों का प्रयोग करते भी है तो इनका पूर्ण दोहन नही होता है मे अपने उत्पादन के पूर्ण स्तर उत्पादन नही कर रहे होते है

जिससे इनको अधिकतम लाभ की प्राप्ति नही होती है। इन देषो के लिए यह अति आवष्यक है कि में उचित तकनीकी का प्रयोग करते हुए अपने संसाधनो का पूर्ण दोहन करे जिससे पूजी निर्माण की दर तेज हो सके और विकास की पहिया और तेज हों।

16–रोजगार के अवसर–अविकसित देषो मे रोजगार के अवसर उपलब्ध न होना एक बहुत बड़ी समस्या है। इन देषों में रोजगार सृजन का अधिकतम क्षेत्र कृषि क्षेत्र ही होता है परन्तु कृषि क्षेत्र में भी रोजगार सृजन का अपना अलग प्रतिमान है। जहा देषों की अधिकाधिक जनसंख्या कृषि क्षेत्र में लगी रहती है। कृषि में नवाचार की कमी होती है। कृषि में विकास की संभावनाए बिना द्वितीयक क्षेत्र में ही होता है जिस कारण रोजगार का सृजन नही हो पाता और उपलब्ध श्रमषक्ति का बहुत बडा भाग रोजगार के औसर उपलब्ध नही होने के कारण बेरोजगार बना रहता है।

17–वस्तुओं पर खर्च–अनुउत्पादक वस्तुओं पर अत्यधिक खर्च करना भी इन देषो के लोगों की एक विषेषता होती हे। प्रायः इन देषो के लोग अपने बचत का बहुत बड़ा भाग, भोजन, कपड़ा, मनोरंजन और विलसिता के वस्तुओं पर खर्च करते है जिससे उत्पादक वस्तुओं या कार्यो के लिए इनके पास धनराषि शेष नही बचती। अतः इन देषो को अपने बचत को निवेष में बदलने हेतु प्रयास करना चाहिए।

1.9 बोध/प्रष्न अभ्यास के प्रष्न

बहुविकल्पीय प्रष्न

1. निम्नलिखित में प्राथमिक अर्थव्यवस्था के लक्षण है–

क. कम बचत

ख. अत्यधिक जनसंख्या

ग. गरीबी व कुपोषण

घ. उपरोक्त सभी

2. प्राथमिक अर्थव्यवस्था का अर्थ है–

क. कृषि अर्थ व्यवस्था

ख. औद्योगिक अर्थव्यवस्था

ग. सेवा अधारित अर्थव्यवस्था

घ. उपरोक्त में कोई नहीं

3. निम्नलिखित में प्राथमिक अर्थव्यवस्था का विकास में योगदान है–

क. विकास के लिये मानव पूजीं उपलब्ध कराना

ख. सेवा क्षेत्र को निर्मित वस्तु प्रदान करना

ग. कच्चे माल उपलब्ध कराना

घ. उपरोक्त में कोई नहीं

4. प्राथमिक अर्थव्यवस्था में पूजी की अनुपलब्धता का कारण है–

क. कम बचत

ख. अत्यधिक उपभोग

ग. अत्यधिक गरीबी

घ. उपरोक्त सभी

1.10 **सारांषः–** प्राथमिक अर्थव्यवस्था तमाम कमियों के बावजूद भी देष के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। प्राथमिक क्षेत्र के साथ–साथ द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्र को भी प्रर्याप्त मात्रा में उत्पादन के साधन उपलब्ध कराना, बड़ी जनसंख्या को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में योगदान देना, मन्दी, स्फीतिक, बेरोजगारी की स्थिति में देष के विकास दर को एक सीमा से नीचे न आने देने में मदद करना इत्यादि महत्वपूर्ण कार्य

प्राथमिक अर्थव्यवस्था द्वारा किया जाता है। फिर भी दिन प्रतिदिन प्राथमिक अर्थव्यस्था का विकास अपेक्षानुसार कम हो रहा है। इसके लिये पूंजी अल्पता, अषिक्षा, खर्च, रोजगार के अवसर इत्यादि सम्बन्धित समस्याओं का निदान करना अतिआवष्यक है।

1.11 शब्दावलीः–

जी0डी0पी0– किसी अर्थव्यवस्था के सीमा के अन्दर एक वित्तीय वर्ष के अन्तर्गत उत्पादित अन्तिम वस्तुओ, सेवाओं का मौद्रिक मूल्य।

बचत– आय का वह भाग जो उपभोग न हुआ हो

खाद्य सुरक्षा– प्रत्येक व्यक्ति को खाद्य सामग्री उपलब्ध कराना

मानव पूंजी– जिन मनुष्यों में उत्पादन करने का गुण हो मानव पूँजी कहलाते हैं।

रोजगार परकशिक्षा– वह षिक्षा जिसको प्राप्त करने के बाद व्यक्ति को रोजगार मिलने में सहायता हो।

राष्ट्रीय आय– देष के समस्त स्त्रोतो से प्राप्त होने वाली आय का योग

1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

एम.एल.झिंगन (2022) आर्थिक विकास एवं नियोजन वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।

आई0सी0धींगरा (1987) इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया एस. चन्द्र नई दिल्ली।

एस.एन.लाल (2022) – 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज।

Agarwal R. C.(1907), "Economics of Development and Planning" Lakshmi Narayan

Taneja M. L. & Myer R. M. (1910), "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co- Delhi.

1.13 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

Myrdal G- : Economic Theory and Under Developed Regions 1957

एस. पी. सिहं (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन एस चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, (2020) 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ।

एम. थामस एण्ड स्काट जे. कैलन, (2013) 'इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेष।

1.14 प्रष्नो का उत्तर–

1. घ. उपरोक्त सभी
2. क. कृषि अर्थ व्यवस्था
3. ग. कच्चे माल उपलब्ध कराना
4. घ. उपरोक्त सभी

1.15 विषयनिष्ठ प्रष्न

1. प्राथमिक अर्थव्यस्था का क्या अर्थ है? उदाहरण सहित समझाइये।
2. प्राथमिक अर्थव्यवस्था का विकसाषील देष के विकास में क्या योगदान है?
3. प्राथमिक अर्थव्यस्था की समस्याए तथा उनके निदान पर टिप्पणी लिखिए?

खण्ड–01

इकाई–02

आर्थिक संवृद्धि एवं आर्थिक विकास, विकास के आर्थिक एवं गैर आर्थिक कारक

इकाई का संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देष्य

2.3 आर्थिक विकास

2.4 आर्थिक सवृद्धि

2.5 अर्थिक विकास तथा अर्थिक संवृद्धि

2.6 अर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

आर्थिक कारक

गैर आर्थिक कारक

2.7 अर्थिक संवृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक

आर्थिक कारक

गैर आर्थिक कारक

2.8 सारांष

2.9 षब्दावली

2.10 उपयोगी पुस्तकें

2.11 बोध/अभ्यास के प्रष्न

2.12 वस्तुपरक प्रष्न

2.1 प्रस्तावनाः–

सामान्य बोलचाल और सम में संवृद्धि तथा विकास को प्रायः एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग किया जाता है परन्तु अर्थशास्त्र में दोनो षब्दों में विभेद किया जाता है। आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास दोनो षब्द एक दूसरे से किस प्रकार अलग है तथा एक दूसरे के किस तरह पूरक है इस बात की विस्तृत व्याख्याओं के विवरण प्राप्त करेगे। क्या आर्थिक संवृद्धि के बिना विकास संभव है के संबंध में भी जानकारी प्राप्त करेंगे। क्या आर्थिक विकास के बगैर आर्थिक संवृद्धि संभव है। यदि नही तो कैसे और यदि हाँ तो किस प्रकार का विवरण नीचे प्राप्त करेंगे। साथ ही आर्थिक विकास और संवृद्धि कैसे साथ–साथ चलने वाली प्रक्रिया है पर भी प्रकाष डाला जाऐगा।

2.2 उद्देश्यः– इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र–

1. आर्थिक विकास क्या होता है, के बारे में जान सकेंगे।
2. अर्थिक संवृद्धि के विषय में अवगत हो सकेंगे।
3. आर्थिक विकास व संवृद्धि में विभेद कर सकेंगे।
4. आर्थिक विकास व संवृद्धि को प्रभावित करने वाले कारकों को जान सकेंगे।
5. आर्थिक विकास में बाधक/सहायक कारकों को वर्गीकृत का सकेंगे।
6. आर्थिक संवृद्धि के आर्थिक कारणों को जान सकेंगे।
7. आर्थिक विकास के आर्थिक कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।
8. आर्थिक संवृद्धि व विकास के कारणों का जान सकेंगे।

9. विद्यार्थी विकास और संवृद्धि को की अवधारण को समक्ष सकेंगे।

2.3 आर्थिक विकास

अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने हेतु सरकार, निजी क्षेत्र या अन्य लोगों द्वारा की जा रही आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप उत्पन्न वह प्रमाण जिसका मापन सामान्य रूप से संभव न हो या आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के चरो में गुणात्मक परिवर्तन को आर्थिक विकास में सम्मिलित करते है। आर्थिक विकास एक विस्तृत अवधारणा है जो अपने आप में परिणात्मक और गुणात्मक दोनो परिवर्तनों को सहेजे हुए हैं। दूसरे षब्दों में आर्थिक गतिविधियों के फलस्वरूप आर्थिक चरों में कुछ–कुछ परिवर्तन हेाता है। आर्थिक चरों में परिवर्तन को समान्यताः हम सीधे–सीधे माप सकते हैं जब हम इन आर्थिक अैर अनार्थिक दोनो चरो का एक साथ विचार करते है तो आर्थिक विकास की बात करते हैं। उदाहरण स्वरूप जब किसी देष की राष्ट्रीय आय बढ़ाने के साथ–साथ जीवन गुणवत्ता, षिक्षा, स्वस्थ्य सेवाएं, वायु, पोषण स्तर, रोजगार, अर्थात सामाजिक, आर्थिक, रजनैतिक और सामूहिक चरों में परिवर्तन होता है। तो आर्थिक विकास होता है।

आर्थिक विकास की अवधारणा व्यक्तिनिष्ठ है अर्थात आर्थिक विकास तभी कहा जायेग जब जीवन की गुणवत्त में सुधार हो आर्थिक विकास में देष में उपलब्ध उत्पादन के समस्त साधनों का सर्वोत्तम दोहन होता है। जब हैपीनेस इन्डेक्स, मानव विकास सूचकांक और समामजिक सूचकांक, प्रेस सूचनाओं में परिवर्तन होता है तो यह माना जाता है कि देष में आर्थिक विकास हो रहा है। यह कहा जा सकता है कि आर्थिक विकास की स्थिति में परिवर्तनों के साथ–साथ गुणात्मक परिवर्तन के पहलुओं पर भी विचार किया जाता है।

2.4 आर्थिक संवृद्धिः–

किसी अर्थव्यवस्था में पवितर्न के द्वारा आर्थिक संवृद्धि को दर्षाया जाता है। अर्थव्यवस्था के चरों को हम जब संख्यात्मक देते हुए बात करते हैं तो यह आर्थिक संवृद्धि का उदाहरण होता है। प्रायः हम सकल घरेलू उत्पाद, षुद्ध घरेलू उत्पाद, संवृद्धि दर के विषय में सुनते हैं। जैसे यदि हम एक सामान्य सा उदाहरण समान्यजन जीवन से लें माना कोई बालक है जिसका जन्म जनवरी 2023 में हुआ जन्म के समय उसका वनज 3 किग्रा0, लम्बाई 25 सेमी0, अंगुलियों की औसत 11 सेमी0 है और यदि 6 माह बाद हम उसी बालक की बात करते हैं जिसकी लम्बाई 01 जुलाई, 2023 को 35 सेमी0, वजन 4½ किग्रा0 तथा उंगुलियों की लम्बाई 1½ सेमी0 तथा दांतो की संख्या 2 है तो हम उन बालक के संवृद्धि की बात करते है न कि विकास की। ठीक उसी प्रकार अर्थव्यवस्था के आर्थिक चरों में परिणामत्क (संख्यात्मक) परिवर्तन को व्यक्त करते है तो उसे आर्थिक संवृद्धि के रूप में परिभाषित करते हैं।

सामान्यतः आर्थिक संवृद्धि का अर्थ अर्थव्यवस्था में राष्ट्रीय आय के परिवर्तन से लगाया जाता है जैसे यदि 2010 में किसी देष की आय रू0 1500 हजार करोड़ है तथा वर्ष 2020 में उस देष की आय बढ़ कर 1650 हो गयी अर्थात 10 प्रतिषत की वृद्धि हुई इस प्रकार 10 वर्षों में संवृद्धि की दर 10 प्रतिषत होगी। इससे स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था के जिस भी चर का मापन संभव है आर्थिक वृद्धि से संबंधित चर कहलाता है।

2.5 आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकासः–

आर्थिक संवृद्धि और आर्थिक विकास में संबंधों की व्याख्या एक दूसरे के पूरकता के रूप में प्रायः की जाती है जैसे आर्थिक विकास तभी कहा जाएगा जब जीवन की गुणवत्त में सुधार हो और जीवन की गुणवत्ता में सुधार हेतु आवष्यक है, षिक्षा, स्वास्थ्य और पौष्टिक भोजन सभी को उपलब्ध कराना । यह तभी

संभव है जब राष्ट्रीय आय में बढ़ोतर हो, क्योंकि बिना पैसे इसमें बढ़ोतरी संभव नही है अर्थात राष्ट्रीय आय का बढ़ना।

अतः स्पष्ट है कि आर्थिक विकास के लिए संवृद्धि आवष्यक है अर्थात आर्थिक संवृद्धि किसी भी अर्थव्यवस्था के विकास की मुख्य कड़ी है और विकास में सहायक सिद्ध होती है। इसका अर्थ यह नही हुआ कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में आर्थिक विकास होनी चाहिए परन्तु ऐसा जरूरी नहीं है कि किसी देष की आर्थिक संवृद्धि की उच्च दर, आर्थिक विकास की उच्च दर के रूप में परिभाषित किया जाए। आइये इसे एक उदाहरण से समझते हैं। माना एक देष A है। एक गणितीय उदाहरण द्वारा इसे प्रकार से समझा जा सकता है माना उसी अर्थव्यवस्था में A, B, C और D क्षेत्र है। क्षेत्र A की आय गत वर्ष 50 करोड़, क्षेत्र B से प्राप्त आय 60 करोड़, क्षेत्र C से प्राप्त आय 40 करोड़, क्षेत्र D से प्राप्त 50 करोड़ थी, आर्थिक क्रियाओं के फलस्वरूप वर्तमान में वित्तीय वर्ष में इन क्षेत्रों की आय क्रमषः 150 करोड़, 65 करोड़, 45 करोड़ एवं 40 करोड़ हो गयी है। इस प्रकार गत वर्ष कुल आय 200 करोड़ जबकि वर्तमान वर्ष में कुल आय 300 करोड़ है। इस प्रकार संवृद्धि दर 50 प्रतिषत। तो क्या सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में विकास की दर 50 प्रतिषत मानी जायेगी। ऐसा नही है क्योंकि यह परिवर्तन किसी एक विषेष दषा के कारण उत्पन्न हुआ है। अर्थात इस प्रकार यह कह सकते हैं कि आर्थिक विकास के लिए अर्थिक संवृद्धि चाहे कितना भी महत्वपूर्ण क्यों न हो पर यह अपने आप में साध्य नही हो सकता।

आर्थिक विकास के साथ में सम्मिलित किए जाने वाले चरों आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक संस्थाओं का बदलता स्वरूप जीवन की आवष्यक दषाओ ंमें षिक्षा तथा साक्षरता आवष्यकता परक षिक्षा, जीवन प्रत्याषा, स्वस्थ सेवाऐं, पोषण स्तर, प्रतिव्यक्ति उपलब्ध संसाधनों की पूर्ति या प्रतिव्यक्ति संसाधनों की उपलब्धता, स्वच्छ जल, आवष्यक न्यूनतम पोषण इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। जब तक इन चरों में परिवर्तन न हो विकास को मात्र आर्थिक संवृद्धि के आधार पर व्यक्त करना सही नही होगा। अर्थात मानव विकास के क्रम में आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक प्रगति हो सही ढंग से अर्थिक विकास का द्योतक है।

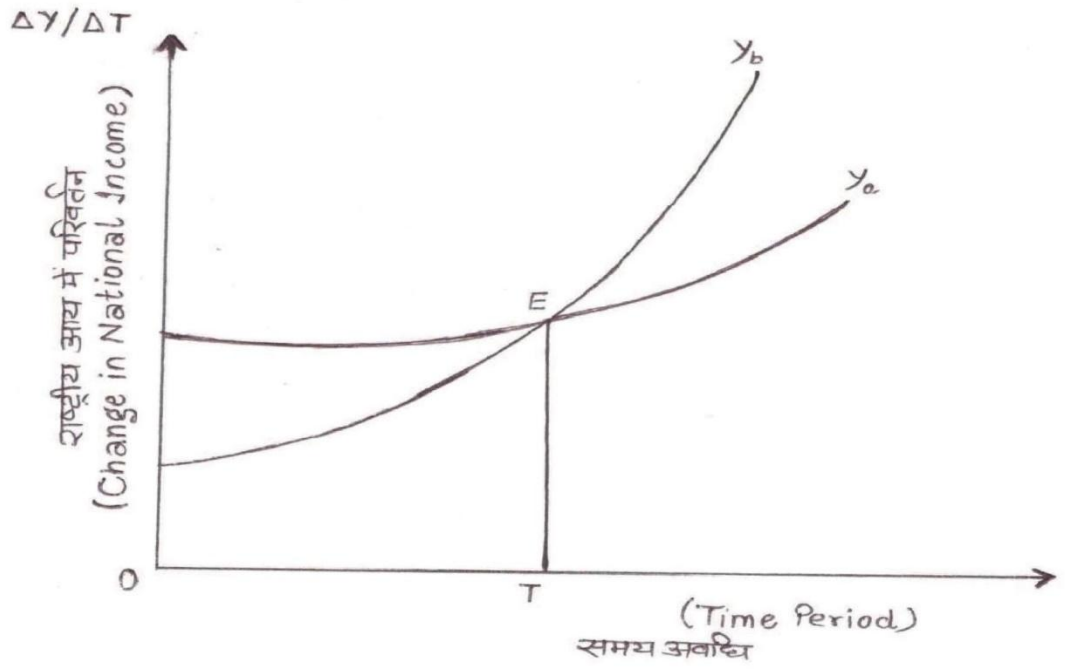

2.6 आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकः–

किसी भी देष का अर्थिक विकास अनेक कारकों पर निर्भर करता है ये कारक अलग–अलग देष में अलग–अलग हो सकते हैं। आर्थिक विकास का प्रभावित करने वाले कारकों को मुख्यतः दो भागो में बांटा जा सकता है। प्रथम जिनमे अर्थिक कारकों अर्थात उन कारणों को सम्मिलित किया जाये जो आर्थिक क्रिया से संबंधित हो और दूसरे रूप में गैर–आर्थिक कारण को सम्मिलित कर सकते हैं ये कारक निम्न कारक हैः–

2.6.1 आर्थिक कारकः–

1. प्राकृतिक संसाधन–भूमि, क्षेत्र, मिट्टी की गुणवत्ता, वन सम्पत्ति, सिचांई के साधन, नदी, तालाब, जलवायु, तेल, निवेष पूंजी निर्माण तथा पूंजी संचयन
2. पूंजी उत्पाद अनुपात
3. तकनीकी प्रगति/उन्नति
4. अवस्थापना
5. जनसंख्या–मानव संसाधन का विकास, जनसंख्या वृद्धि
6. राजनैतिक स्थिरता
7. समामजिक कारक
8. सामाजिक लागत
9. सार्वजनिक सुविधाएं
10. आर्थिक नीतियां

2.6.2 अनार्थिक कारकः अनार्थिक कारकों के अतर्गत राजनैतिक, समाजिक तथा संस्कृतिक इत्यादि कारक प्रभावित करते है। आर्थिक विष्लेषण में इनके योगदान को आर्षिक रूप से ही दर्षाया जाता है जबकि योगदान इनका कम नही होता । नर्क्स के अनुसार '' आर्थिक विकास बहुत सीमा तक मानवीय षक्ति, समाजिक दृष्टिकोण तथा ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धि है।''

1. आधारभूत विज्ञानो को विकसित करने की प्रवृति
2. विज्ञान का आर्थिक उददेष्य में
3. नव परिवर्तन को यथाषीघ्र प्रयोग कराने की प्रवृति
4. भौतिक विकास को प्राप्त करने की प्रवृति
5. उपभोग की प्रवृति
6. संतान रखने की प्रवृति

2.6.2.1 राजनैतिक कारकः–

i. सामाजिक और वैज्ञानिक कारण
ii. षिक्षा
iii. भौतिक सुधार की व्यवस्था

2.7 आर्थिक संवृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक :–

आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में सार्वधिक महत्वपूर्ण कारक है। देष में उपलब्ध संसाधनों की तथा उनका उचित मात्रा में उस देष द्वारा दोहन होता है। भूमि की उर्वरता इस बात की

प्रमाणिकता नही है कि उत्पादन अधिक हो रहा है जब तक आप इस भूमि में उत्पादन करने हेतु उचित मात्रा में बीज, खाद उचित संयोग के साथ प्रयोग ना हो। अर्थात प्राकृतिक संसाधन भूमि, क्षेत्रीय पर्यावरणीय परिस्थितियां, वन क्षेत्र, सिचांई के उपलब्ध संसाधन जैसे नदी, झील, तालाब इत्यादि उपलब्ध विभिन्न खनिज सम्पदा जैसे कच्चा तेल की उपलब्धता, कोयला, पेट्रोलियम विभिन्न खनिज लोहा, तांबा, चांदी, सोना इत्यादि की प्राकृतिक रूप में उपलब्धता देष की आर्थिक संवृद्धि और उपलब्ध संसाधनों के मध्य यदि संबंध स्थापित किया जाए तो इसमें सीधा संबंध स्थापित किया जा सकता है। अर्थात किसी देष में जितना अधिक प्रकृतिक संसाधन होगा वहां संवृद्धि की संभवनांए उतनी ही अधिक प्रबल होंगी।

2.8 पूंजीकरण कर दरः–

आर्थिक संवृद्धि के क्रम में एक अन्य महत्वपूर्ण कारक इस देष में पुजी निर्माण की दर से भी लगाया जाता है अर्थात इस प्रकार आर्थिक संवृद्धि में पूंजी निर्माण का महत्व के कई मायने हो सकते हैं जो पूंजीगत वस्तुओं के स्टाक, मषीन, यन्त्र, उपकरण, सयत्ऱ) में वृद्धि होती है और यह गुणक प्रभाव के साथ बढ़ना प्रारम्भ करती है और उत्पादन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित होती है। अर्थात उत्पादन बढ़ना प्रारम्भ हो जाता है। जिससे बाजार में उछाल होता है साथ ही आय और रोजगार के स्तर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। जो नवीनतम तकनीकी (विधियों) के नवप्रवर्तन को बढ़ाती है जिससे उत्पादन लागत घटने के साथ–साथ उत्पदन में गुणात्मक और भावात्मक दोनो सुधार होने लगता है। देष का औद्योगीकरण की तरफ अग्रसारित होना संतुलन की स्थितियों में परिवर्तन जो मांग तथा उत्पादन को बढ़ावा देते है। साथ ही अन्य परिस्थितियों में 93 लाख होना जिससे देष की आर्थिक स्थिति को समामन्यतः सकारात्मक परिवर्तन होना प्रारम्भ हो जाता है इसमें सबसे बड़ा कारक पूंजी की उपलब्धता है साथ ही मानव कल्याण, आर्थिक कल्याण, मैलिक नीतियों पर अनुकूल प्रभाव भी पूंजी पूंजी निर्माण की दर का होता है। खासतौर पर भारत तथा अन्य विकासषील देषों में जहां उत्पादन के साधनों की कमी, साधनों का समुचित दोहन न हो पाना, बाजार की अपूर्णताएं, उत्पादन के अन्य साधनों के महज निराषावादी प्रभाव का विद्यमान होना को पूंजी द्वारा ही प्रोत्साहित या/सही किया जा सकता है। जिससे ये आर्थिक विकास को गति दे सके।

2.9 पूंजी उत्पाद अनुपातः–

विभिन्न क्षेत्रों, उद्योगों, अर्थव्यवस्थाओं में पूंजी उत्पाद अनुपात भिन्न–भिन्न परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। यह किसी भी क्षेत्र में दर को प्रदर्षित करता है अर्थात जिस अर्थव्यवस्था में पूंजी की वृद्धि कर दर अधिक होगा वहां निवेष अधिक होगा फलस्वरूप निवेष अधिक होने से आर्थिक गतिविधियों में सकारात्मक परिवर्तन होता है। अतः पूंजी उत्पाद अनुपात का न्यूनतम होना अति आवष्यक है। जहां पूंजी उत्पदन अनुपात न्यूनतम होगा वहां पूंजी की वृद्धि दर अधिकतम होगी।

2.10 तकनीकी प्रगतिः–

तकनीकी प्रगति भी अर्थव्यवस्था के विकास में एक पहलू के रूप में होता है। अर्थात यदि कोई अर्थव्यवस्था अपने उपलब्ध तकनीकी को समय परिस्थितियों के अनुसार समायोजित तथा अपडेट (अद्यतन) करता है तो उसका आर्थिक विकास सतत् एवं समावेषित होता रहेगा। अतः तकनीकी प्रतिभा देर की आर्थिक विकास को प्रभावित करता है।

2.11 अवस्थापना विकासः–

किसी देष के पास उत्पादन के साधन उपलब्ध होते हुए भी उचित दर/उच्चतम स्तर पर उत्पादन नही कर पा रहा है, तो इसका एक अर्थ यह भी लगाया जा सकता है कि उस देष में अवस्थापना विकास अभी भी पूरा नही हुआ है। अतः यदि कोई देष अवस्थापना को सुदृढ़ और सषाक्त करता है तो इसका अर्थ है कि अब उस देष की अर्थव्यवस्था को बढ़ने के लिए संसाधन का होना अति आवष्यक ष्षर्त पूरी हो गई और अब देष विकास के राह में आगे बढ़ना प्रारम्भ करेगा।

2.12 जनसंख्या वृद्धिः–

आर्थिक वृद्धि और आर्थिक विकास एक स्वरूप अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण संकेतक होते है। श्रम, उत्पादन का एक मात्र सक्रिय कारक होने के कारण, जनसंख्या का महत्व आर्थिक विकास और वृद्धि में अति आवश्यक स्थान प्राप्त करता है। अतः जनसंख्या की मात्रा संरचना, वितरण एवं गतिशीलता आर्थिक विकास की दर में सहायक या बाधक हो सकते हैं या इनको उचित दिशा में मोड़ कर उत्पादन व अन्य को प्रभावित किया जा सकता है। एक वृद्धिशील जनसंख्या व्यापार के लिए या बाजार के निर्माण में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो नवाचार, उत्पादन वृद्धि तथा अन्य आर्थिक कारकों को प्रभवित करते हुए आर्थिक विकास की दर को तेज कर सकती है।

2.13 राजनैतिक स्थिरताः–

किसी देष की आर्थिक प्रगति में सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक कारणों में राजनैतिक स्थिरता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। यदि किसी देष/राज्य में राजनैतिक अस्थिरता विद्यमान हेाती है तो वहां निवेषक निवेष करने में संकोचित रहता है। अर्थात निवेष को आकर्षित करने में राज्य/देष असफल रहता है और यदि राजनैतिक सत्ता स्थिर है तो उनकी नीतियों में भी स्थिरता होती है। जिस कारण निवेषक अपने दीर्घकालीन उददे्ष्यों के पूर्ति हेतु सरकार की नीतियों से सामंज्स्य सथापित करते हुए अपने उद्देष्यों के निर्धारित करते हुए निवेष करने के लिए तत्तपर होता है और आर्थिक विकास को गति मिलती है अर्थात एक स्थिर, मजबूत और कुशल सरकार, ईमानदार प्रषासन, पारदर्षी नीतियां उनके कुषल क्रियान्वयन से निवेषकों में उत्साह तथा विष्वास बढ़ता है और घरेलू पूंजी के साथ–साथ विदेषी पूंजीपति भी निवेष के लिए आकर्षित होती है, जिसके परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की दर में वृद्धि प्रदर्षित होती है।?

2.14 सामाजिक और भौगोलिक कारकः–

किसी भी समाज के निर्माण में वहां की परिस्थितियों और भौगोलिक वातावरण का बहुत बड़ा प्रभाव पडता है अर्थात परिस्थितियों और भौगोलिकता की स्पष्टता वहा के सामाजिक जीवन में स्पष्ट झलकता है। यदि किसी देष या राज्य के लेागो का आचरण अभी भी पारित है तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वहां की परिस्थितियां अनुकूल नहीं होंगी। जिससे सामाजिक दृष्टिकोण, सामाजिक मूल्य और संस्थाएं मिलकर आपसी क्रिया द्वारा एक सांस्कृतिक समाज से दूसरे सांस्कृतिक समाज में परिवर्तित होती है। यदि पर्यावरण स्वस्थ, संस्कृति, स्वास्थ्य सामाजिक मूल्यों का हस्तांतरण होता है तो वहां नवाचार, नवप्रवर्तन, नयी विचार धारा तथा नया दृष्टिकोण उत्पन्न होता है। जो उद्यमषीलता को प्रभावित करता है जिससे निवेष बढ़ता है और आथिक विकास प्रारम्भ होता है।

2.15 सामाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकः–

साथ ही मनुष्य की मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण या मनः स्थितियों मे भी परिवर्तन होता है। लोगो में भौतिक उन्नति की इच्छाषक्ति का उदय होता है जो विकास के लिए अतिमहत्वपूर्ण है। यदि समाज के

लोग जोखिम पर कम विष्वास, सामाजिक कुरीतियों का प्रचलन होना, भाग्य पर विष्वास करने जैसी प्रवृति बढ़ती है तो यह पूंजी जोखिम और उद्यमिता को सीमित करते है जिससे अर्थव्यवस्था के परिचालन पर प्रभाव पड़ता है और अर्थव्यवस्था धीरे–धीरे अपनी सुसुप्ता अवस्था में पहुंच जाती है। और विकास का क्रम स्थिर हो जाता है। अतः सामाजिक परिस्थितयां और लोगो के मनः स्थितियों का अर्थिक विकास पर स्पष्ट छाप देखा जा सकता है। जो विकास को प्रमाणित करती है।

2.16 षिक्षाः–

षिक्षा एक ऐसा हथियार है जिसके बिना आर्थिक विकास या किसी भी विकास का मापन या कल्पना संभव नही है। अतः षिक्षा का योगदान आर्थिक विकास में अतुलनीय है। षिक्षा नवाचार, नयी तकनीकी की खोज, सामाजिक और राजनीतिक कारणों में बदलाव, सत्यता को स्वीकार्यता तथा तथ्य को तथ्यात्मकता प्रदान करने का साधन है। इसके बिना ना ही हम लोगो को उन्नत तकनीकी का ज्ञान प्रदान कर सकते हैं और न ही प्रषिक्षित कर पाते और न ही तकनीकी को हस्तान्तरित करते अतः षिक्षा का विकास में अत्यधिक योगदान है।

2.17 बोध प्रष्न

1. आर्थिक विकास का अर्थ है–

क. देष की उत्पादन ‘षक्ति में वृद्धि
ख. तकनीकी ज्ञान में वृद्धि
ग. मानव विकास में वृद्धि
घ. उपरोक्त सभी

2. आर्थिक समृद्धि से आषय है–

क. जी0डी0पी0 की दर से
ख. एच0डी0आई0 से
ग. उपरोक्त दोनों
घ. उपरोक्त में कोई नहीं

3. निम्नलिखित में कौन आर्थिक विकास को प्रभावित करने वाला गैर आर्थिक कारक है–

क. तकनीकी प्रगति
ख. पूजीं उत्पाद अनुपात
ग. सामाजिक विकास
घ. जनसंख्या

4. अवस्थापना विकास से क्या आषय है

क. मूलभूत उद्योगो का विकास
ख. जनसंख्या का विकास
ग. स्थायी पूंजी का विकास
घ. इनमें से कोई नहीं

2.18 सारांष

आर्थिक विकास तथा आर्थिक समृद्धि में अन्तर को स्पष्ट करना अतिआवष्यक है। दोनों एक दूसरे के पूरक तथा इनके निर्धारक तत्व भी एक दूसरे के अत्यधिक नजदीक प्रतीत होते है उपरोक्त व्यख्या से स्पष्ट है कि जब अर्थव्यवस्था तेजी से सम्वृद्धि होती है अर्थात प्रति व्यक्ति आय या वास्तविक आय में वृद्धि होने लगती है साथ ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होने लगता है तो विकास की प्रक्रिया सतत आगें बढ़ने लगती है आवष्यकता इसकी कि विकास के लिये आवष्यक न्यूतम निवेष होता रहे साथ ही विकास की प्रक्रिया में रोड़ा या बाधक बनने वाले तत्वों पर राज्य द्वारा नियंत्रंण स्थापित करते हुये इन्हें दूर किया जाये। समाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारको पर भी विषेष ध्यान देने की आवष्यकता है जिससे आर्थिक समृद्धि तथा आर्थिक विकास होता रहें।

2.19 षब्दावली

जी0डी0पी0– किसी अर्थव्यवस्था के भौगोलिक सीमा के अन्दर एक वित्तीय वर्ष के अन्तर्गत उत्पादित वस्तुओ, सेवाओं का अन्तिम मूल्य।

पूजीं उत्पाद अनुपात– उत्पादन के प्रति इकाई के लिये आवष्यक पूजीं की मात्रा।

बचत– आय का वह भाग जो उपभोग न हुआ हो

मानव पूंजी– समस्त नागरिक जिनके अन्दर उत्पादन का गुण हो।

तकनीकी प्रगति– आर्थिक समृद्धि के माप के अन्तर्गत किसी भी साधन की पहले की अपेक्षा बचत के रूप में।

रोजगार परक– वह षिक्षा जिसको प्राप्त करने के बाद व्यक्ति को रोजगार मिलने में सहायता हो।

राष्ट्रीय आय– देष के समस्त स्रोतो से प्राप्त होने वाली आय का योग

2.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची

सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमारः(1908) "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन" राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली ।

वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

एस. पी. सिहं (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन एस चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।

एम.एल.झिंगन (2022) आर्थिक विकास एवं नियोजन वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, (2013) ' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेष।

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, (2020) 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ

Agarwal R. C.(1907), "Economics of Development and Planning" Lakshmi Narayan

Taneja M. L. & Myer R. M. (1910), "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co- Delhi.

2.21 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

Myrdal G- :Economic Theory and Under&developed Regions, 1957

झिंगन, एम. एल. " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 1903

सिन्हा, वी. सी.: "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 1907

आई0सी0धींगरा (1987) इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया एस. चन्द्र नई दिल्ली।

एस.एन.लाल (2022) – 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज।

2.22 बोध/अभ्यास के प्रष्नों का उत्तर

1. घ. उपरोक्त सभी
2. क. जी0डी0पी0 की दर से
3. ग. सामाजिक विकास
4. घ. इनमें से कोई नहीं

2.23 विषयनिष्ठ प्रश्न

1. आर्थिक समृद्धि तथा आर्थिक विकास में अन्तर स्पष्ट करते हुये उदाहरण सहित समझाइये।
2. आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा किजिए।
3. विकास को प्रभावित करने वाले कारको का उल्लेख करते हुये समाधान प्रस्तुत किजिए।
4. समाजिक कुरितियां किस प्रकार विकास को प्रभावित करती है उदाहरण सहित समझाइये।

खण्ड–01

इकाई–03

विकास के माप, सकल राष्ट्रीय उत्पाद, PQLI (जीवन स्तरीय निर्देषांक), मानव विकास (Human Development) एवं मानव विकास निर्देशांक (HDI)

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 आर्थिक विकास का मापन

3.3.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं आर्थिक विकास

3.3.2 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाईया

3.3.3 प्रति व्यक्ति आय एवं आर्थिक विकास

3.4 आर्थिक कल्याण एवं आर्थिक विकास

3.5 मूलभूत आवश्यकतायें एवं आर्थिक वृद्धि

3.6 मानव विकास सूचक एवं मानव विकास

PQLI जीवन स्तरीय निर्देषांक एवं आर्थिक विकास के माप

3.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

3.8 सारांश

3.9 शब्दावली

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 प्रस्तावना

आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास को किस प्रकार मापा जाय? मापदण्ड के रूप में कौन–कौन से आधार चुने जाय? इसके सम्बन्ध में अर्थशास्त्रियों में मतभेद हैं। विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने इसको मापने के सम्बन्ध में अनेक मापदण्डों की चर्चा की है। वाणिकवादी अर्थशास्त्री किसी देश में सोने एवं चांदी की मात्रा को ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक मानते थे। एडमस्मिथ ने किसी भी देश के आर्थिक विकास के मापदण्ड के रूप में उस देश की उत्पादन शक्ति, तकनीकी ज्ञान, श्रमिकों की दशा तथा विशिष्टीकरण को स्वीकार किया। जे. एस. मिल ने अर्थव्यवस्था में सहकारिता के स्तर तथा कार्ल मार्क्स ने समाजवाद की स्थापना को ही आर्थिक विकास की चरम अवस्था माना। मायर एवं बाल्डबिन जैसे अर्थशास्त्री आर्थिक संवृद्धि तथा आर्थिक विकास को वास्तविक राष्ट्रीय आय की वृद्धि को दीर्घकालीन प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करते हैं तो दूसरी और रोस्टोव जैसे अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि तथा हिगिन्स, वी. के. आर. बी. राव सभी लोग उत्पादकता की वृद्धि को ही आर्थिक संवृद्धि का मापक मानते हैं।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हम समझेंगे कि

1. आर्थिक विकास का रूप कैसे होता है।

2. कुल राष्ट्रीय उत्पाद क्या है।
3. प्रति व्यक्ति आय से क्या तात्पर्य है।
4. आर्थिक कल्याण से आपका क्या तात्पर्य। मानव विकास से क्या अभिप्राय है, PQLI की समझ विकसित हो सकेगी।
5. सामाजिक सूचकों का आर्थिक विकास में क्या योगदान है।

3.3 आर्थिक विकास का मापन

आर्थिक विकास' प्रतियोगिता के दौर में एक बहुचर्चित विषय है और प्रत्येक राष्ट्र विकास की इस दौड़ में दूसरों से आगे निकलने के लिये निरन्तर प्रयास कर रहे है। पर सवाल यह उठता है कि आर्थिक विकास की कसौटी अथवा मानदण्ड क्या हो? अर्थात् किसी देश में आर्थिक विकास हो रहा है अथवा नहीं, इस बात का किस प्रकार पता लगाया जाए? आर्थिक विकास की माप हेतु विकासवादी अर्थशास्त्रियों द्वारा निम्नलिखित मापदण्ड प्रस्तुत किए गए हैं।

3.3.1 सकल राष्ट्रीय उत्पाद एवं आर्थिक विकास

कुछ अर्थशास्त्री सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि को ही आर्थिक विकास का सूचक मानते हैं। उनके अनुसार, "आर्थिक विकास को समय की किसी दीर्घावधि में एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में वृद्धि के रूप में मापा जाए। ठीक ही कहा है कि "आर्थिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक अर्थव्यवस्था की वास्तविक राष्ट्रीय आय में दीर्घकाल में वृद्धि होती है। "

3.3.2 सकल राष्ट्रीय उत्पाद के माप में कठिनाईया

किसी भी देश की राष्ट्रीय आय की माप करना एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें निम्नलिखित कठिनाइयों का होना हैं।

1. राष्ट्र की परिभाषा – प्रथम कठिनाई राष्ट्र की परिभाषा है। हर राष्ट्र की अपनी राजनीतिक सीमाएं होती है परन्तु राष्ट्रीय आय में राष्ट्र की सीमाओं से बाहर विदेशों में कमाई गई देशवासियों की आय भी सम्मिलित होती है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय के दृष्टिकोण से राष्ट्र की परिभाषा राजनैतिक सीमाओं को पार कर जाती है। इस समस्या को सुलझाना कठिन है।

2. कुछ सेवाएं सदैव मुद्रा में ही मापी जाती है परन्तु बहुत सी वस्तुएं और सेवाएं ऐसी होती हैं जिनका मुद्रा में मूल्यांकन करना मुश्किल होता है, जैसे किसी व्यक्ति द्वारा अपने शौक के लिए चित्र बनाना, मां का अपने बच्चों को पालना आदि। इसी प्रकार जब एक फर्म का मालिक अपनी महिला सेक्रेटरी से विवाह कर लेता है तो उसकी सेवाएं राष्ट्रीय आय में शामिल नहीं होती जबकि विवाह से पहले वह राष्ट्रीय आय का भाग होती हैं। ऐसी सेवाएं राष्ट्रीय आय में सम्मिलित न होने से राष्ट्रीय आय कम हो जाती है।

3. दोहरी गणना – राष्ट्रीय आय की परिगणना करते समय सबसे बड़ी कठिनाई दोहरी गणना की होती है। इसमें एक वस्तु या सेवा को कई बार गिनने की आशंका बनी रहती है। यदि ऐसा हो तो राष्ट्रीय आय कई गुना बढ़ जाती है। इस कठिनाई से बचने के लिए केवल अन्तिम वस्तुओं और सेवाओं को ही लिया जाता है जो आसान काम नहीं है।

4. अवैध क्रियाएं– राष्ट्रीय आय में अवैध क्रियाओं से प्राप्त आय सम्मिलित नहीं की जाती जैसे जुए या चोरी से बनाई गई शराब से आय। ऐसी सेवाओं में वस्तुओं का मूल्य होता है और वे उपभोक्ता की आवश्यकताओं को भी पूरा करती है परन्तु इनको राष्ट्रीय आय में शामिल न करने से राष्ट्रीय आय कम रह जाती है।

5. अन्तरण भुगतान – राष्ट्रीय आय में अन्तरण भुगतानों को सम्मिलित करने की कठिनाई उत्पन्न होती है। पेन्शन, बेरोजगारी भत्ता तथा सार्वजनिक ऋणों पर व्याज व्यक्तियों को प्राप्त होते हैं पर इन्हें राष्ट्रीय आय में

सम्मिलित किया जाए या न किया जाये, एक कठिन समस्या है। एक ओर तो ये प्राप्तियां व्यक्तिगत आय का भाग हैं. दूसरी ओर ये सरकारी व्यय हैं। यदि इन्हें दोनों ओर सम्मिलित किया जाए तो राष्ट्रीय आय में बहुत वृद्धि हो जाएगी। इस कठिनाई से बचने के लिए इन्हें राष्ट्रीय आय में से घटा दिया जाता है।

6. वास्तविक आय – मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय की परिगणना वास्तविक आय का न्यून आगणन करती है। इसमें किसी वस्तु के उत्पादन की प्रक्रिया में किए गए अवकाश का त्याग शामिल नहीं होता। दो व्यक्तियों द्वारा अर्जित की गई आय समान हो सकती है परन्तु उसमें से यदि एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक घंटे काम करता है तो यह कहना कुछ ठीक ही होगा कि पहले की वास्तविक आय कम बताई गई है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय वस्तु के उत्पादन की वास्तविक लागत को नहीं लेती।

7. सार्वजनिक सेवाएं – राष्ट्रीय आय की परिगणना में बहुत सी सार्वजनिक सेवाएं भी ली जाती हैं, जिनका ठीक–ठीक हिसाब लगाना कठिन होता है। पुलिस तथा सैनिक सेवाओं में छावनियां में ही विश्राम करती है। इसी प्रकार सिंचाई तथा शक्ति परियोजनाओं से प्राप्त लाभों का मुद्रा के रूप में राष्ट्रीय आय में योगादान का हिसाब लगाना भी एक कठिन समस्या है।

8. पूँजीगत लाभ या हानियाँ – जो संपत्ति मालिकों को उनकी पूँजी परिसंपत्तियों के बाजार मूल्य में वृद्धि, कमी या मांग में परिवर्तनों से होती है वे सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में शामिल नहीं की जाती है क्योंकि ऐसे परिवर्तन चालू आर्थिक क्रियाओं के कारण नहीं होता है। जब पूँजी या हानियां चालू प्रवाह या उत्पादकीय क्रियाओं के अप्रवाह के कारण होते हैं तो उन्हें सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार पूँजी लाभों या हानियों की राष्ट्रीय आय में आगणन करने की बहुत कठिनाई होती है।

9. माल सूची परिवर्तन – सभी माल सूची परिवर्तन चाहे ऋणात्मक हों या धनात्मक सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में शामिल किये जाते हैं। परन्तु समस्या यह है कि फर्मे अपनी माल सूचियों को उनकी मूल्य लागतों के हिसाब से दर्ज करती हैं न कि उनकी प्रतिस्थापन लागत के हिसाब से। जब कीमतें बढ़ती है तो मूल्य सूचियों के अंकित मूल्य में लाभ होता है। इसके विपरीत कीमतें गिरने पर हानि होती है। अतः सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) का सही हिसाब लगाने के लिए माल सूची समायोजन की आश्यकता होती है जो कि बहुत कठिन काम है।

10. मूल्य ह्रास – जब पूँजी मूल्य हास को सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जी. एन. पी.) में से घटा दिया जाता है तो शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (एन. एन. पी.) प्राप्त होती है। परन्तु मूल्य हास की गणना की समस्या बहुत मुश्किल है। उदाहरणार्थ यदि कोई ऐसी पूँजी परिसम्पत्ति है जिसकी प्रत्याशित आयु बहुत अधिक जैसे 50 वर्ष है, तो उसकी चालू मूल्य ह्रास दर का हिसाब लगाना बहुत कठिन होगा और यदि परिसम्पत्तियों की कीमतों में प्रत्येक वर्ष परिवर्तन होता जाए, तो यह कठिनाई और बढ़ जाती है। माल सूचियों के विपरीत मूल्य हास मूल्यांकन कर पाना बहुत कठिन और जटिल तरीका होता है।

1. जीवन का भौतिक गुणवत्ता सूचक एवं आर्थिक विकास PQLI

मौरिस डी. मौरिस ने 1979 में 23 विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन किया। उसने शिशु मृत्युदर, एक वर्ष की आयु में जीवन सम्भाव्यता तथा 15 वर्ष की आयु में मूल शिक्षा जैसे तीन सूचक घटकों को, लोगों की मूल आवश्यकताओं को पूरा करने के कार्य के मूल्यांकन के लिए जोड़ा। इस सूचक से बहुत से सूचकों, जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल, पोषण तथा स्वच्छता आदि का पता चलता है। प्रत्येक सूचक के तीनों घटकों को शून्य से 100 तक के पैमाने पर रखा गया है जिसमें शून्य को मन्दतम तथा 100 को सर्वोत्तम प्रदर्शन के रूप में परिभाषित किया गया है। PQLI सूचक की गणना तीनों घटकों को समान भार देते हुए औसत निकाल कर की जाती है तथा सूचक को भी शून्य से 100 के पैमाने पर रखा गया है। मौरिस के अनुसार तीनों सूचकों में से प्रत्येक सूचक परिणाम को

मापता है न कि आगतों को, जैसे आय । प्रत्येक सूचक आवंटन प्रभावों के प्रति संवेदनशील है अर्थात् इन सूचकों में वृद्धि अथवा सुधार से लोगों को उसी अनुपात में मिलने वाले लाभ का पता चलता है। परन्तु कोई भी सूचक विकास के किसी स्तर विशेष पर निर्भर नहीं है। प्रत्येक सूचक की अन्तर्राष्ट्रीय तुलना की जा सकती है। सन् 1950 में भारत की शिशु मृत्युदर 229 प्रति हजार को मन्दत्तम मानते हुए मौरिस ने इसे शून्य पर स्थिर कर दिया, तथा इसकी उच्चतम सीमा को सन् 2000 तक 7 प्रति हजार का लक्ष्य बनाया गया। इसी प्रकार, वियतनाम में एक वर्ष की आयु पर जीवन संभव्यता सन् 1950 में 38 वर्ष ली। इसे मौरिस ने जीवन संभव्यता सूचक पर शून्य का स्थान दिया। उसकी उच्चतम सीमा पुरूषों में तथा महिलाओं को मिलाकर सन् 2000 तक 77 वर्ष रखी गई। अंत में 15 वर्ष की आयु में शिक्षा की दर को शिक्षा सूचक बनाया गया। मौरिस ने इसके सहसंबंध (2010) निम्न अनुसार प्रस्तुत किए हैं:

Top Countries प्रमुख देष

	देष	**1980**	**1990**	**2000**	**2010**
1	Italy इटली	87.5903	90.72972	93.2688	95.01528
2	Spain स्पेन	87.2026	90.24895	92.56855	94.79503
3	Greece ग्रीस	85.05537	88.79193	91.10787	93.74675
4	Singapore सिंगापुर	81.86044	87.34064	90.44234	93.68759
5	Slovenia स्लोवेनिया	86.28272	88.82516	90.88842	93.54662
6	Cuba क्यूबा	87.39337	89.20366	91.3475	93.48221
7	Cyprus साइपरस	85.62582	89.1702	91.57553	93.21786
8	Chile चिली	80.35851	86.26632	89.98156	93.00578
9	Malta मालता	84.07296	86.23804	89.49369	92.64986
10	Portugal पुर्तगाल	78.56313	84.88992	88.69984	92.00346

Lowest countries न्यूनतम देष

130	Mozambique मोजामबिक	21.61448	27.41884	37.10646	46.64048
131	Ethiopia इथोपिया	23.6211	31.43036	40.80653	46.55425
132	Congo (Kinshasa) कान्गो	43.23817	45.03084	44.11445	46.47831
133	Guinea गुन्नीया	7.588352	20.52031	33.18386	45.90918
134	GuineaBissauगुन्नीया विसुआ	19.70854	28.52309	36.38514	44.31884
135	Burkina Faso बुरकिना फासो	27.29104	30.12744	33.49469	43.76715
136	म0 अफ्रीकी गणतंत्र	32.16258	36.96857	36.84455	43.26527
137	Chad चाद	17.35069	27.40591	33.86664	38.21274
138	Mali माली	13.07565	22.54022	30.37455	37.58113
139	Sierra Leone सिरिया लियोन	13.28569	16.75013	24.22285	37.54774
100	India भारत	44.01147	51.33434	60.22422	66.12119

एक वर्ष की आयु में जीवन संभव्यता तथा शिशु मृत्युदर के बीच सहसंबंध का गुणांक उच्च डिग्री का तथा ऋणात्मक है। इस प्रकार का सहसंबंध शिक्षा तथा शिशु मृत्युदर के बीच है अर्थात् शिक्षा के साथ शिशु मृत्युदर में गिरावट आती है। शिक्षा तथा जीवन संभाव्यता के बीच गुणांक ऊंची डिग्री का धनात्मक सह–संबंध दर्शाता है अर्थात् शिक्षा के साथ–साथ जीवन संभव्यता में भी वृद्धि होती है। मौरिस के अनुसार एक वर्ष की आयु में जीवन संभाव्यता तथा शिशु मृत्युदर जीवन की भौतिक गुणवत्ता के बहुत अच्छे सूचक हैं। और यही बात शिक्षा तथा जीवन संभाव्यता के बारे में कही गई है। वास्तव में शिक्षा सूचक विकास की संभाव्यता को व्यक्त करता है।

इसकी सीमाएं :– मैरिस ने यह स्वीकार किया है कि PQLI मूल आवश्यकताओं को केवल एक सीमा तक ही माप सकता है। यह GNP का परिपूरक है न कि विस्थापक। यह आर्थिक वृद्धि को मापने का काम भी करता है। इसके अतिरिक्त यह सामाजिक और आर्थिक संगठन के बदलते हुए ढांचे को भी नहीं दर्शाता । इसी प्रकार यह कुल कल्याण को भी नहीं मापता है। फिर भी यह जीवन की गुणवत्ताओं को मापता है जो गरीबों के लिए बहुत जरूरी है। मॉरिस द्वारा PQLI के प्रयुक्त तीन चरों को मनगढ़ंत भार देने के कारण मौरिस की आलोचना हुई। प्रो. मायर के अनुसार PQLI द्वारा लिए गए गैर–आय वाले घटक महत्वपूर्ण हैं परन्तु उतने ही महत्वपूर्ण समग्र गरीबी सूचकांक को प्राप्त करने के लिए समूहन के वितरण, संवेदनशील तरीके, आय तथा उपभोग के आंकड़े भी होते हैं।

इन सीमाओं के बावजूद PQLI अल्पविकसित देशों के विशेष क्षेत्रों का पता लगाने तथा सामाजिक नीतियों की असफलता अथवा उपेक्षा के शिकार समाज के विभिन्न वर्गों की जानकारी प्राप्त करने में काम आ सकता है। यह उस सूचक की ओर इंगित करता है जहां तुरंत कार्यवाही की आवश्यकता है। सरकार ऐसी नीतियां अपना सकती है जिससे सूचकांक में भी शीघ्र वृद्धि हो तथा आर्थिक विकास भी बढ़े।

3.6 मानव विकास सूचक एवं आर्थिक विकास

1990 से संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम अपनी वार्षिक मानव विकास रिपोर्ट को मानव विकास सूचक (HDI) के रूप में प्रस्तुत कर रहा है। HDI तीन सामाजिक सूचकों का एक मिश्रित सूचक है। जीवन सभाव्यता, वयस्क शिक्षा तथा स्कूली वर्ष। इसमें वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP का भी ध्यान रखा जाता है। अतः HDI तीन आधारभूत पहलुओं में उपलब्धियों का एक मिश्रित सूचक है। जिसमें एक लम्बा व स्वस्थ जीवन, ज्ञान तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर सम्मिलित है। किसी देश के HDI का मूल्य निकालने के लिए तीन सूचकों को लिया जाता है।

1. दीर्घायु– इसे जन्म के समय जीवन की संभाव्यता द्वारा मापा जाता है। जो कि 25 वर्ष से 85 वर्ष के बीच होती है।

2. शैक्षिक योग्यता– जिसे व्यस्क शिक्षा (2/3) तथा प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च माध्यमिक में उपस्थिति अनुपातों (एक तिहाई 1/3, भार) के मिश्रण के रूप में मापा जाता है।

3. जीवन स्तर– जिसे क्रय शक्ति समता (purcashing power parity) पर आधारित वास्तविक प्रतिव्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद (GDP) द्वारा मापा जाता है। HDI जीवन की संभाव्यता सूचक, शैक्षिक प्राप्तियां सूचक तथा समायोजित वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP सूचक का सरल औसत सूचक है। इसकी गणना इन तीनों संकेतकों के योग को 3 से विभाजित कर निकाली जाती है। इसमें प्रत्येक चर का न्यूनतम तथा अधिकतम मूल्य स्थिर है, जिसे घटाकर शून्य (0) तथा एक (1) के बीच पैमाने पर रखा गया है तथा प्रत्येक देश इस पैमाने के किसी न किसी बिन्दु पर आता है। प्रत्येक देश का HDI मूल्य यह दर्शाता है कि उसे अपने कुछ परिभाषित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कितना प्रयास करना है। 85 वर्ष के औसत जीवन की अवधि, सभी के लिए शिक्षा की उपलब्धि तथा उत्कृष्ट जीवन स्तर के आधार पर HDI एक दूसरे के संबंध

में विभिन्न देशों के क्रम तय करता है। किसी भी देश का HDI क्रम विश्व आवंटन के बीच ही होता है। उदाहरणार्थ, यह क्रम प्रत्येक विकसित तथा विकासशील देशों से संबंधित अपने HDI मूल्य पर आधारित है। जिसके लिए उस देश द्वारा HDI न्यूनतम मूल्य शून्य (0) से HDI अधिकतम मूल्य एक (1) तक किए गए। ऐसे देश जिनका HDI मूल्य 0.5 से कम है उन्हें निम्नस्तर के मानव विकास तथा 0.5 से 0.8 HDI मूल्य वाले देशों को मध्यम तथा 0.8 से ऊपर HDI मूल्य वाले देश उच्च स्तर में गिने जाते हैं। HDI में देशों को उनके प्रति व्यक्ति GDP के आधार पर भी क्रमबद्ध किया जाता है।

मानव विकास रिपोर्ट 2022 में 191 विकसित एवं विकासशील देशों से सम्बन्धित वर्ष 1993 की वास्तविक प्रति व्यक्ति के क्रम में HDI मूल्य तथा HDI क्रम प्रस्तुत किए गए हैं। जिन 174 देशों के HDI की गणना की गई थी उनमें से 57 उच्च विकास वर्ग (0.8 से 0.95) में थे। 69 मध्यम वर्ग (0.5 से 0.79) में तथा 48 निम्न वर्ग (0.48 से 0.2) में थे। कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका तथा जापान HDI में उच्च वर्ग के 26 विकसित देशों में सबसे आगे थे। उस वर्ग में सबसे अन्तिम क्रम 57 पर रूसी संघ था। 26 विकासशील देशों में हांगकांग, साइप्रस, बारबाडोस प्रथम तीन क्रम में थे। मध्यम वर्ग में विघटित सोवियत संघ के अधिकांश देशों सहित 16 विकसित तथा 53 विकासशील देश थे। इस वर्ग में ब्राजील सबसे आगे 58वें क्रम पर रहा। श्रीलंका 89वें क्रम पर तथा चीन 108वें क्रम पर रहा। निम्न वर्ग में 48 विकासशील देश थे जिनमें सबसे ऊपर कैमरून, केन्या तथा घाना थे। पाकिस्तान का क्रम 134 तथा भारत का 135 था जबकि बांग्लादेश 143 तथा नेपाल 151वें क्रम पर रहे, जैसा कि तालिका 3.1 में दर्शाया गया है। एक धनात्मक आंकड़ा यह बताता है कि वास्तविक GDP प्रति व्यक्ति क्रम से HDI क्रम ऊचा है। ऋणात्मक आंकड़ा इसके विपरीत बताता है।

तालिका 3.1 चुने हुए देशों का मानव विकास सूचक, 2022

Human Development Index (HDI)		
HDI rank	**Country**	Value (**2021**)
	VERY HIGH HUMAN DEVELOPMENT	
1	Switzerland स्विटजरलैण्ड	0.962
2	Norway नार्वे	0.961
3	Iceland आइसलैण्ड	0.959
4	Hong Kong, China (SAR) हांक–कांग	0.952
5	Australia आस्ट्रेलिया	0.951
6	Denmark डेनमार्क	0.948
7	Sweden स्वीडेन	0.947
8	Ireland आयरलैण्ड	0.945
9	Germany जर्मनी	0.942
10	Netherlands निदरलैण्ड	0.941

तालिका 3.1 चुने हुए देशों का मानव विकास सूचक, 2022

	HIGH HUMAN DEVELOPMENT	
67	Albania अलबेनिया	0.796
68	Bulgaria बुलगारिया	0.795

68	Grenada ग्रेनेडा	0.795
70	Barbados बारबोडस	0.790
71	Antigua & Barbuda एन्टीगुआ और बारबूडा	0.788
72	Seychelles सेयकेल्स	0.785
73	Sri Lanka श्री लंका	0.782
74	Bosnia & Herzegovina बोसेनिया और हर्जेगोविना	0.780
75	Saint Kitts & Nevis सैन्ट किटस और नेविस	0.777
76	Iran (Islamic Republic of) इरान	0.774

तालिका 3.1 चुने हुए देशों का मानव विकास सूचक, 2022

	MEDIUM HUMAN DEVELOPMENT	
116	Philippines फिलिपिन्स	0.699
117	Botswana बोटसवाना	0.693
118	Bolivia (Plurinational State of) बोलिविया	0.692
118	Kyrgyzstan क्रिगिस्तान	0.692
120	Venezuela (Bolivarian Republic of) वेनेजुएला	0.691
121	Iraq इराक	0.686
122	Tajikistan तजकिस्तान	0.685
123	Belize बेलिज	0.683
123	Morocco मोरोक्को	0.683
125	El Salvador अल्–सल्वाडोर	0.675

तालिका 3.1 चुने हुए देशों का मानव विकास सूचक, 2022

	LOW HUMAN DEVELOPMENT	
160	Tanzania (United Republic of) तनजानिया	0.549
161	Pakistan पाकिस्तान	0.544
162	Togo टोगो	0.539
163	Haiti हैती	0.535
163	Nigeria नाइजिरिया	0.535
165	Rwanda रवाडा	0.534
166	Benin बेनिन	0.525
166	Uganda उगान्डा	0.525
168	Lesotho लेसोथो	0.514
169	Malawi मालावी	0.512

तालिका 3.1 चुने हुए देशों का मानव विकास सूचक, 2022

	LOWEST HUMAN DEVELOPMENT	
182	Guinea गुएना	0.465
183	Yemen येमेन	0.455
184	Burkina Faso बुरकिना फासौ	0.449
185	Mozambique मोजामबिक	0.446
186	Mali माली	0.428
187	Burundi बुरून्डी	0.426
188	Central African Republic मध्य अफ्रीकी गणतन्त्र	0.404
189	Niger नाइजर	0.400
190	Chad चाड	0.394
191	South Sudan साउथ सूडान	0.385

HDI क्रम वास्तविक प्रति व्यक्ति GDP से विशेष रूप से भिन्न हैं। ऐसे देश जिनका GDP क्रम HDI क्रम से ऊंचा है उनकी उच्च आय के लोगों का आर्थिक साम्यता से आवंटित करने की पर्याप्त क्षमता है। HDI यह दर्शाता है कि कई देशों के प्रति व्यक्ति GDP स्तर समान हो सकते हैं परन्तु उनकी मानव विकास उपलब्धियां भिन्न हो सकती है या फिर HDI समान हो सकते हैं परन्तु GDP प्रति व्यक्ति स्तर भिन्न हो सकते हैं। HDI हमें विकास की प्रगति के बारे में बताता है। मानव विकास रिपोर्ट में कहा गया है कि निम्न मानव विकास वाले देशों को मानव विकास की उच्च श्रेणी तक पहुंचने में 200 से भी अधिक वर्ष लग सकते हैं। चीन इस स्तर तक 25 वर्षों में पहुंच जाएगा, जबकि भारत को अभी 100 वर्ष लगेंगे।

सीमाएं –

HDI की भी अपनी सीमाएं हैं। प्रथम, केवल तीन सूचक ही मानव विकास के सूचक नहीं हैं। शिशु मृत्युदर, पोषण आदि अन्य सूचक भी हो सकते हैं । द्वितीय, HDI निरपेक्ष (Absolute) की बजाय सापेक्ष मानव विकास को मापता है। यदि सभी देश समान भारित दर से अपने मूल्य को सुधार लें तो निम्न मानव विकास वाले देशों के सुधार का पता नहीं चल पाएगा। तृतीय, किसी देश का HDI वहां पाई जाने वाली ऊंची असमानता को दूर करने के लक्ष्य से भटक सकता है।

मानव विकास सूचकांक निम्नलिखित तीन बुनियादी मानवीय पहलुओं का अध्ययन करता हैः

(i) लंबा जीवन या दीर्घायु जीना (एलईआई)

(ii) जानकार होना या शैक्षिक प्राप्ति सूचकांक (ईएआई)।

(iii) जीवन स्तर या वास्तविक प्रति व्यक्ति जीडीपी (एसएलआई)।

इन तीन सूचकांकों को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है

एचडीआई = (1/3) (एलईआई + ईएआई + एसएलआई)

आइए इन तीन पहलुओं पर चर्चा करें।

दीर्घायु (एलईआई): दीर्घायु का अर्थ है जन्म के समय जीवन प्रत्याशा। यह इसे संदर्भित करता है एक नवजात शिशु के कितने वर्ष जीवित रहने की आशा की जाती है। भारत में जीवन प्रत्याशा वर्तमान में 63 वर्ष है। शैक्षिक प्राप्ति सूचकांक (ईएआई): इसका अर्थ है प्राप्त की गई शिक्षा देश की जनता द्वारा औसत आधार पर। शैक्षिक प्राप्ति के घटकों को इसके माध्यम से व्यक्त किया जाता है निम्नलिखित दो चरः

(ए) वयस्क साक्षरता दर (एएलआर)

(बी) सकल नामांकन अनुपात (जीईआर)

(ए) वयस्क साक्षरता दर (एएलआर): लोगों की दर या प्रतिशत

15 वर्ष और उससे अधिक आयु के व्यक्ति जो छोटे और सरल कथन को समझ सकते हैं, पढ़ सकते हैं और लिख सकते हैं अपने दैनिक जीवन में साक्षर कहलाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक को साक्षर होना चाहिए कुछ वाक्यों को पढ़ने और लिखने में सक्षम। यदि कोई हस्ताक्षर करने में सक्षम है लेकिन नहीं कर रहा है साधारण कथन को पढ़ने और लिखने में सक्षम, वह साक्षर नहीं है। इस प्रकार, क्षमता केवल पढ़ने या लिखने से कोई व्यक्ति साक्षर नहीं हो जाता। साक्षरता प्रतीक है लोगों की गुणवत्ता का.

(बी) सकल नामांकन अनुपात (जीईआर):

सकल नामांकन अनुपात से तात्पर्य है शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर नामांकित छात्रों की संख्या। यह प्रतिशत है विभिन्न आयु समूहों की जनसंख्या का जो शैक्षिक कार्य में लगी हुई है। शिक्षा का स्तर इसमें प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्तर शामिल हैं। सामान्य नामांकन अनुपात प्राथमिक, मध्य, माध्यमिक स्तर पर नामांकित जनसंख्या का प्रतिशत दर्शाता है और विश्वविद्यालय स्तर. उच्च जीईआर जीवन की उच्च गुणवत्ता को इंगित करता है। जहाँ तक संभव हो सामान्य नामांकन अनुपात बढ़ाने के लिए प्रत्येक अर्थव्यवस्था का ईमानदार प्रयास करने होंगे। प्रति व्यक्ति वास्तविक जीडीपी या जीवन स्तर (एसएलआई): इसे माना जाता है किसी देश के लोगों के जीवन स्तर के माप के रूप में। गणना करने के लिए मानव विकास सूचकांक हमें दीर्घायु, शैक्षिक स्तर का विश्लेषण करने की आवश्यकता है प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद की उपलब्धि पर भी ध्यान देना होगा।

मानव विकास सूचकांक का निर्माण

मानव विकास सूचकांक के निर्माण के लिए दो चरणों की आवश्यकता होती है, वे हैं:

1. प्रासंगिक सूचकांकों का निर्माण.
2. सूचकांकों का साधारण औसत निकालना।

3.7 अभ्यास हेतु प्रश्न

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1.....अर्थशास्त्री किसी देश में सोने एवं चांदी की मात्रा को ही आर्थिक संवृद्धि का सूचक मानते थे।

क. वाणिकवादी,

ख. समाजवादी,

ग. भाग्यावादी

घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. राष्ट्रीय आय सदैव .....मापी जाती है।

क. मुद्रा में,

ख. कीमत में,

ग. पूर्ति में
घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. सभी माल सूची परिवर्तन चाहे ऋणात्मक हों या धनात्मक..... शामिल किये जाते हैं।
क. जी.एन.पी.,
ख. जी.डी.पी.,
ग. एन.एन.पी.
घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. जब पूँजी मूल्य हास को .....में से घटा दिया जाता है तो एन0एन0पी0 प्राप्त होती है।
क. जी.एन.पी.,
ख. जी.डी.पी.,
ग. एन.एन.पी.
घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

5.....देशों में एक महत्वपूर्ण अमौद्रिक क्षेत्र होता है।
क. अल्पविकसित,
ख. विकसित,
ग. सभी
घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

6. अल्पविकसित देशों में अधिकतर लोग ..... होते हैं।
क. अशिक्षित,
ख. शिक्षित,
ग. कुशल
घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. जी. एन. पी. में क्या सम्मिलित नहीं होता

क. मूल्य हास
ख. चालू वर्ष का अंतिम उत्पादन
ग. हस्तांतरण भुगतान
घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

2. जी.एन.पी. में सम्मलित होता है।

क. मध्यवर्ती उत्पादन
ख. अन्तिम उत्पादन
ग. उपर्युक्त दोनों
घ. उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. विकसित तथा विकासशील देशों के जीवन की सम्मिश्र भौतिक गुणवत्ता का तुलनात्मक अध्ययन किसने किया?

क. मौरिस डी मौरिस
ख. एल्सर्वथ
ग. हारिस डी हारिस
घ. उपर्युक्त सभी

3.8 सारांश

आर्थिक विकास का उपयुक्त मापदण्ड क्या हो? यह समस्या आज भी अपने में विवादग्रस्त बनी हुई है। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि आर्थिक विकास के अभिसूचक के रूप में मुख्य विवाद राष्ट्रीय आय व 'प्रति व्यक्ति आय' के बीच है। चूंकि इन दोनों मापदण्डों के अपने–अपने गुण व दोष हैं इसलिए सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओं के लिए किसी एक ही मापदण्ड का चुनाव करना न तो सम्भव है और न उचित ही है। हमारी राय में विकसित देशों के आर्थिक विकास का एक अभिसूचक राष्ट्रीय आय में वृद्धि माना जाना चाहिये और अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास की कसौटी हेतु प्रति व्यक्ति आय में होने वाली वृद्धि को स्वीकार किया जा सकता है। वैसे अधिकांश अर्थशास्त्री प्रति व्यक्ति आय मापदण्ड का अधिक समर्थन करते हैं।

3.9 शब्दावली

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)– एक अर्थव्यवस्था के समस्त उत्पादन के साधनों द्वारा एक वर्ष में अंतिम रूप से उत्पादत की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं के समस्त मौद्रिक मुल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।

आर्थिक कल्याण– आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्धित किया जा सकता है।

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) :– एक वर्ष की अवधि में जितनी वस्तुओं एवं सेवाओं का किसी देश की भौगोलिक सीमा में उत्पादन होता है उसका बाजार कीमतों पर मौद्रिक मूल्य सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहलाता है।

मानवीय पूँजी निर्माण– मानवीय पूँजी निर्माण का सम्बन्ध उस विनियोग से है जो धन के उत्पादकों के रूप में लोगों की योग्यताओं एवं क्षमताओं में सुधार करने के उद्देश्य से किया जाता है।

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. वाणिज्यकवादी
2. मुद्रा में
3 जी0एन0पी0,
4. जी0एन0पी0
5. अल्पविकसित

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ग. हस्तांतरण भुगतान,
2. ग. अन्तिम उत्पादन,
3. क. मौरिस डी मौरिस

3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमारः "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन" राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली ।

वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

एस. पी. सिहं (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन एस चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।

एम.एल.झिंगन (2022) आर्थिक विकास एवं नियोजन वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।

आई0सी0धींगरा (1987) इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया एस. चन्द्र नई दिल्ली।

एस.एन.लाल (2022) – 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज।

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, (2013) ' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेष।

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, (2020) 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ

Agarwal R. C. "Economics of Development and Planning" Lakshmi Narayan.

Taneja M. L. & Myer R. M. "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co- Delhi.

3.12 सहायक अध्ययन सामग्री

• B- Okun and R- W- Richanison Studies in Economic Development-

• Morris D- Morris Measuring the condition of the world's poor- The Physical quality of Lite Inde

3.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आर्थिक संवृद्धि को परिभाषित कीजिए। इसका मापन कैसे किया जा सकता है?
2. आर्थिक विकास के अभिसूचक स्पष्ट कीजिए। आर्थिक और सामाजिक अभिसूचकों में अंतर कीजिए।
3. आर्थिक विकास को परिभाषित कीजिए । आर्थिक विकास के विभिन्न मापों का विवेचना कीजिए। इनमें से आप किसको सर्वाधिक उपयुक्त समझते हैं, और क्यों?
4. प्रति व्यक्ति वास्तविक आय में वृद्धि कहां तक आर्थिक विकास का संतोषजनक माप प्रस्तुत करती है।
5. ''प्रति व्यक्ति आय द्वारा मापी गई आर्थिक संवृद्धि से समाज के कल्याण में वृद्धि नहीं होती है।'' व्याख्या कीजिए।

खण्ड–01
इकाई–04
उभरती हुई बाजार अर्थव्यवस्था

इकाई का संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उदे्ष्य
4.3 अर्थव्यवस्था के प्रकार
4.4 बाजार अर्थव्यवस्था
4.5 बाजार अर्थव्यवस्था की विषेषताएं
4.6 बाजार अर्थव्यवस्था
4.7 उभरती बाजार अर्थव्यवस्था की विषेषताएं
4.8 बाजार अर्थव्यवस्था की कमियां–
4.9 बोध प्रष्न/ अभ्यास के प्रष्न
4.10 सारांष
4.11 शब्दावली
4.12 बोध प्रष्नों के उत्तर
4.13 उपयोगी पुस्तकें
4.14 वस्तुपरक प्रष्न

4.1 प्रस्तावना–अर्थव्यवस्था का तात्पर्य आर्थिक क्रियाओं को चलाने के लिए किये गये उपायों से है। अर्थात किसी राष्ट्र द्वारा अपने नागरिकों की सामाजिक आर्थिक स्थिति में गुणात्मक तथा मात्रात्मक सुधार करने के लिए किये गये प्रयासो जिसमें देष में उपलब्ध संसाधनों व बाहर किसी अन्य देष या राज्य से मगाये गये संसाधनों का समुचित नियोजन करते हुए अधिकतम लाभ चाहे मौद्रिक हो या सामाजिक, को प्राप्त करने हेतु किये गये कार्यो, प्रयासो के नियमन करने की व्यवस्था को ही अर्थव्यवस्था कहते है। इस प्रकार भिन्न–2 देष काल और परिस्थितयों को दृष्टिगत रखते हुए इसे भिन्न प्रकार से बाटा जा सकता है। जैसे विकास के आधार पर विकसित अर्थव्यवस्था तथा विकासषील अर्थव्यवस्था, सकल आय में योगदान के आधर पर प्राथमिक, द्वितीयक और तृतीयक अर्थात कृषि, औघोगिक और सेवा क्षेत्रक अर्थव्यवस्थाएॅं। उत्पादन के साधनों के स्वामित्व के आधार पर पूजीवादी, समाजवादी तथा मिश्रित अर्थव्यवस्थाएॅं, इत्यादि के रूप में विभाजित किया जा सकता है। बाजार के आधार पर पूर्ण प्रतियोगी तथा अपूर्ण प्रतियोगी बाजर आधारित अर्थव्यवस्था इत्यादि।

4.2 उद्देष्यः–

इसे पढ़ने के बाद छात्र अर्थव्यवस्था के स्वरूप के विषय में विषेष रूप से जान सकेगे।

1. अर्थव्यवस्था के विभिन्न स्वरूपों में अन्तर कर सकेगे।
2. अर्थव्यवस्था के व्यवहारिक पहलुओं को जान सकेगे।
3. अर्थव्यवस्था के प्रकार के बारे में बता सकेगे।
4. बाजार अर्थव्यवस्था की विषेषताओं को जान सकेगे।
5. उभरती अर्थव्यवस्था के विषेषताओं के बारे में जान सकेगे।
6. उभरती अर्थव्यवस्थाओं के स्वरूप के बारे में बता सकेगें।
7. बाजार अर्थव्यवस्थाओं की कमियों को पहचान सकेगें।
8. बाजार अर्थव्यवस्थाओं के व्यवहारिक स्वरूप पर चर्च्रा कर सकेगें।

4.3 अर्थव्यवस्था के प्रकार–उपरोक्त प्रस्तावना से एक बात बिल्कुल साफ है कि बिना किसी उद्देश्य के निर्धारण के हम रणनिति तैयार नहीं कर सकते। इस लिए बाजार अर्थव्यवस्था को जानने से अर्थव्यवस्थाओं के विभिन्न स्वरूप को जान लेना आवष्यक है। विभिन्न प्रकार की आर्थिक पद्धत्तियों में भिन्न–2 मानदण्डों के आधार पर अर्थव्यवस्था को भिन्न–2 रूप में देखा जा सकता ळें

1. पूंजीवादी 2. समाजवादी 3. मिश्रित अर्थव्यवस्था 4. कृषि 5. आधौगिक 6. सेवा अर्थव्यवस्था 7. बन्द अर्थव्यवस्था 8. खुली अर्थव्यवस्था 9. अल्प विकसित 10. विकासषील 11. विकसित अर्थव्यवस्थाएं	विभिन्न पाठ्य पुस्तकों में भिन्न–2 अर्थषास्त्रों के द्वारा अर्थव्यवस्था के प्रकारों को परिभाषित और वर्गीकृत किया गया है।

उपरोक्त अर्थव्यवस्था के प्रकारों की समझ होना आवष्यक है बाजार अर्थव्यवस्था की जानकारी से पूर्व।

पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाः–ऐसी व्यवस्था जिसमें किसी राज्य/देष की समस्त आर्थिक क्रियाएं कुछ विषेष लोगो के हाथ में निजी क्षेत्र द्वारा संचालित की जाती है। जिसमें उत्पादन और वितरण का कार्य निजी क्षेत्र द्वारा पुरा किया जाता है, पूंजीवादी अर्थव्यवस्था कहा जाता है। इसमें सरकार का हस्तक्षेप लगभग शून्य होता है। अर्थात उत्पादन वितरण, कीमत निर्धारण बाजार शक्तियो के अनुसार होता है। मॉग का नियम क्रियाषील होता है जिसमें स्वतः समायोजन की प्रक्रिया अति प्रवल होती है। जिसमें प्रतिस्पर्धा बनी रहती है और अत्यधिक लाभ उन्मुखी व्यक्ति उधमी फर्मे अपने क्षमता के अनुसार उत्पादन कार्य पूरा कर रही होती है।

समाजवादी अर्थव्यवस्थाः–जिस राज्य/देष में समस्त आर्थिक क्रियांए (उत्पादन वितरण व पूर्ति) सरकार द्वारा निर्धारित या संचालित करायी जाती है या उत्पादन के समस्त साधनों पर सरकार का नियन्त्रण होता है को सजाजवादी अर्थव्यवस्था कहा जाता है। इस प्रकार के अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु या सेवा को कितनी सीमा तक उत्पादन किया जाये का निर्णय सरकार करती है। साथ ही इस बात का निर्णय भी सरकार करती है कि उत्पादित वस्तु की पूर्ति किस सीमा तक किस क्षेत्र में किया जाए। पूर्ति पर नियंत्रण का सीधा अर्थ कीमतों के नियंत्रण से होता है। अर्थात किमतें भी सरकार के नियंत्रण में ही होती है। इस प्रकार बाजार में सरकार का पूर्ण हस्ताक्षेप रहता है। जिससे बाजार की शक्तियॉ स्वंतत्र होकर क्रियाषील नही हो पाती है। अर्थात मॉग का नियम लागू नही होता ।

मिश्रित अर्थव्यवस्थाः–इस प्रकार के अर्थव्यवस्था में कुछ कार्य सरकार द्वारा तथा कुछ कार्य पूंजीवादियों द्वारा किये जाते है। अर्थात कुछ उत्पादन के कुछ साधनों पर सरकार का आंषिक या पूर्ण रूप से अंकुस रहता है तथा कुछ साधनों पर निजी फर्मो/उघोगों/पूंजीवादियों का नियन्त्रण होता है और दोनो एक सीमा तक उसमें प्रयोग के मामलें में स्वतन्त्र होते है। अर्थात ऐसी व्यवस्था जिसमें पूंजीवादी और समाजवादी दोनो के गुण पाये जाए। इस प्रकार की अर्थव्यवस्था का अच्छा उदाहरण भारत है। सरकार की भूमिका नियमक की होती है। निजी क्षेत्र उत्पादन सम्बन्धित

कार्य स्वतन्त्रता पूर्वक करता है जिसमें मांग का नियम क्रियाषील हो जाते है। और कीमत का निर्धारण बाजार की शक्तियों द्वारा होता है।

खुली अर्थव्यवस्था—जब दो देषों या दो से अधिक देषो के मध्य व्यापार को सुगमता प्रदान करने हेतु विभिन्न समझौतो, द्वारा ऐसी नीतियों का संचालन प्रारम्भ हो जाता है जहाँ किसी भी संसाधन उत्पादन को आवागमन पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही होता है। अर्थात दूसरों देषों के लिए अपनी अर्थव्यवस्था खोल देना जिससे संसाधनों का निर्बाध आवागमन हो सके खुली अर्थव्यवस्था का गुण है। विष्व की लगभग समस्त अर्थव्यवस्थाएं वर्तमान परिस्थितियों में खुली अर्थव्यवस्था का उदाहरण है।

बन्द अर्थव्यवस्थाः—खुली अर्थव्यवस्था में जहॉ दो देषों के मध्य उत्पादों और संसाधनों के मुक्त आवागमन नीति का पालन होता है बन्द अर्थव्यवस्था में इसके ठीक विपरीत परिस्थितियां होती है। जहाँ किसी बाहरी देष या बाहरी राज्य से किसी प्रकार का कोई लेन देन नही होता है। अपनी समस्त जरूरतों को अपने आन्तरिक संसाधनों से ही पूरा किया जाता है। अर्थात आयात और निर्यात सम्बन्धित कोई भी क्रियाकलाप नहीं होता है। तो इस प्रकार की अर्थव्यवस्था वालें राज्य/देषों को बन्द अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत रखा जाता है।

अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाः—ऐसी अर्थव्यवस्था जहॉ के लोगो का रहन सहन स्तर काफी नीचे हो, आय का स्तर सामान्य अर्थात औसत आय से नीचे हो, जिनकी आर्थिक और राजनैतिक पहुँच बहुत कम हो अपनी न्यूनतम आवष्यकताओं की पूर्ति के लिए भी किसी अन्य के उपर निर्भर हो गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, लाचारी, इत्यादि की दर काफी उच्च हो आधारमुक्त संरचना के अभाव में उत्पादन अन्य देषो द्वारा किया जा रहा हो ऐसी अर्थव्यवस्था को अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत रखते है। सोमालिया, चीड़, अफ्रीकी देषो— तथा कुछ अन्य समुद्री दीपों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

विकासषील अर्थव्यवस्थाः—ऐसी अर्थव्यवस्था जहाँ के लोगो का जीवन स्तर अविकसित देषो की अपेक्षा अधिक होती है जो अन्तर्राष्ट्रीय मानकों और उसके औसत को लगातार छुने का प्रयास करते आ रहे हो संबृद्वि की दर लगातारि संपुष्ट होती रही हो। आय का स्तर निम्न देषो से अधिक हो, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में लगातार परिवर्तन हो रहे हों आधारभूत संरचना या संरचनात्मक विकास अपनी गति पर हो द्वितीतक और तृतयक क्षेत्रों का सकल उत्पाद मे शेयर लगातार बढ रहा हो ऐसी अर्थव्यवस्था विकासषील अर्थव्यवस्था के उदाहरण है। भारत, मलेषिया, ब्राजील, इत्यादि इसके सर्वश्रेष्ठ उहाहरण है।

विकसित अर्थव्यवस्थाः—ऐसे राज्य/देष जहा लोगो की आय का स्तर वैष्विक आय के औसत से अधिक हो, सामान्य जीवन स्तर अच्छा होता है, लोग विलासिता के ऊपर अपनी आय का एक बडा हिस्सा खर्च करते हो तकनीकी दृष्टि से उच्च तकनीकी का प्रयोग देष के उत्पादन और अन्य कार्यो में सफलतापूर्वक किया जा रहा हो, नित नयी खोज तथा नवोन्मेषी तकनीकी की खोज लगातार जारी है, अर्थात नयी खोजों को प्रोत्साहन मिल रहा हो ऐसी अर्थव्यवस्था विकसित अर्थव्यवस्था होती है।

कृषि अर्थव्यवस्थाः— जब किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक क्रिया के फलस्वरूप प्राप्त होने वाले उत्पादन की गणना करते है तो कृषि क्षेत्रक का योगदान यदि 50 प्रतिषत से अधिक होता है तो इसका तात्पर्य यह है कि वहा की अर्थव्यवस्था कृषि आधारित अर्थव्यवस्था है दूसरे शब्दों में जिस अर्थव्यवस्था, राज्य/देष या भौगोलिक क्षेत्र की आधे से अधिक आर्थिक संरचना कृषि आधारित हो वहा की अर्थव्यवस्था को कृषि आधारित अर्थव्यवस्था या कृषि अर्थव्यस्था कहते है। प्रारम्भ में भारत की अर्थव्यवस्था पूर्णता कृषि आधारित अर्थव्यवस्था थी परन्तु बाद में धीरे—धीरे

विकास के साथ–साथ सकल धरेलू उत्पाद में कृषि का शेयर कम होने लगा तथा अन्य क्षेत्रों का योगदान बढ़ने लगा।

औद्योगिक अर्थव्यवस्थाः– जब किसी अर्थव्यवस्था में उसकी सकल आय में द्वितीयक क्षेत्र का हिस्सा 50 प्रतिषत या आधे से अधिक होता है और प्राथमिक निर्भरता भी उसी अनुपात में रहती है अर्थात 50 प्रतिषत सकल धरेलु उत्पाद में हिस्सा, 50 प्रतिषत से अधिक के लोगो के निर्वाह का साधन रूप में द्वितीतक क्षेत्र पर निर्भरता होना औधोगिक अर्थव्यवस्था का उहारण है। प्रायः यह स्थिति उत्पादन के उच्च्तम स्तर, तकनीकी का अधिकतम प्रयोग, संसाधनों का अधिकाधिक प्रयोग (Utilization) की स्थिति प्राप्त होने पर उत्पन्न होती है। विष्व की नाम मात्र के देष पूर्णत औद्योगिक देष या औद्योगिक अर्थव्यवस्था वाले देष है।

सेवा अर्थव्यवस्थाः–ऐसी अर्थव्यवस्था जहॉ सकल आय में तृतीयक क्षेत्र का योगदान सम्पूर्ण के आधे से अधिक या बराबर हो अर्थात 50 प्रतिषत या उससे अधिक हो और उसी अनुपात में लोगो के जीवन निर्वाह का स्त्रोत सेवा क्षेत्र हो तो यह कहा जा सकता है कि सन्दर्भित अर्थव्यवस्था का स्वरूप सेवा अर्थव्यवस्था का है। प्रायः औधौगीकरण के बाद आर्थिक प्रगति या विकास के फलस्वरूप सेवा क्षेत्रक का योगदान राष्ट्रीय आय में बढ़ता है। और अर्थव्यवस्था का सेवा क्षेत्र पर निर्भरता अधिक होने लगती है।

उपरोक्त परिभाषित शब्दावलियों और अर्थव्यवस्था के प्रकार का अध्यनन करने से एक बात स्पष्ट है कि किसी भी प्रकार की अर्थव्यवस्था का शुद्व रूप में चयन कठिन कार्य है। अर्थात यह बता पाना कठिन है कि निर्दिष्ट अर्थव्यवस्था शुद्व रूप से कृषि, सेवा, औद्योगिक, पूंजीवादी, सामाजवादी या अल्पविकसित, इत्यादि प्रकार की है। क्योकि सभी के कुछ न कुछ गुण एक दूसरे में विद्यमान होते है। और उनका स्वरूप कही न कही मिलता जुलता है। प्रत्येक अर्थव्यवस्था का अपना कोई न कोई बाजार होता है क्योंकि बिना बाजार के आधुनिक स्वरूप में ढ़लवाना मुष्किल होता है परन्तु अर्थषास्त्र में यदि बाजार अर्थव्यवस्था की बात करें तो इसका अर्थ केवल उस स्थान से नही होता जहा वस्तुओं सेवाओं का क्रय–विक्रय किया जाए अपितु इस आषय से बाजार शब्द प्रयोग किया जाता है कि वहा किसी प्रकार का सरकारी हस्तक्षेप नही हो मॉग तथा पूर्ति की शक्तियों में समायोजन द्वारा उत्पादन का निर्धारण व मूल्य निर्धारण का स्वचलित कार्य किया जाता हे। अतः उक्त के अनुसार बाजार अर्थव्यवस्था का स्वरूप, संगठन और क्रियाषीलता निम्न प्रकार से हो सकती है।

4.4 बाजार अर्थव्यवस्था– बाजार अर्थव्यवस्था का अभिप्रायः उन अर्थव्यवस्थाओं से है जहॉ बाजार की शक्तियां स्वतः स्वतन्त्र रूप से क्रियाषील हों। अर्थात वस्तु के उत्पादन का निर्धारण बाजार में मॉग के अनुसार होता है तथा कीमत का निर्धारण मॉग तथा पूर्ति के समायोजन बिन्दु पर होता है। अर्थात जहा मॉग तथा पूर्ति रेखा एक दूसरे को काटती है वहॉं संतुलन कारी शाक्तियां स्थिर होती है वस्तु का मूल्य निर्धारण होता है। अर्थात दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ऐस तत्व जहा उत्पादन वितरण, निवेष लाभो की क्रियाए अन्य आर्थिक गतिविधिया, बाजार के दो आहण्य हाथों की क्रियाषीलता के अनुसार होती है वहॉं बाजार अर्थव्यवस्था होती है।

बाजार अर्थव्यवस्था के अध्ययन से पूर्व कुछ विषेष अवधारणाओं का अर्थ समझ लेना आवष्यक है–

मूल्य–बाजार अर्थव्यवस्था में कीमतें आपूर्ति और मॉग के संयुक्त प्रभाव के क्रियाशिलता द्वारा निर्धारित होती है। उदाहरण स्वरूप यदि किसी वस्तु की मॉग अधिक है और पूर्ति मॉग की अपेक्षाकृत कम है तो निष्चित रूप से बाजार में उस वस्तु की जिसकी मॉग अधिक है की अधिक कीमत वसूल की जायेगी। अर्थात स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था या बाजार अर्थव्यवस्था में किसी वस्तु का मूल्य उसके मॉग और पूर्ति के द्वारा निर्धारित होती है।

निवेष– निवेष भविष्य में आय वृद्वि का एक साधन है। यह किसी भी रूप में हो सकता है जैसे शेयर, वाड, म्यचुअल फंड, रियल स्टेट, जमीन, सोना, एस0आई0पी0 इत्यादि में अपने पैसों का लाभ के उद्देष्य से लगाना अर्थात पैसा

कमाना और समय के साथ–साथ अपने निवेष से होने वाले लाभ को बढ़ा सकेगे, इस मकसद से किया जाता है। इस प्रकार निवेष से आषय यह है कि सम्पूर्ण आय का वह भाग जाो उपभोग व्यय के पष्चात् बची धनराषि बाजार से किसी न किसी लाभोन्नमुखी उद्देष्य हेतु लगाया जाता है। अर्थात उपभोग व्यय या खपत छोड़ने का परिणाम निवेष है। बाजार अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत बाजार एक संगठन है जिसमें क्रेता और विक्रेता आपस में समझौता करते है या खरीद बिक्री सम्बन्धित कार्य जिसके माध्यम से सम्पादित होता है। तथा इन सभी चरों का महत्व स्वतन्त्र प्रतियोगिता का होना एक उत्तम बाजार अर्थव्यवस्था का उदाहरण है। अर्थात जहा ये विषेषताए पायी जायेगी वहा बाजार का उत्तम स्वस्थ पाया जायेगा।

4.5 बाजार अर्थव्यवस्था की विषेषताएंः–षुद्व बाजार अर्थव्यवस्था सैद्वांतिक दृष्टिकोण से ही पायी जाती है अर्थात अधिकतम बाजार अर्थव्यवस्था मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वरूप लिए होती है। जहॉ पब्लिक और प्राईवेट अर्थात निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र का सहअस्तित्व होता है। सरकारें जीवन रक्षक उपकरणों, परिवाहन, षिक्षा तथा सार्वजनिक वस्तुओं का विनिमयन या संचालन स्वयं करती है तथा अन्य शेष निजी हाथों द्वारा विनिमयन किया जाता है। इस प्रकार बाजार अर्थव्यवस्था में निम्नलिखित गुण पाये जाते है।

01–प्रतियोगिताः–प्रतिस्पर्धा से बाजार का स्वरूप स्पष्ट होता है। इससे उपभोक्ता को ठगे जाने का खतरा कम होता है क्योंकि जितनी अच्छी प्रतियोगिता होगी बाजार में मूल्य संबंधित विसंगतियां उतनी ही कम होगी। प्रतियोगिता कुषल साधन के साथ–2 उचित मूल्य पर बेहतर गुणवत्ता वालें उत्पादों की उपलब्धता सुनिष्चित कराती है उपभोक्ता के इच्छानुसार उत्पादों को उपलब्ध कराना तथा उससे इसके इच्छानुसार जितना भुगतान के लिए तैयार हो अर्थात उपभोक्ता की बचत शून्य हो इतना मूल्य उससे वसूलना।

02–निजी संपत्ति–निजी संपत्ति बाजार अर्थव्यवस्था का अभिन्न भाग है। अर्थात इसमें पूंजीपतियों की संख्या अत्यधिक होती है। ये पूंजीपति निजी सम्पत्ति का वाहक तथा धारक होते है जिनका उपयोग लाभोन्नमुखी कार्य के लिए करते है। निजी संपत्ति का अधिकार व्यक्ति विषेष के हाथो में होता है।

03–सरकार की सिमित भूमिकाः–बाजार अर्थव्यवस्था में सरकार की भूमिका अत्यन्त ही नगण्य होती है। उत्पादन, वितरण, मूल्य निर्धारण, इत्यादि कार्य बाजार द्वारा नियमित होते है। सरकार की भूमिका केवल एकाधिकारी शक्तियों को पनपने या एकाधिकार से रोकने हेतु नियमन करना होता है। अर्थात सरकार प्रतिस्पर्धा को– रूप से सुनिष्चित करने हेतु नियामक की भूमिका में होती है।

04–चुनने की आजादी–बाजार अर्थव्यवस्था में चुनने की आजादी होती है। प्रायः उपभोक्ता तथा विक्रेता दोनो अपनी इच्छानुसार उपभोग व व्यापार करने हेतु स्वतन्त्र होते है। उत्पाद की अपनी पंसदीदा क्षेत्र में व्यापार या उत्पादन कार्य करने हेतु स्वतन्त्र होता है।

05–स्वः हित उद्देष्य–बाजार अर्थव्यवस्थाए स्वहित पर केन्द्रित होती हैं। अर्थात अर्थव्यवस्थाओं में लगभग समस्त आर्थिक गतिविधिया स्वहित प्रेरित होती है। व्यवसायी लाभोन्मुखी होकर व्यापार करता है तथा उपभोक्ताओं द्वारा उन उत्पादों, वस्तुओं, और सेवाओं को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है जिनकी कीमत न्यूनतम हो। जबकि उत्पादन या व्यापारी या उधमी अपनी वस्तु और सेवाओं को अधिकतम मूल्य पर बिक्री करना चाहता है। जिससे लाभ अधिकाधिक हो सके।

06–बाजार और कीमत प्रणाली–बाजार प्रणाली या बाजार आधारित अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता बाजार की जानकारी रखता है। अर्थात एक कुषल और विवेकषील उपभोक्ता होता है। तथा अधिकतम उपयोगिता न्यूनतम देय द्वारा प्राप्त करना चाहता है। अर्थात प्रत्येक क्रेता, विक्रेता की वस्तुओं और सेवाओं के बारे में सामान्य जानकारी तक अपनी पहुच रखता है। सामान्य जानकारी का अर्थ गुणात्मक और मात्रात्मक और मूल्य सम्बन्धित जानकारी। जिस कारण बाजार में एक अकेला विक्रेता बाजार को प्रभावित नहीं कर पाता है। और कीमत प्रणाली वस्तुओं और सेवाओं के मॉग तथा आपूर्ति द्वारा निर्धारित होती है।

4.6 उभरती बाजार व्यवस्था–उभरती बाजार अर्थव्यवस्था से आषय ऐसी अर्थव्यवस्था से है जहॉ अन्तराष्ट्रीय मानको के साथ–साथ विकासकी गति अतितीव्र हो या संवृद्धि की दर तीव्र हो। आज विष्व की लगभग तीन चौथाई आबादी इन्ही

उभरती हुई बाजार अर्थव्यवस्थाओं का भाग है। जो वैष्विक सकल धरेलू उत्पादर लगभग दो तीन तिहाई हिस्सा मे योगदान देते है। भारत, ब्राजील, चीन, पाकिस्तान, मैक्सिको, दक्षिण अफ्रीका, मुम्बई जैसे देष उभरती हुई बाजार अर्थव्यवस्था के उदाहरण है। ये अर्थव्यवस्था निम्न आय से मध्य आय वाले देषों की ओर अग्रसर है। इन अर्थव्यवस्थाओं में लगातार नवीन प्रधौगिकी विकास होता जा रहा है। जिसका लाभ उत्पादन अधिक करने में मदद मिल रही है। औधोगिक विकास की दर तीव्र होती है। बन्द अर्थव्यवस्था से खुली अर्थव्यवस्था के संक्रमण दौर में होती है या बाहर निकल गयी होती हे। लगातार जीवन स्तर मं सुधार होता रहा है। इन देषो के लिए उदीयमान अर्थव्यवस्था का प्रयोग सबसे पहले एनटाइन डबलू वैन अन्टामेज ने किया।

4.7 उभरती बाजार अर्थव्यवस्था की विषेषताएं

01–मध्य वर्ग की संख्या में वृद्वि–जैसे–जैसे किसी राष्ट्र में अर्थिक सुधार होता है वहाँ सामाजिक और आर्थिक परिदृव्य में भी परिवर्तन होता है। गरीबी, भुखमरी तथा बेरोजगारी जैसे सरचनात्मक समस्याएं जो मूल में समा गयी होती है से निजात मिलना। प्रारम्भ हो जाती है निम्न वर्ग आय वृद्वि के साथ मध्य आय वर्ग मे परिवर्तित होने लगता है। लोगों मं विष्वास और षिक्षा का स्तर लगातार बढ़ता है। जिससे अतिरिक्त आय में भी वृद्वि होती है। लगातार बढ़ती/अतिरिक्त आय और क्षमताओं का प्रयोग करते हुए ये देष उत्पादन क्षमता को बढ़ा लेते है जिससे आय का स्तर जीवन स्तर में सुधार होता है, जो बेहतर बुनियादी ढ़ाचे और बेहतर सेवा का उपयोग करते हुए देषवासियों को अवसर प्रदान करती है।

02–तीव्र विकास–इन अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक वृद्वि दर 05 से 10 प्रतिषत वार्षिक दर के मध्य बढ़ती रहती है। जबकि विकसित बाजर अर्थव्यवस्थाओं में यह दर 02 से 04 प्रतिषत के मध्य होती है। संसाधनों का दोहन तीव्र गति से प्रारम्भ हो जाता है। जिससे बिना स्थिर पूँजी में परिवर्तन किये उत्पादन भी तीव्र गति से बढ़ता है परिणाम स्वरूप गुणक प्रभाव अर्थव्यवस्था में सक्रिय रूप से प्रभावी हो जाता है। जो आर्थिक विकास को तीव्रता प्रदान करती है।

03–तकनीकी प्रगति–पूजी की एक इकाई तथा श्रम की निश्चित इकाई से वस्तु की एक निष्चित मात्रा प्राप्त करना तकनीक या प्रविधि कहलाता है। उत्पादन क्रिया में उन्नत तकनीकी का प्रयोग जिसके अन्तर्गत न केवल मषीन को लेते है बल्कि अन्य कारणों को भी सम्मलित किया जाता है, का विकास धीरे–2 प्रारम्भ हो जाता है। इन देषों में भी तकनीकी प्रगति को बढ़ावा देने हेतु संयुक्त उघम, लाईसेंसिग, फ्रेन्चाइजिंग, तथा इन्टरमीडिएट टेक्नालाजी जैसी आधुनिक विधियों का प्रयोग उदीयमान बाजार अर्थव्यवस्था में होने लगते है। श्रमबचत, पूँजी बचत करने वाली तकनीकी का विकास होने लगता है। अर्थात उन्नत तकनीकी का प्रयोग उदीयमान बाजार अर्थव्यवस्था को प्राप्त होने लगता है।

04 पूँजी निमार्ण–उत्पादन क्रिया में कुछ साधन ऐसे होते है जो समाप्त हो जाते है तथा कुछ साधन ऐसे होते है जो समाप्त नही होता जो संसाधन समाप्त नहीं होते, ऐसे साधन को पूंजीगत साधन कहते है। प्रष्न यह उठता है कि क्या देष की मुद्रा पूंजी है? तो इसका उत्तर न ही में मिलता है परन्तु यदि विदेषी मुद्रा होगी। अर्थात वह प्रक्रिया जिसके द्वारा अर्थव्यवस्था में पूजी स्टाक में वृद्वि लायी जाती है पूजी निर्माण कहलाता है। इस प्रक्रिया में विनियोग पूँजी–उत्पाद अनुपात पूँजी विस्तारण पूजी गहरापन, पूँजी, श्रम अनुपात में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो जाता हैं। और यह आर्थिक ट्रान्सफार्मेशन की प्रक्रिया ही इन देषो को उदीयमान बाजार अर्थव्यवस्था की पक्ति मं खड़ा कर देता है।

05 अस्थिरता–उभरती बाजार अर्थव्यवस्था में पूरी की पूरी आर्थिक प्रक्रिया या क्रियाएं परिवर्तनशील होती हैं। जिससे अर्थव्यवस्था में प्रत्येक क्षेत्र अस्थिर होता है। मुद्रास्फीती भी उच्च होती है। क्योंकि प्रमुख विन्तीय परिवर्तनों के कारण अतिसंवेदनषील होती है। ब्याज दरें, मुद्रा की मूल्य तथा– दरें लगातार परिवर्तित होती रहती है। जिस कारण उभरती हुई बाजार अर्थव्यवस्था में अस्थिरता बनी रहती है।

4.8 बाजार अर्थव्यवस्था की कमियां–

उदीयमान बाजार अर्थव्यवस्था की समस्याए भी बहुत है, जिनसे छुटकारा पाये बिना तीव्र विकास और पूर्ण बाजार अर्थव्यवस्था की स्थापना असम्भव है–

01– अन्य आय, अल्प बचत तथा अल्प पूँजी निमार्ण जैसे समस्याए इन देषो की प्रमुख समस्याए है।

02– विकास की कमी होती है, जो बाजारीकरण में प्रमुख रोड़ा होती है।
03–गरीबी, भुखमरी, कुपोषण तथा आय की विषमता सम्बन्धी समस्या एक सामान्य तथा चुनौतीपूर्ण समस्या है। आय का बडा हिस्सा समाज के कुछ ही पूँजीपतियों के पास संचित होता है जिस कारण अमीरों और गरीबों के बीच खाई लगातार बढ़ती ही जाती है, इस पर रोक लगाना अतिआवष्यक है।
04–कृषि पर अत्यधिक निर्भरता भी उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की एक समस्या है।
05–औधोगिक पिछडापन भी विकास में प्रमुख समस्या है।
06–निर्यात में प्राइमरी वस्तुओं पर अत्यधिक निर्भरता के कारण विदेषी पूँजी का प्रवाह अधिक नही हो पाता और ये देष पिछडे रह जाता है।
07–विष्वनीयता एक प्रमुख समस्या होती है।

4.9 बोध प्रष्न/ अभ्यास के प्रष्न

बहुविकल्पीय प्रष्न–

1. निम्नलिखित में से उभरती बाजार अर्थव्यवस्था की विषेषता नहीं है–
क. तीव्र विकास
ख. तकनीकी प्रगति
ग. पूजीं निर्माण
घ. बाजार का पूर्ण दोहन

2. बाजार अर्थव्यवस्था की विषेषताएं है–
क. प्रतियोगिता
ख. निजी सम्पत्ति
ग. सीमित सरकार
घ. उपरोक्त सभी

3. स्वामित्व के आधार पर अर्थव्यवस्था के कितने प्रकार है–
क. तीन
ख. चार
ग. दो
घ. पांच

4. पूर्ण बाजार अर्थव्यस्था से आषय है–
क. उत्पादन, मांग और आपूर्ति के आधार पर
ख. उत्पादन सरकार के अधीन
ग. उत्पादन पर निजी तथा सार्वजनिक दोनो क्षेत्रों का प्रभाव
घ. उपरोक्त में कोई नहीं

4.10 सारांष

उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में एषिया, अफ्रीका तथा अन्य महाद्वीपों के देष आज काफी तेजी से आगे बढ रहे है। और वैष्विक बाजार के एक बडे भाग पर अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे है। परन्तु इन देषो में वाह्य तथा अन्दरूनी

का वैष्विक बाजार में प्रतियोगिता के लिये सरकारी सहयोग जरूरी है। क्योकि बिना प्रारम्भिक सहयोग के उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के उत्पाद पहले से बाजार पर नियंत्रण स्थापित किये हुये उद्योगो या वैष्विक शक्तियो का मुकाबला नही कर सकते। बाजार अर्थव्यवस्था के मार्ग में आने वाली समस्त बाधाओं को दूर करना तथा बाजार अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने वाले तत्वों पर संरक्षण प्रणाली, जो बाजार के छोटे से छोटे फर्म के हितो की रक्षा कर सके, आवष्यक है।

4.11 शब्दावली

सकल राष्ट्रीय उत्पाद (GNP)– एक अर्थव्यवस्था सभी उत्पादन साधनों द्वारा एक वर्ष में अंतिम रूप से उत्पादत की जाने वाली वस्तुओं एवं सेवाओं का समस्त मौद्रिक मुल्य को सकल राष्ट्रीय उत्पाद कहा जाता है।

आर्थिक कल्याण– आर्थिक कल्याण सामाजिक कल्याण का वह भाग है जिसे मुद्रा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्धित किया जा सकता है।

सकल घरेलू उत्पाद (GDP) :– एक वर्ष की अवधि में जितनी वस्तुओं एवं सेवाओं का किसी देश की भौगोलिक सीमा में उत्पादन होता है उसका बाजार कीमतों पर मौद्रिक मूल्य सकल घरेलू उत्पाद (GDP) कहलाता है।

मानवीय पूँजी निर्माण:–मानवीय पूँजी निर्माण का सम्बन्ध उस विनियोग से है जो धन के उत्पादकों के रूप में लोगों की योग्यताओं एवं क्षमताओं में सुधार करने के उद्देश्य से किया जाता है।

निवेष:– निवेष भविष्य में आय वृद्वि का एक साधन है यह किसी भी रूप में हो सकता है जैसे शेयर, वाड, म्युचुअल फंड, रियल स्टेट जमीन, सोना, एस0आई0पी0 इत्यादि में अपने पैसों का लाभ के उद्देष्य से लगाना। अर्थात पैसा कमाना और समय के साथ–साथ अपने निवेष से होने वाले लाभ को बढ़ा सकेगे इस मकसद से किया जात है।

बन्द अर्थव्यवस्था–जहा किसी बाहरी देष या बाहरी राज्य से किसी प्रकार का कोई लेन देन नही होता है

4.12 बोध प्रष्न के उत्तर

4.12 सहायक अध्ययन सामग्रीः–

सिंह, योगेश कुमार एवं गोयल, आलोक कुमारः(1908) "विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन" राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली ।

वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।

एस. पी. सिहं (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन एस चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।

एस.एन.लाल (2022) – 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज।

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, (2013)' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेष।

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, (2020) 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ

Agarwal R. C., "Economics of Development and Planning" Lakshmi Narayan

Taneja M. L. & Myer R. M., "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co- Delhi.

B. Okun and R. W. Richanison Studies in Economic Development Measuring the Conditions of the World's Poor: The Physical Quality of Life Inde.

एम.एल.झिंगन (2022) आर्थिक विकास एवं नियोजन वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।

आई0सी0धींगरा (1987) इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया एस. चन्द्र नई दिल्ली।

खण्ड–01

इकाई–05

पर्यावरण एवं आर्थिक विकास

इकाई का संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उददेष्य
5.3 आर्थिक विकास बनाम पर्यावरण
5.4 विकास और पर्यावरण संतुलन की आवष्यकता
5.5 पर्यावरण का महत्व
5.6 आर्थिक पर्यावरण
5.7 पर्यावरण सम्बन्धी समस्या
5.8 बोध प्रष्न
5.9 सारांष
5.10 शब्दावली
5.11 बोध प्रष्न के उत्तर
5.12 उपयोगी पुस्तकें
5.13 वस्तुपरक प्रष्न

5.1 प्रस्तावनाः– किसी भी देष में विकास होने के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों का लाभ होना सुनिष्चित है। क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों के होने से ही विकास की नींव पड़ती है। अर्थात विकास के साथ–साथ पर्यावरण आधारित संघर्ष भी पर्यावरण संतुलन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हुए बनायी गयी नीतिया, तथा संघर्ष बढ़ते जा रहे हैं। जैसा कि हाल ही में अमेजन के वनों में लगी आग जो कि कृषि भूमि के लिए विस्तृत क्षेत्र बनाने में लिए लगायी गयी आग के रूप में देखी गयी तथा पर्यावरणविदों–ने इस घटना की निन्दा और विरोध प्रदर्षन किया भारत में भी सभी प्रकार के आन्दोलन की कमी नही है सरकारें बार–2 विकास के नाम पर पर्यावरण को खतरे में डाल कर नीतियों का निर्माण करती आ रही हैं। यह प्रभाव देखने को मिलना प्रारम्भ हो गया है। भारत में, पर्यावरण आन्दोलन के क्रम में विश्नोई आन्दोलन जो 1700 ई0 के आस–पास वनों के कटाई के खिलाफ चला था, चिपको आन्दोलन जिसमें चंडी प्रसाद भट्ट तथा सुन्दर लाल बहुगुणा के नेतृत्व में वनो की कटाई रोकने हेतु किया गया विरोध, उत्तर कन्नड़ क्षेत्र में पांडूरंग हेगडे के नेतृत्व में 1983 में अप्पिको आन्दोलन, 1980 में केरल में कुंतीपूछ नहीं पर बनने वाली परियोजना का जन विरोध जो साइलेन्ट घाटी आन्दोलन के रूप में सामने आया। इसी प्रकार 1980में ही बिहार, झारखण्ड और उडीसा के क्षेत्रों में भी जंगल बचाओं आन्दोलन,1985 से मेधा पाटेकर के नेतृत्व में नर्मदा बचाओं आन्दोलन, टिहरी बांध आन्दोलन, वर्तमान मे महाराष्ट्र में मेट्रो परियोजना का विरोध जो जंगलो पेडो को काटकर बनायी जाने वाली है मध्य देष में हीरा के लिए जंगल कटाई का विरोध करने हेतु लाखो लोग सडक पर आ गये है। जिससे यह एक बात से कोई भी इन्कार नही किया जा सकता कि इस प्रकार के विकास की आधारषिला प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से प्रारम्भ होती है। और पर्यावरण के लिए अहितकारी सिद्व होता है।

5.2 उद्देष्यः–

1. इसे पढने के बाद छात्रों में पर्यावरण की समझ हो सकेगी।
2. पर्यावरण के लिए हानिकारक कारकों के बारे में जान सकेगे।
3. पर्यावरण तथा विकास के मध्य सम्बन्ध को समझ सकेगे।

4. विकास के लिए पर्यावरण की सार्थकता की समझ हो सकेगी।
5. पर्यावरण के लिए अनुकूल तकनीकी के बारे में जान सकेगे।
6. पर्यावरण अनुकूल विकासोन्नमुखी तकनीकी अर्थात सत्त विकास के लिए आवष्यकतानुसार संसााधनों का शोषण की स्थिति से अवगत हो सकेगे।

5.3 आर्थिक विकास बनाम पर्यावरणः—किसी भी देष लिए विकास के मायने विभिन्न पहलुओं से महत्वपूर्ण होते हैं। विकास का अर्थ प्रायः देष के नागरिकों को अत्याधुनिक सुविधाओं को उपलब्ध कराना होता है। जिसके लिए नागरिकों के पास आय का उत्तम स्रोत होना अतिआवष्यक है। जिससे गरीबी नामक भयावह बिमारी से छुटकारा दिलाया जा सके। और देष के नागरिक बेहतर जीवन व्यतीत कर सके। यदि इस प्रकार के दृष्टिकोण को अपना कर विकास नीतिया अपनायी जाती है तो यह नीति विकास क सततता की नीति के अनुकूल होती है। अर्थात गरीबी और अमीरों की बीच की खायी को बढ़ाने की बजाए घटाने वाली नीति कही जा सकती है। विकास के साथ— सरकारी राजस्व में वृद्वि सरकारी योजनाओं के खर्च में कटौती प्रारम्भ हो जाती है। जिससे सरकारें धन का प्रयोग किसी अन्य क्षेत्र में करना प्रारम्भ कर देती है। इसी सम्बन्ध में पर्यावरण की भूमिका भी देष की तरक्की में महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक संसाधनो का विकास की विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न—2 प्रयोग होता है जो पर्यावरण के लिए चिन्ता का विषय बनता आ रहा है। हलांकि सरकार द्वारा इसे किसी अन्य तरीके से कम्पेनसेट करने का प्रयास किया जाता। वह प्रयास उसकी भरपायी हेतु पर्याप्त नहीं होता है। जैसे खनन, ईंट, लकड़ी कोयला, हीरा, लोहा इत्यादि को प्राप्त करने हेतु जमीनों, पेड़ो, पवर्तो तथा उपजाऊक्षेत्रों का अवषोषण किया जाता है। उत्पादन की प्रक्रिया में विभिन्न गैसों का उत्सर्जन, अपषिष्टों का पर्यावरण द्वारा ही अवषोषण होता है। वस्तुतः सरकार द्वारा इसके संरक्षण पर विषेष ध्यान नही दिया जाता है। जो खेद का विषय है। लगातार संसाधनों का शोषण, पृथ्वी का संसाधन विहीनता के तरफ धकेले जा रहा है। तथा उपयोगी संसाधनों की कमी होती जा रही है।

वर्तमान समय में भारत में भूमि अधिग्रहण कानून को लचीला बना दिया गया है। जो इस वात के तरफ संकेत है कि विकास के लिए स्थापित होने वाली परियोजनाओं हेतु काफी ज्यादा मात्रा में किसानो से खेती योग्य भूमि/जंगल अधिग्रहित किया जायेगा या किया जा रहा है और इस भूमि पर उपस्थित जंगलो पेड़ो की कटाई कर दी जाती है। तथा इनको प्रतिस्थापित नहीं किया जा रहा है। ग्लोबल वार्मिग और रिक्तिकरण ने पूरे विष्व को प्रमाणित किया है। जिससे एक वर्ग इससे काफी प्रभावित हुआ है अर्थात विकास और पर्यावरण प्रदूषण के कारण अपनी समस्याएं अति भयावह रूप लेती जा रही है। अर्थात सरकारी नीतियों और विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लिए हस्तक्षेप और उसके अभिकल्पन तथा कार्यान्वयन के कारण उत्पन्न मुद्े पर वृस्तृत रूप रेखा तैयार करने की आवष्यकता है।

अर्थषास्त्रियों का एक समूह जो यह मानकर चलता है कि विकास बिना विनास के सम्भव नहीं है। अर्थात विकास के लिए पेड़ो या जंगलो का कटना आवष्यक है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, फलाईओवर, मषीनीकरण, इत्यादि की स्थापना के लिए प्राकृतिक संसाधन का दोहन आवष्यक मानते है। उनका मानना है कि पर्यावरणीय क्षति और आर्थिक चुनौतियों को एक साथ रख कर आंकलन करना ठीक नही है। लेकिन इतना मानना है कि पर्यावरणीय क्षति से होने वाले नुकसान का मूल्यांकन करना आवष्यक है तथा विकास के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों की क्षतिपूर्ति आवष्यक है। अर्थात विकास परियोजनाओं को पारित करने से पहले उसके संभावित पर्यावरणीय कारको पर संवेदनषीलता से विचार किया जाना चाहिए। इस उद्देष्य की पूर्ति हेतु वर्ष 2006 में सरकार द्वारा विषेष कदम उठाते हुए मूल्याकन पद्वति को अपनाया गया। साथ ही पर्यावरणीय प्रभाव का ययोचित मूल्यांकन (कारण तथा प्रभावों) राष्ट्रीय हरित प्राधिकरण (National green tribunal) द्वारा भी किया जाता हैतथा ससयम चेतावनी और निर्देष जारी किये जाते है, भी एक सशक्त माध्यम है।

5.4 विकास और पर्यावरण संतुलन की आवष्यकता—सत्त विकास—की प्राप्ति हेतु पर्यावरण संतुलन बनाये रखना अति आवष्यक है। नीति निर्माताओं को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कहीं आर्थिक भौतिकता, शारीरिक

और मानसिक सुकून के साथ समझौता न करना पड़े। अर्थात भौतिकता के चक्कर में पर्यावरणीय प्रभावों की अवहेलना शारीरिक और मानसिक पीड़ा का कारण भी बन सकता है, को ध्यान में रखते हुए ही लक्ष्य का निर्धारण सुनिष्चित करना चाहिए।शहरी नियोजन के समय यदि कुछ बातों का ध्यान रखा जाय तो ससमय समस्याओं से निजात पायी जा सकती है। जैसे किसी शहरी विकास कार्यक्रय के क्रियान्वयन के समय पर्यावरणीय पहलू (पेड़ का बीच में आना, पोखरे का बीच में आ जाना बगीचों के बीच से निर्माण कार्य मरूस्थलीयकरण में योगदान देने वाली परियोजनाए) बीच में आ जाये तो अपनी नीतियों में परिवर्तन लाना चाहिए। पोखरे को मिट्टी से भर देना, बगीचों को काट कर विकास परियोजनाओं के क्रियान्वयन संबंधित कार्य करना आदि को नही किया जाना चाहिए। समस्त पर्यावरणीय क्षति संबंधित कारको पर विचार करना साथ ही विकास के उत्पाद पर्यावरण के महत्व को समझने की आवष्यकता है। क्योंकि किसी भी पर्यावरण प्रतिकूल परियोजना का ससयम विरोध कर ही ऐसी परियोजनाओं पर अंकुस लगाया जा सकता है। अन्यथा इस प्रकार के परियोजनाए प्रारम्भ हो जाने के बाद रोक लगा पाना मुष्किल हो जाता है। सरकार को भी पर्यावरणीय मुद्दों तथा विकास के बीच सामंजस्य न केवल वर्तमान परिस्थितियों में अपितु भविष्य के साथ भी सामन्जस्यता स्थापित करना अतिआवष्यक है। चूंकि भारत मे प्राकृतिक संसाधन का अत्याधिक दोहन हो चुका है। जो शहरों के विकास की पूरी योजना पर प्रष्न चिन्ह खड़ा करता है। समस्त प्राकृतिक स्त्रोतों जैसे–नदी, झील, झरना, तालाब, इत्यादि का संरक्षण सुनिष्चित किया जाना चाहिए तथा कृषि योग्य भूमि में परियोजनाए स्थापित करने से पूर्व पर्यावरणीय विकास पर फोकस रखना जरूरी है। अर्थात विकास और पर्यावरणीय संतुलन को ध्यान में रखना अति आवष्यक है।

5.5 पर्यावरण का महत्वः– जैसा कि कहा गया है कि मानव शरीर पॉच तत्वों से मिलकर बना है। ध्यान से देखा जाए तो इन तत्वों में सभी तत्व पर्यावरणीय तत्व है अर्थात मानव शरीर को स्वस्थ रखने हेतु स्वस्थ मिट्टी, साफ पानी, स्वच्छ इर्धन (अग्नि), साफ हवा तथा शून्य (आकाष) का होना अति आवष्यक है। अर्थात मिट्टी, पानी, अग्नि, वायु और शून्य को साफ स्वच्छ और सुन्दर रखकर पर्यावरण को बचाया जा सकता है, और इन पॉच तत्वों का संतुलन ही हमारे शरीर को तथा मन को स्वस्थ रखा जा सकता है। जैसे अग्नि अर्थात तापमान में लगातार वृद्वि जिसे ग्लोबल वार्मिग कहते है, के प्रभावों से सभी भली भाति परिचित है। इसी प्रकार जल प्रदूषण होने से भी समस्याए उत्पन्न हो जाती है। प्रदूषित जल पीने से हैजा, टायफाइड, पेचिस इत्यादि रोगों से ग्रसित होना पड़ता है। भोजन जो कि स्वस्थ मिट्टी में उत्पादित भोजन स्वस्थ होता है। जैसा कि वर्तमान में आर्गेनिक फार्मिंग और आर्गनिक खेती प्रोडक्टस का प्रचलन शुरू हो गया है। जो बिना किसी रसायनिक खाद के प्रयोग से उत्पादित किया जाता है। तथा सामान्य खाद्यान्न से महॅगा भी बिकता है। दिल्ली में हवा में फैल जाने के कारण लोगों को आक्सीजन गैस सिलेण्डर इत्यादि लेकर बाहर निकलना पड़ा। हमारा वातावरण अषुद्व होने से तमाम प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अर्थात पॉच तत्वों में समायोजन और संतुलन अति आवष्यक है। समस्त सजीव पेड़ पौधे, जीव जन्तुओं तथा हयूमस के सामूहिक क्रियाकलाप से आपस में मिलकर पर्यावरणीय क्रियाए फूड चेन, आक्सीजन चेन इत्यादि का संचालन होता हैं। अतः पर्यावरण के समस्त पहलुओं का ज्ञान को लोगों के व्यवहार में सम्मलित करने की आवष्यकता है। अर्थात सैद्वान्तिक पहलुओं को व्यवहारिक बनाने की आवष्यकता आज के समय की प्रमुख मॉग है। समाज के लोगों के कर्तव्य तथा दायित्वों का एहसास के बिना व्यक्ति पर्यावरण के प्रति संवेदनषील नही हो सकता। व्यक्ति को अपने आर्थिक पर्यावरण के विषय में परिचित होना आवष्यक है।

5.6 आर्थिक पर्यावरण–किसी भी देष की दो सीमाएं होती है। पहली भौगोलिक सीमा तथा दुसरी आर्थिक सीमा ठीक उसी प्रकार पर्यावरण को भी दो भागों में बांट कर देखा जा सकता है। भौगोलिक और प्राकृतिक पर्यावरण का दूसरा पहलू कृत्रिम एवं सामाजिक पर्यावरण भौगोलिक तथा प्राकृतिक पर्यावरण के अन्तर्गतप्राकृतिक संसाधनों जैसे नदी, झील, जल वनस्पति, पषुधन तथा समस्त प्रकार के खनिज जो प्राकृतिक रूप से पाये जाते है। दूसरें राज्यो में इसके अन्तर्गत समस्त जीव जगत को सामिल किया जाता है। जिसमें जल और थल पर प्राकृतिक रूप से उपलब्ध संसाधनों को भी सम्मलित किया जाता है। इसका हमारे सामाजिक और आर्थिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। प्रायः आप गॉवो में उस व्यक्ति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति को अन्य से बेहतर मापते हुए

देखते होंगे जिसके पास भूमि तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनो पर अधिकार ज्यादा होता रहा होगा। जबकि कृत्रिम तथा सामाजिक पर्यावरण का अभिप्राय सुंखी एवं समृद्व जीवन से लगाया जाता है। अर्थात मानव अपने पर्यावरण से क्रिया करता रहता है और उसमें अपनी आवष्यकतानुसार समायोजित करता रहता है। विकास के प्रारम्भ में जनसंख्या तथा आवष्यकताए दोनो को पूरा करना आसान था क्योंकि मानव ने अपने आस–पास की प्रकृति के अनुरूप बनाकर अपनी आवष्यकताओं की पूर्ति कर लिया परन्तु आवष्यकताओं ने नये अविष्कार या नयी खोजो के लिए विवष होना पडा। पर्यावरणीय कारकों का वैकल्पिक प्रयोग प्रारम्भ कर दिया जैसे–कृषि करना, पशुपालन, स्थायी धर बनाना, गाड़ी से वस्तुओं को एक जगह से दूसरे जगह ले जाना तथा समाज का निर्माण भी इसी प्रक्रिया के बाद प्रारभ हुआ आपस में सामाजिकता के मध्य वस्तु के लेन देन का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। जिसे बाद में वस्तु विनियम के रूप में जाना गया तब व्यापार प्रारम्भ हो गया। परिणामस्वरूप सूचना और औधौगिकरण का दौर प्रारम्भ हुआ। और आज विष्व में वस्तुओं तथा सेवाओं का द्रुत गति से संचार आरम्भ हो गया है। परन्तु इन तमाम क्रियाओं के दौरान मानव ने अपने पर्यावरण को उसके मूल स्वरूप में परिवर्तन के लिए विकास कर दिया। तथा यह प्रक्रिया एक श्रृखला का रूप ले लिया जो मानव के लिए ही दुःखदायी सिद्व होने लगी।

आर्थिक पर्यावरण के अन्तर्गत मानव की आर्थिक क्रियाओं के अन्तर्गत उत्पन्न होने वाले कारण तथा प्रभावो का अध्ययन किया जाता है। जिसमें मानव ने अपने जीवन के कुषलतापूर्वक सुगम बनाने हेतु, अत्याधिक धनोपार्जन हेतु पर्यावरण से समायोजन के पष्चात् उत्पन्न किया है। जिसमें अर्थव्यवस्था के प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक क्षेत्रों यथा–कृषि, उघोग, व्यापार, परिवहन, संचार, बैकिंग,बीमा, खोज, खनन, सेवाओं का व्यापार आय व्यय इत्यादि आर्थिक गतिविधियों को सम्मलित किया जाता है। परन्तु इन गतिविधियों का स्वरूप अस्थायी होता है। अर्थात आर्थिक गतिविधियां अस्थिर होती है अर्थात आर्थिक पर्यावरण का स्वरूप भी अस्थिर होता है। यदि आर्थिक पर्यावरण प्रतिकूल हो तो गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, सूखा, जन असंतोष, जैसी समस्याओं का सामना देष को करना पड़ता है जिस कारण सरकार सम्पूर्ण ध्यान विकास मुखी ने होकर गरीबी, बेरोजगारी जैसे मुददो में फसा रहता है परिणामस्वरूप आर्थिक विकास की गति प्रभावित होती है या आर्थिक सवृद्वि की दर स्थिर हो जाती है।

5.7 पर्यावरणीय कुजनेट्स वक्र के कारण

आर्थिक विकास के साथ प्रदूषण के स्तर में गिरावट के अनुभवजन्य साक्ष्य। अध्ययन में पाया गया कि अमेरिका में उच्च आर्थिक विकास ने कारों के उपयोग में वृद्धि की, लेकिन साथ ही – विनियमन के कारण, वायु प्रदूषण के स्तर (विशेष रूप से सल्फर डाइऑक्साइड के स्तर में गिरावट आई)।

5.7.1 वृद्धि के साथ अतिरिक्त आय आर्थिक विकास की उच्च दर के साथ, बुनियादी आवश्यकताओं के लिए भुगतान करने के बाद लोगों के पास अधिक आय होती है इसलिए, वे बेहतर पर्यावरणीय मानकों के बदले में अधिक कीमत चुकाने के लिए अधिक उत्तरदायी हैं। पारंपरिक आर्थिक सिद्धांत वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद और आर्थिक विकास की दरों को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करता है। लेकिन जागरूकता बढ़ रही है कि आर्थिक विकास और जीवन स्तर के बीच की कड़ी कमजोर हो सकती है। जीवन स्तर पर ध्यान केंद्रित करना राजनीतिक रूप से लोकप्रिय हो सकता है।

5.7.2 बेहतर तकनीक। लंबी अवधि के आर्थिक विकास के पीछे प्राथमिक प्रेरणा शक्ति बेहतर तकनीक और उच्च उत्पादकता है। उच्च उत्पादकता के साथ, हम कम कच्चे माल के उपयोग के साथ उच्च उत्पादन देख सकते हैं। उदाहरण के लिए, 1950 के दशक से, कार के उपयोग की तकनीक ने ईंधन दक्षता में काफी सुधार किया है।

1950 के दशक में, कई कारों की मील प्रति गैलन बहुत कम थी। हाल के वर्षों में, कार निर्माताओं ने ईंधन की खपत को कम करने में प्रगति की है और हाइब्रिड तकनीक विकसित करना शुरू कर दिया है।

5.7.2 सौर और नवीकरणीय ऊर्जा। उन्नत प्रौद्योगिकी ने पर्यावरणीय क्षति की संभावना को कैसे कम किया है, इसका एक अच्छा उदाहरण सौर प्रौद्योगिकी में प्रगति है। हाल के वर्षों में, सौर ऊर्जा की लागत में काफी गिरावट आई है – स्वच्छ प्रौद्योगिकी की संभावना बढ़ रही है।

5.7.2 औद्योगीकरण। प्रारंभ में, आर्थिक विकास खेती से विनिर्माण की ओर स्थानांतरित होता है। इससे पर्यावरण का और अधिक क्षरण होता है। हालाँकि, बढ़ी हुई उत्पादकता और बढ़ती वास्तविक आय में औद्योगिक से सेवा क्षेत्र में तीसरा बदलाव देखा गया है। यूके जैसी अर्थव्यवस्था ने औद्योगीकरण को अर्थव्यवस्था के हिस्से के रूप में सिकुड़ते देखा है। सेवा क्षेत्र का आमतौर पर विनिर्माण की तुलना में कम पर्यावरणीय प्रभाव होता है।

5.7.2 सरकारी विनियमन की भूमिका। आर्थिक विकास आमतौर पर सकल घरेलू उत्पाद के हिस्से के रूप में सरकार के आकार में वृद्धि देखते हैं। स्वास्थ्य और जीवन स्तर को नुकसान पहुंचाने वाली पर्यावरणीय बाह्यताओं को हल करने के प्रयास में सरकार करों और विनियमों को लागू करने में सक्षम है। आय की सीमांत उपयोगिता का ह्रास। बढ़ती आय की सीमांत उपयोगिता कम होती है। आपकी पहली 10,000 वार्षिक आय का लाभ बहुत अधिक है। लेकिन, यदि आय 90,000– 100,000 से बढ़ जाती है तो तुलना में लाभ बहुत सीमित होता है। यदि आप पर्यावरणीय गिरावट (जैसे भीड़भाड़, प्रदूषण और खराब स्वास्थ्य) के साथ रहते हैं तो बहुत अधिक वेतन प्राप्त करना थोड़ा सा सांत्वना है। इसलिए एक तर्कसंगत व्यक्ति जो बढ़ती आय देख रहा है, वह जीवन स्तर के अन्य पहलुओं को सुधारने पर अधिक जोर देना शुरू कर देगा।

5.8 अभ्यास हेतु प्रष्न–

1. चिपको आन्दोलन से सम्बन्धित है–
क. चण्डी प्रसाद भट्ट
ख. सुन्दर लाल बहुगुणा
ग. क और ख दोनों
घ. पाण्डूरंग हेगले
2. षहरीकरण, औद्योगीकरण, विकास पर्यावरण का दोहन है–
क. सत्य
ख. असत्य

3. पर्यावरणीय कुजनेट्स दिखाता है–
क. आर्थिक विकास तथा वायु प्रदूषण के मध्य सम्बन्ध
ख. आय तथा आर्थिक विकास के मध्य सम्बन्ध
ग. आर्थिक विकास तथा पर्यावरण गिरावट के मध्य सम्बन्ध
घ. निम्न में कोई नहीं

4. आर्थिक पर्यावरण का अर्थ है–
क. भगौलिक सीमा
ख. आर्थिक सीमा

ग. समाजिक तथा आर्थिक सीमा
घ. मानव की आर्थिक क्रियाओं तथा उनसे उत्पन्न कारण तथा प्रभाव का अध्ययन

5.9 सारांष– विकास के साथ–साथ पर्यावरण का स्वस्थ होना अतिआवष्यक है क्योकि विकास मानव जाति के लिये ही किया जाता है। जब पर्यावरण नहीं होगा तो वह विकास किसी काम का नहीं होगा। कोई भी बाजार यंत्र तभी सफल होगा जब पर्यावरणीय संसाधन का समुचित उपयोग किया जा सके। अन्यथा षुद्ध वायु और जल, वन्य प्राणी, जलचर, इत्यादि पर्यावरणीय संसाधन का दोहन केवल बाजार को बढाने के लिये जिनके सम्बन्ध में बाजार का कोई अस्तित्व नहीं है, नहीं किया जाना चाहिए। विकास के विभिन्न स्तरों पर उत्पादन के संरचना में परिर्वतन आय तथा आर्थिक विकास के उचे स्तर पर पर्यावरण के स्वरूप में परिवर्तवन तथा विकसित देषों में प्रयोग हो रही पर्यावरण अनुकूल उत्पादन तकनीकी आर्थिक पर्यावरण तथा अर्थिक विकास के मध्य सामन्जस्य की पुष्टि करती है।

5.10 षब्दावली–

तकनीकी– न्यूनतम पर्यावरणीय क्षरण को प्रयोग में लाने वाली तकनीकी।
नवीकरणीय ऊर्जा पर्यावरण क्षति की सम्भावना को कम करने में सौर ऊर्जा जैसी स्वच्छ, पर्यावरण मैत्री ऊर्जा स्त्रोत।
ग्रीन एकाउन्टिग– विकास के दौर में हाने वाले पर्यावरणीय क्षति का हिसाब –किताब

5.11 प्रष्नों के उत्तर–

1. ग. क और ख दोनों
2. असत्य
3 ग. आर्थिक विकास तथा पर्यावरण गिरावट के मध्य सम्बन्ध
4. घ. मानव की आर्थिक क्रियाओं तथा उनसे उत्पन्न कारण तथा प्रभाव का अध्ययन

5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची–

वी.सी. सिन्हा (2010) विकास और पर्यावरणीय अर्थशास्त्र सहित्य भवन पब्लिकेशन आगरा।
एस. पी. सिहं (2001) आर्थिक विकास एवं नियोजन एस चन्द एण्ड कम्पनी लि. नई दिल्ली।
एम.एल.झिंगन (2022) आर्थिक विकास एवं नियोजन वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा.लि. नई दिल्ली।
आई0सी0धींगरा (1987) इकोनॉमिक डेवलपमेंट एन प्लानिंग इन इण्डिया एस. चन्द्र नई दिल्ली।
एस.एन.लाल (2022), 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज।

5.13 सहायक अध्ययन सामग्री

B. Okun and R. W. Richanison Studies in Economic Development Measuring the Conditions of the World's Poor, The Physical Quality of Life Inde 1979.
Agarwal R. C.(1907), "Economics of Development and Planning" Lakshmi Narayan.
Taneja M. L. & Myer R. M., "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co- Delhi.
एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन,(2013)'इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेष।
ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, (2020) 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ।

5.14 निबन्धात्मक प्रष्न

1. पर्यावरण तथा आर्थिक विकास के मध्य सम्बन्ध को समझाइये
2. विकास और पर्यावरण संतुलन की आवष्यकता पर प्रकाष डालिये।
3. आर्थिक पर्यावरण को उदाहरण सहित स्पष्ट करते हुए विकासषील देषों के आर्थिक पर्यावरण को स्पष्ट किजिए।

खण्ड–2

इकाई–01

नव क्लासिकी अपूर्ण बाजार सिद्धान्त, दरिद्रता का दुष्चक्र (नर्क्स) सिद्धान्त

इकाई का संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उददेष्य
1.3 सोलो के विकास प्रारूप की रूपरेखा
1.4 सोलो का विकास प्रारूप की मान्यताएँ
1.5 दीर्घकालीन वृद्धि का प्रारूप
1.6 विकास का प्रारूप
1.7 (आधारभूत समीकरण की रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुतीकरण)
1.8 प्रारूप में अस्थिरता की स्थितियां
1.9 आलोचनात्मक मूल्यांकन
1.10 सारांष
1.2.3 नर्क्स का कुचक्र
1.2.4 गरीबी के कुचक्र का आपूर्ति पक्ष
1.2.5 दरिद्रता के कुचक्र का मांग पक्ष
1.2.6 आलोचनाए
1.2.7 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
1.2.8 सारांष
1.2.9 षब्दावली
1.2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.2.11 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
1.2.12 निबन्धात्मक प्रष्न
1.11 षब्दावली
1.12 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
1.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.14 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ
1.15 निबन्धात्मक प्रष्न

1.1 प्रस्तावनाः–

इस इकाई में सोलो विकास के सम्बन्ध में बड़े ही स्पष्ट रूप से और विस्तार से में चर्चा की है। इसके अन्तर्गत विकास का निर्धारण किस प्रकार होता है। इसके अतिरिक्त इकाई में सोलो विकास प्रारूप के संतुलन को विस्तार से विष्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई के बाद सोलो विकास प्रारूप के महत्व को समझा सकेगें, तथा एक अर्थव्यवस्था के विकास में इसके योगदान का स्पष्ट विष्लेषण कर सकेगें।

1.2 उददेष्य :–

इस इकाई को पढने के बाद विद्यार्थी निम्नलिखित समझ विकसित कर सकेगें।

1. सोलो के विकास मॉडल को समझ सकेगें।
2. सोलो के विकास की मान्यताएँ को जान सकेगें।
3. सोलो के विकास माडल की प्रमुख विषेषताओं के बारे में बता सकेगें।

1.3 सोलो का विकास माडल–

हैरोड डोमर माडल के आलोचकों में नव प्रतिष्ठित अर्थषास्त्री अग्रणी है और उनमें भी सबसे आगें है प्रो0 रार्बट एम0 सोलो। हैरोड डोमर माडल स्थिर पूंजी–श्रम अनुपात की धारणा पर आधारित है सोलो ने 1956 में प्रकाषित अपने लेख " A Contribution to the theory of Economic Growth" में स्थिर पूंजी श्रम अनुपात की धारणा की मान्यता को अस्वीकार करते हुये कहा कि पूंजी–श्रम अनुपात में परिवर्तन करके उत्पादन में परिवर्तन लाया जा सकता है।

प्रो0 सोलो का यह मत है कि पूंजी–श्रम अनुपात में परिवर्तन करने से आर्थिक विकास प्रक्रिया में समायोजनषीलता बढ जाती है। दूसरे रूप में कहे, संसाधनो की वर्तमान स्थिति के अनुरूप उत्पादन में कम या अधिक पूंजी–श्रम अनुपात वाली तकनीक को अपनाना सम्भव हो जाता है।

1.4 सोलो का विकास माडल की मान्यताएँ–

सोलो का विकास माडल की प्रमुख मान्यताए निम्नवत है–

1. एक समिश्र वस्तु का उत्पादन होता है।
2. पूंजी मूल्य हास की गुजाइष छोड़ने के बाद उत्पादन को षुद्ध उत्पादन समझा जाता है। फलस्वरूप विषेष/बचतें और यह पूंजी–कोष में होने वाले परिवर्तन (K) के बाराबर होती है, अर्थात

$$1=sY=K$$

3. उत्पादन के केवल दो साधनों, श्रम तथा पूंजी का प्रयोग होता है।
4. पैमानें के स्थिर प्रतिफल होते है। दूसरे षब्दो में उत्पादन फलन प्रथम कोटि का समरूप होता है।
5. उत्पादन के दोनों साधनों श्रम तथा पूंजी को उनकी सीमान्त भौतिक उत्पादकताओं के अनुसार भुगतान किया जाता है।
6. कीमते तथा मजदूरी लोचली होती है।
7. श्रम स्थायी रूप से पूर्ण रोजगार में रहता है।
8. श्रम ष्षक्ति की वृद्धि दर बर्हिजनित निर्धारित होती है।
9. पूंजी का उपलब्ध स्टाक भी पूर्ण नियुक्त रहता है।
10. पूंजी संचय संमिश्र वस्तु के संचय के रूप में होता है।
11. श्रम तथा पूंजी का परस्पर स्थानापन्न किया जा सकता है।
12. तकनीकी प्रगति तटस्थ है।
13. बचत प्रगति स्थिर है।

इन मान्यताओं के दिये होने पर सोलो ने अपने मॉडल में स्पष्ट किया जाता है कि यदि तकनीकी गुणांक परिवर्ती हो तो पूंजी श्रम अनुपात की प्रवृति यह होगी कि वह अपने आप को समय बीतने पर

संतुलन अनुपात की दिषा में समायोजित कर लेगा। यदि श्रम से पूंजी का प्रारंभिक अनुपात अधिक होगा तो श्रमषक्ति की तुलना में पूंजी तथा उत्पादन की वृद्धि अधिक धीरे होगी और विलोमषः भी। सोलो का विष्लेषण संतुलन पक्ष स्थिर अवस्था की ओर केन्द्रित है चाहें वह किसी भी पूंजी श्रम अनुपात से क्यों न प्रारम्भ हो।

1.5 दीर्घकालीन वृद्धि का प्रारूपः– सोलो सम्पूर्ण अवस्था में एक मात्र वस्तु का ही उत्पादन मान कर चलता है। केन्द्रीय विष्लेषण की सहायता से यह स्पष्ट करता है उत्पादन की दर ही अर्थव्यवस्था की वास्तिविक आय प्रकट करती है। आय का कुछ भाग उपभोग किया जाता है कुछ बचा लिया जाता है साथ ही निवेषित किया जाता है । दूसरे षब्दों में एक स्थिर पूंजी श्रम अनुपात बनाए रखने के लिए बचत का भाग अवष्य निवेष के बाराबर होना चाहिए। वह षुद्ध निवेष अथवा पूंजी स्टाक को [k(t)] एवं बचत की दर को sy(t) दर्षाता है जो बराबर है। निवेष बचत समीकरण यह हैः I=S अथवा

K= sy $\quad (K=\Delta k/\Delta t) \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots..(i)$

उत्पादन के साधन पूंजी K व श्रम L को उत्पादन फलन में दिखाने से

y = F(K,L)……………………………………..(ii)

जो स्थिर प्रतिफल दर्षाता है। समी0 (2) को समी0 (1) में रखने पर

$$\dot{K} = \frac{\Delta K}{\Delta t} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots.(iii)$$

समी0 (3) प्रौद्योगिक संभावनाओं को व्यक्त करता है। रोजगार स्तर व यह भी एक स्थिर सापेक्ष दर से बढता है। इस प्रकार
L(t)= Loe nt …………………………………….(iv)

प्रौद्योगिक उन्नति के अभाव में n वृद्धि की प्राकृतिक दर होगी। समय (t) में L श्रम की मात्राओं को रोजगार पर लगाते है जबकि समय O से लेकर t तक श्रम षक्ति एवं घांताकीय (Exponentially) रूप से बढती पूर्णत बेलोचदार श्रम की मांग है अर्थात श्रम पूर्ति वक्र Y अक्ष पर समांतर होगा।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल के दिये होने पर पूंजी श्रम जिस तीव्रता से बढते है उत्पादन तथा बचत मे वैसे बढते है। इस तरह संतुलन विकास संभव है। सोलो का मूल समी0 निम्न होगा।
K=sF(K, Loe nt) ………………………………(v)

1.6 सम्भव विकास प्रारूप

सोलो ने एक नयाचर श्रम से पूंजी का अनुपात लिया है। समय के साथ आनुपातिक परिवर्तन को इस प्रकार लिखते है।

$$\frac{\dot{r}}{r} = \frac{\dot{K}}{K} - \frac{\dot{L}}{L} \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots..(vi)$$

समय के साथ r में अनुपातिक परिवर्तन, समय के साथ पूंजी स्टाक में आनुपातिक परिवर्तन–समय के साथ श्रम षक्ति में आनुपातिक समीकरण (6) में

$$\dot{K} = sF(K, Loe^{nt})$$

$$r = \frac{K}{L}$$

$$\frac{\dot{r}}{r} = \frac{\dot{K}}{K} - \frac{\dot{L}}{L}$$

$$\frac{\dot{r}}{r} = \frac{sF(K,L)}{K} n$$

$$= \dot{r} = \frac{sF(K,L)}{K} - nr$$

L से गुणा तथा भाग देने पर समी0 (vii) का स्वरूप बदलने से क्योंकि उत्पादन फलन प्रथम कोटि के समरूप है।

$$= r\frac{1}{r} sF(r,1) - nr$$

or

$$\dot{r} = sF(r,1) - nr$$

जैसा कि सोलो ने बताया r= K/L ;k 1/r= L/K होगा तो आधारभूत समी0

1.7 विकास प्रारूप के आधारभूत समीकरण की रेखा द्वारा व्याख्या

आधारभूत समी0 में r=o रखने से sF(r,1)= दत होगें। तो श्रम षक्ति की वृद्धि बाराबर पूंजी स्टाक की वृद्धि बाराबर प्रति श्रमिक स्थिर उत्पादन। यही स्थिति संतुलित विकास प्रकट करती है। जैसा कि चित्र (1.1) में दिखाया है कि दत रेखा मूल बिन्दु से जाती है वक्र SF(r,1) इस ढंग से व्यक्त है कि पूंजी की घटती सीमांत उत्पादकता को व्यक्त करें। जब r=o तब दोनों वक्र एक दूसरे को e1 बिन्दु पर काटते है।

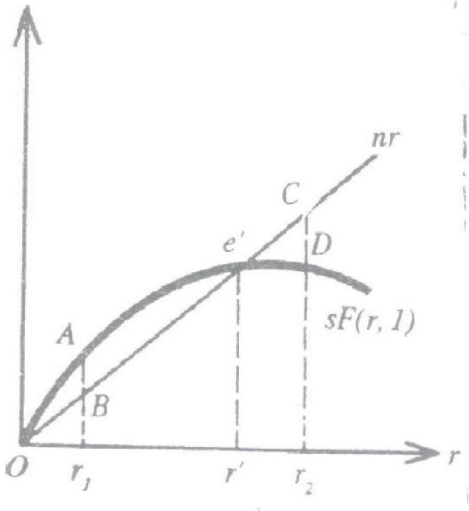

चित्रः–1.1

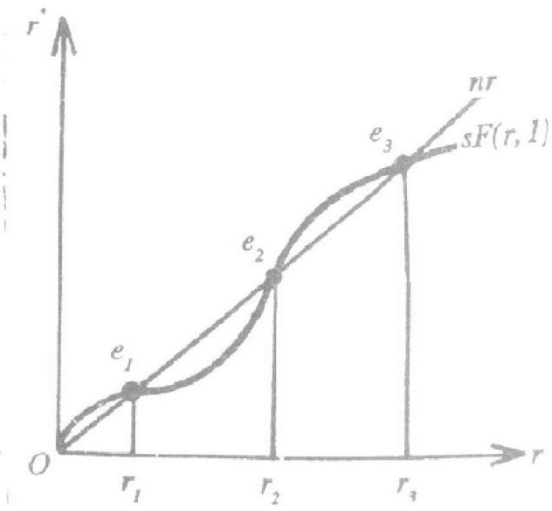

चित्रः–1.2

विकास प्रारूप में अस्थिरता की स्थितियां

दूसरी तरफ यदि $SF(r,1)>nr$, तो ऐसी स्थिति में पूंजी एवं उत्पादन में वृद्धि श्रम षक्ति की अपेक्षा अधिक होगी जब तक पूंजी का प्रारम्भिक संतुलन मूल्य r_1 के बराबर नहीं आ जाता। जैसे (1.1) में दिया है कि $r_1 > r_1$ और बचत की पूर्ति $Ar_1>Br_1$ निवेष की मात्रा से बिन्दु A से बिन्दु e_1 तक पूंजी में वृद्धि तीव्र रहेगी। इसके विपरीत $nr> SF\ SF(r_1)$ तब ऐसी स्थिति में निवेष की मात्रा $Cr_2>Dr_2$ बचत की पूंजी क्योंकि $r_2>r_1$ से इसलिए संतुलित विकास के लिए पूंजी श्रम अनुपात (r_2) के मूल्य को कम करके r1 के बराबर रखना है।

अतः निष्कर्ष के रूप में यह कहा जाता है कि जब परिवर्ती, समानुपातों तथा पैमानों के स्थिर प्रतिफल की समान्य नवक्लासिकी परिस्थितियों के अन्तर्गत उत्पादन होता है तो वृद्धि प्राकृतिक तथा अभिष्ट दरों में कोई साधारण विरोध सम्भव नहीं कोई छुरी धार संतुलन नहीं हो सकता। व्यवस्था श्रम षक्ति की किसी भी दी हुई दर से समायोजन कर सकती है और अन्ततः स्थिर समानुपातिक विस्तार की अवस्था तक पहुच सकती है। अर्थात

$$\dot{k}/k = \dot{L}/L = \dot{Y}/Y$$

1.8 आलोचनात्मक मूल्यांकन

प्रो0 ए0के0 सेन कई दृष्टिकोण से इसे दुर्बल तथा कमी वाला मानते है। इसकी प्रमुख आलोचनाए इस प्रकार है।

1 अवास्तविक मान्यतांए

2. निवेष फलन की अनुपस्थितिः प्रो0 सेन का कहना है कि सोलो प्रारूप में निवेष फलन अनुपस्थित है यदि इसे एक बार ष्षामिल कर ले तो सोलो प्रारूप में भी अस्थिरता की हैरोडियन समस्या तुरन्त पैदा हो जाती है।

3. वास्तिविक वृद्धि दर और आवष्यक वृद्धि दर के बीच संतुलन की उपेक्षा– यह केवल आवष्यक वृद्धि दर (GW) और प्राकृतिक वृद्धि दर (GN) के बीच संतुलन करने का प्रयास करता है। वास्तिविक वृद्धि दर (G) और आवष्यक वृद्धि दर (GW) में संतुलन की समस्या छोड़ देता है।

4. पूंजी एवं श्रम का प्रतिस्थापनः पूजी तथा श्रम के बीच में दीर्घकाल में कुछ प्रतिस्थापन होता है परन्तु यह मान लेना कि प्रतिस्थापन की यह सम्भावना सदैव पायी जाती है। वास्तविकता से परे है।

5. सतत या नियमित विकास की अवधारणाः– यह धारणा व्यावहारिक उपयोगिता के बजाए मात्र सैद्धान्तिक महत्व की निर्मल धारण बनकर रह जाती है।

6. पूंजी की समरूपता एवं लोचषीलता की अवास्तिविकता मान्यता पर आधारित है।

7. सोलो प्रारूप श्रमा/ प्रधान तकनीकी प्रगति की मान्यता पर आधारित है, जिसका कोई आनुभविक औचित्य नहीं है।

8. पूर्ण रोजगार का पाया जाना

9 निवेष का बचत पर निर्भर होना।

1.9 अभ्यास प्रष्न

वस्तुनिष्ठ प्रष्न

1. सोलो के विकास प्रारूप का वैकल्पिक रूप हैः

क. एडम स्मिथ

ख. हैरोड–डोमर

ग. माल्थस

घ. मार्क्स

2. सोलो का विकास प्रारूप सम्बन्धित हैः
क. अल्पकालीन वृद्धि से
ख. दीर्घकालीन वृद्धि से
ग. उपर्यक्त दोनों से
घ. उपर्युक्त कोई नहीं।

3. सोलो ग्रोथ मॉडल वर्णन करता हैः
क. किसी समय पर आउटपुट कैसे निर्धारित किया जाता है।
ख. पूंजी और श्रम की निश्चित मात्रा के साथ उत्पादन कैसे निर्धारित किया जाता है।
ग. बचत, जनसंख्या वृद्धि और तकनीकी परिवर्तन समय के साथ उत्पादन को कैसे प्रभावित करते हैं।
घ. अर्थव्यवस्था के उत्पादन का स्थैतिक आवंटन, उत्पादन और वितरण।

4. सोलो ग्रोथ मॉडल में, पैमाने पर निरंतर रिटर्न की धारणा का मतलब है किः
क. सभी अर्थव्यवस्थाओं में प्रति श्रमिक पूंजी की मात्रा समान होती है।
ख. श्रमिकों की संख्या की परवाह किए बिना उत्पादन का स्थिर–अवस्था स्तर स्थिर रहता है।
ग. बचत दर मूल्यह्रास की स्थिर दर के बराबर होती है।
घ. किसी अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की संख्या प्रति श्रमिक उत्पादन और प्रति श्रमिक पूंजी के बीच संबंध को प्रभावित नहीं करती है।

1.10 सारांष

अध्ययन के पष्चात यह जान चुके है कि पूंजी–श्रम अनुपात में परिवर्तन करने से आर्थिक विकास प्रक्रिया में समायोजनषीलता बढं जाती है। दूसरे रूप में कहे, संसाधनो की वर्तमान स्थिति के अनुरूप उत्पादन में कम या अधिक पूजी–श्रम अनुपात वाली तकनीक को अपनाना सम्भव हो जाता है। सोलो ने अपने प्रारूप में स्पष्ट किया है कि यदि तकनीकी गुणांक परिवर्तित हो तो पूंजी–श्रम अनुपात की प्रवृति यह होगी कि वह अपने आप को समय बीतने पर संतुलन अनुपात की दिषा में समायोजित कर लेगा। यदि श्रम से पूंजी का प्रारम्भिक अनुपात अधिक होगा तो श्रम षक्ति की तुलना में पूंजी तथा उत्पादन की वृद्धि अधिक धीरे होगी और विलोमषः भी। सोलो का विष्लेषण संतुलन पक्ष स्थिर अवस्था की ओर केन्द्रित है चाहे वह किसी भी पूंजी–श्रम अनुपात से क्यों न प्रारम्भ हो।

सोलो ने निष्कर्ष रूप में अपने प्रारूप में इस प्रकार बताया कि, जब परिवर्ती समानुपातों तथा पैमानों के स्थिर प्रतिफल की समान्य नवक्सिकी परिस्थितियों के अन्तर्गत उत्पादन होता है तो वृद्धि प्रकृति तथा अभिष्ट दरों में कोई साधारण विरोध सम्भव नहीं। कोई छुरी धार संतुलन नहीं हो सकता। व्यवस्था श्रम षक्ति की किसी भी दी हुई दर से समायोजन कर सकती है और अन्ततः स्थिर समानुपातिक विस्तार की अवस्था तक पहुंच सकती है अर्थात

$$\frac{\Delta k}{k} = \frac{\Delta l}{l} = \frac{\Delta y}{y}$$

1.11 षब्दावली

तकनीकी प्रगति और आर्थिक विकासः सोलो विकास मॉडल के प्रत्येक पहलू को मापकर और हल करके, अर्थशास्त्री समझ सकते हैं कि प्रत्येक चर दूसरों को कैसे प्रभावित करता है।

किसी राष्ट्र में आर्थिक विकास और जीवन स्तर : यह मॉडल आर्थिक विकास और विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं में जीवन स्तर और कुल आय के बीच अंतर को दर्शाता है।

एक ग्राफ़ पर आर्थिक विकास सिद्धांतः सोलो ग्रोथ मॉडल एक सिद्धांत है कि अर्थव्यवस्था कैसे कार्य करती है, और जब अर्थशास्त्री मूल्यों का रेखांकन करते हैं, तो वे दृश्य रूप से प्रतिनिधित्व कर सकते हैं कि मॉडल में मूल्यह्रास और पूंजी कैसे कार्य करती है।

शुरुआती बिंदु : सोलो ग्रोथ मॉडल कई आधुनिक आर्थिक सिद्धांतों में विश्लेषण के लिए शुरुआती बिंदु है। यह दर्शाता है कि पहली बार अर्थशास्त्री किसी अर्थव्यवस्था के विकास में श्रम, प्रौद्योगिकी और पूंजी की भूमिका का विश्लेषण कर सकते हैं।

बाजार प्रतिस्पर्धा : सोलो मॉडल के नतीजे किसी देश की आर्थिक स्थिति की पहचान करने में मदद करते हैं ताकि वह बेहतर ढंग से समझ सके कि अपनी आत्म–निर्भरता बढ़ाने के लिए अपना ध्यान कहां केंद्रित करना है।

दरिद्रता का दुष्चक्र

1.2.3 नर्क्स का कुचक्रः गरीबी का कुचक्र तथा पूंजीं दुर्लभता

'' गरीबी के कुचक्र का अभिप्राय नक्षत्र मण्डल के समान ष्वक्तियों का इस प्रकार घुमना है कि वे परस्पर क्रिया प्रतिक्रिया करती हुई निर्धन देष को सदैव निर्धनता की अवस्था में बनाये रखने तथा उन्होने सम्पूर्ण परिस्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया–''एक देष गरीब है क्योकि वह गरीब है।'' कहने का अर्थ है कि यदि कोई देष गरीब होगा निष्चित रूप से उस देष के पास अपने न्यूनतम आवष्यकताओं की पूर्ति हेतु पूंर्जी की अनुपलब्धता होगी। अर्थात उसके पास आय कम होगी। आय कम होने के कारण उपभोग स्तर नीचा होगा अर्थात देष के जनसंख्या को भोजन तथा षिक्षा का प्रबन्ध नहीं हो पायेगा। परिणामस्वरूप जनसंख्या का बडा भाग कुपोषित तथा अकुषल श्रमिकों की होगी। परिणामस्वरूप उत्पादकता कम होगी जिससे आय में कमी आयेगी। जब आय कम होगी तो बचत कम होगी। ऐसी स्थिति में पूंजी निर्माण की दर भी कम होगी जिससे विनियोग में कमी आयेगी तथा नये क्षेत्रों का विकास नहीं होगा।

1.2.4 दरिद्रता के कुचक्र का पूर्ति पक्ष

अल्प विकसित देषों में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय मात्रा बहुत ही कम होती है जिसके परिणामस्वरूप वहां के लोगों में बचत क्षमता का विकास नहीं हो पाता है क्योकि आय का सम्पूर्ण भाग उपभोग व्यय में समाप्त हो जाता है। कम बचत क्षमता के कारण बचत कम होती है परिणामस्वरूप विनियोग के लिये पूंजी नहीं मिलती जब पूंजी के कमी के कारण नया विनियोग नहीं होता है फलस्वरूप उत्पादकता की कमी तथा वास्तविक आय में कमी परिलक्षित होती है। यह चक्र लगातार चलता रहता है जो एक वृत्त का रूप ले लेता है। अर्थात चक्र जहां से प्रारम्भ हुआ वहीं समाप्त हो जाता है। इस प्रकार आपूर्ति पक्ष मांग को पूरा करने हेतु ऋण पर निर्भर हो जाता है अर्थात अल्प विकसित देषो का आर्थिक विकास विदेषी पूजीं पर निर्भर हो जाता है। इस चक्र को रेखा चित्र द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

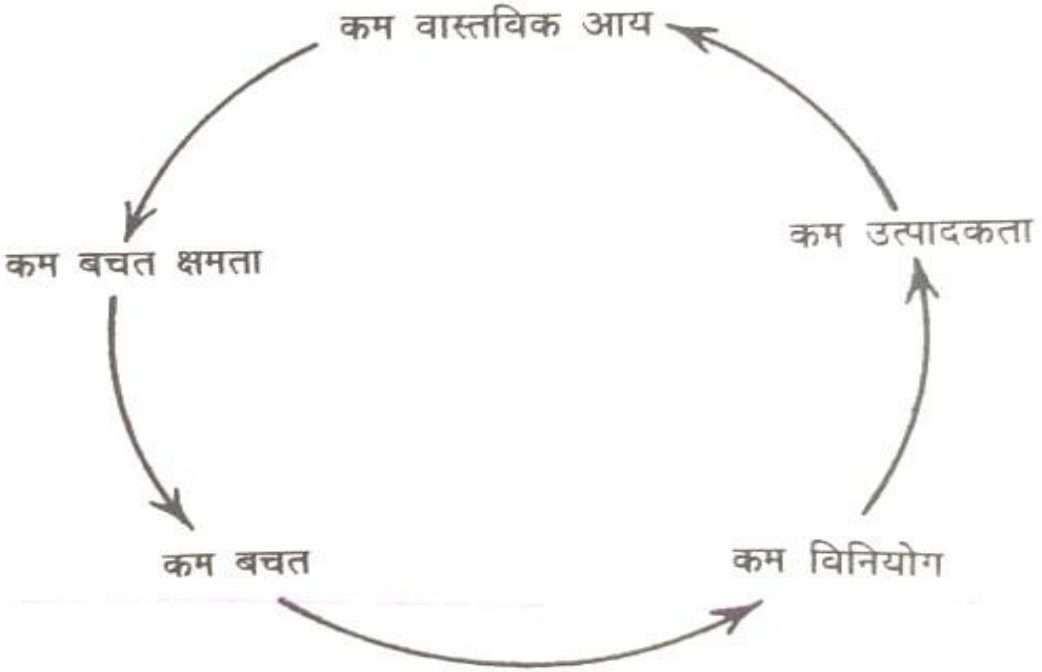

चित्रः–1.3

1.2.5 गरीबी के कुचक्र का मांग पक्ष

विकास के लिये आवष्क तत्वो में केवल पूर्ति पक्ष ही अनिवार्य पक्ष नही है अपितु उत्पादित बस्तुओं की माग होना भी आवष्यक है या नये विनियोग के लिये प्रेरणा का होना अत्यन्त आवष्यक है अर्थात यदि लाभ की प्रत्याषा षून्य होगी तो विनियोग भी षून्य होगा। यदि बाजार में मांग का अभाव हो तो पूजी निर्माण की उच्च दर अर्थात पूजीं की प्रचुर मात्रा होने के बावजूद भी विकास सम्भव नहीं होगा। नर्क्से ने अल्प विकसित देषों में मांग पक्ष को भी कुचक्र से प्रभावित बताया। उनके अनुसार वास्तविक आय की कमी के कारण लोगो की क्रय षक्ति कम है जिससे लोग वस्तुओं पर व्यय नहीं कर पाते और वस्तुओं की मांग नहीं होती मांग में कमी कारण पूंजी पती विनियोग नहीं करता जिससे नये उद्योग नही खोले जा सकते है। क्योंकि इन देषों में यातायात के विकास का अभाव, अत्यन्त संकुचित बाजार अन्तरराष्ट्रीय प्रतियोगिता का सामना करने इत्यादि की षक्ति नहीं होती। इसे रेखाचित्र के माध्यम से कम वास्तविक आय जो कम क्रय षक्ति (मांग में कमी) तथा कम विनियोग प्रेरणा जो जिसके कारण कम विनियोग फलस्वरूप कम उत्पादता को दर्षाती है के रूप में प्रदर्षित किया जा सकता है।

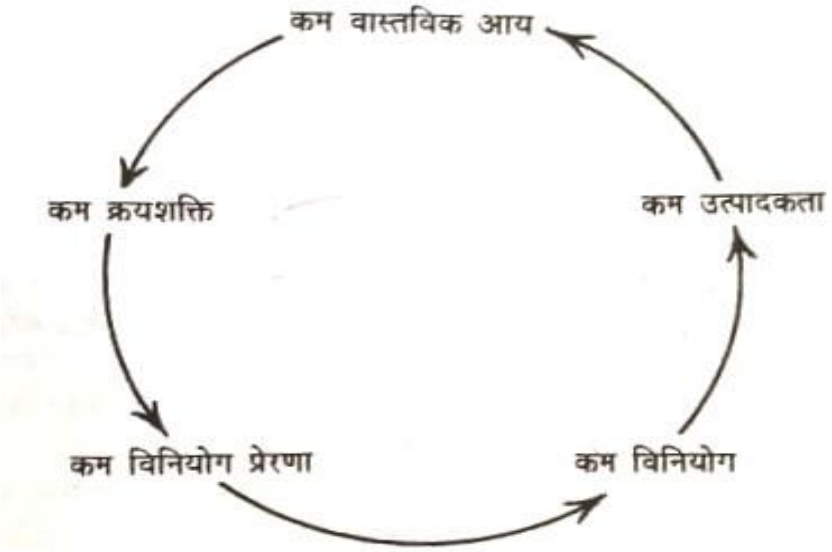

चित्रः–1.4

दोनो पक्षों पर विचार करने के बाद वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में कमी एक ऐसा कारण है जो दोनो ही पक्षों में आता है। जो बहुत अधिक सीमा तक विनियोग की न्यूनता का परिणाम है। नर्क्स के षब्दों में –''हमें इस चक्र को दूषित कहने में कुछ हिचकिचाहट होनी चाहिए; यह लाभप्रद सिद्ध हो सकता है क्योकि गरीबी का यह चक्र अभेद नहीं है और यदि इसे एक बार किसी बिन्दु पर तोड़ दिया जाये तो इसके विभिन्न तत्वों में चक्रीय सम्बन्ध होने के कारण आर्थिक विकास की क्रिया संचीय होगी।'' से नर्क्स के आषावादी होने का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।

1.2.6 आलोचनाए

नर्क्स के दृष्टिकोण की आलोचना विभिन्न तरीके से आलोचको द्वारा किया जाता है। जैसे तृतीय विष्व के देषों के अनुभाविक तथ्य इनके दृष्टिकोण की पुष्टि नहीं करते। विष्लेषण में लिये गये चरो का विकास में बहुत महत्वपूर्ण योगदान या विकास के निर्धारक भूमिका नहीं है और नहीं नर्क्स के विष्लेषण के अनुसार क्रिया करते है। नर्क्स की आलोचना भले ही की गयी हो पर जिसकी संकल्पना नर्क्स करते है इतना अवष्य है कि दुनिया के अनेक अल्प विकसित देषों में विकास के पिछड़े पन का प्रमुख कारण पूंजीं की कमी ही है। तथा वहां बचत क्षमता नगण्य है।

1.2.7 अभ्यास हेतु प्रष्न

प्रष्न.1 निम्नलिखित में आर्थिक विकास बाधा उत्पन्न करने वाले कारको में पूंजी की कमी को प्रमुख कारक मानने वाले अर्थषास्त्री है।

क. प्रेबिस सिंगर

ख. मिर्डल

ग. मिन्ट

घ. नर्क्स

2. निम्नलिखित में कौन गरीबी के कुचक्र का मांग पक्ष प्रदर्षित करता है

क. कम बचत क्षमता
ख. कम बचत
ग कम क्रय षक्ति
घ. उरोक्त सभी

3. निम्नलिखित में कौन गरीबी के कुचक्र का पूर्तिपक्ष प्रदर्षित करता है
क. कम विनियोग
ख. कम बचत
ग कम क्रय षक्ति
घ. विनियोग प्रेरणा

4. नर्क्स के अनुसार गरीबी या दरिद्रता के कुचक्र को किस प्रकार तोड़ा जा सकता है
क. जनसंख्या वृद्धि को रोक कर
ख. अन्तरराष्ट्रीय विषमता को समाप्त कर
ग. राजनैतिक बधाओं को समाप्त कर
घ. अत्यधिक पूंजी विनियोग द्वारा

1.2.8 सारांष

नर्क्स की आलोचना भले ही की गयी हो पर जिसकी संकल्पना नर्क्स करते है इतना अवष्य है कि दुनिया के अनेक अल्प विकसित देषों में विकास के पिछड़े पन का प्रमुख कारण पूंजीं की कमी ही है तथा वहा बचत क्षमता नगण्य है।

1.2.9 षब्दावली

तकनीकी. स्थिर पैमाने की स्थिति और घटते संसाधनों के साथ, आर्थिक विकास दर केवल तकनीकी सुधार और नवाचारों से बढ़ती है।

मांग एक आर्थिक अवधारणा है जो उपभोक्ता की वस्तुओं और सेवाओं को खरीदने की इच्छा और उनके लिए एक विशिष्ट कीमत का भुगतान करने की इच्छा से संबंधित है।

क्रय शक्ति एक मुद्रा का मूल्य है जो उन वस्तुओं या सेवाओं की संख्या के संदर्भ में व्यक्त की जाती है जिन्हें पैसे की एक इकाई खरीद सकती है

निवेश एक संपत्ति है जिसे धन बनाने और कड़ी मेहनत से अर्जित आय या प्रशंसा से पैसा बचाने के लिए अर्जित या निवेश किया जाता है।

प्रेरित निवेश आय लोचदार है, इसका मतलब है कि आय बढ़ने पर प्रेरित निवेश बढ़ता है और इसके विपरीत।

स्वायत्त निवेश आय वेलोचदार है, इसका मतलब यह है कि यदि आय में परिवर्तन (वृद्धि/कमी) होता है, तो स्वायत्त निवेश वही रहेगा।

1.12 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1 ख. हैरोड–डोमर
2 ख. दीर्घकालीन वृद्धि से
3 ग. बचत, जनसंख्या वृद्धि और तकनीकी परिवर्तन समय के साथ उत्पादन को कैसे प्रभावित करते हैं।

4 घ. किसी अर्थव्यवस्था में श्रमिकों की संख्या प्रति श्रमिक उत्पादन और प्रति श्रमिक पूंजी के बीच संबंध को प्रभावित नहीं करती है।

1.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

कोहेन, डेनियल. आर्थिक विकास और सोलो मॉडल पर दो नोट्स, लंदनः आर्थिक नीति अनुसंधान केंद्र, 1993

सलीमोव, रुस्तम, "महिला श्रम बल भागीदारी दर और आर्थिक विकास," थीसिस, मालार्डलेन्स हॉगस्कोला, अर्थशास्त्र के लिए अकादमी, सैमहेले ओच टेक्निक, 2019।

झिंगन एम. एल. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. दिल्ली 2020

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

1.14 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ

सिंह योगेश कुमार एवं गोयल आलोक कुमारः विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली

सिन्हा वी. सी. : आर्थिक संवृद्धि और विकासश मयूर पेपरबैक्स नौएडा

1.15 निबन्धात्मक प्रष्न

1. सोलो के विकास प्रारूप की मान्यताए बताइए, सोलो के विकास प्रारूप का सार क्या है?
2. सोलो के विकास प्रारूप का मुख्य आधारभूत समीकरण क्या है, सोलो विकास प्रारूप की आलोचनाएं बताइएं?

1.2.10 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1 घ. नर्क्स
2. ग कम क्रय षक्ति
3. क. कम विनियोग
4. घ. अत्यधिक पूंजी विनियोग द्वारा

1.2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

झिंगन एम. एल. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. दिल्ली 2020

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

सिंह योगेश कुमार एवं गोयल आलोक कुमारः विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली

नर्कसे, रैग्नर (1961), अविकसित देशों में पूंजी निर्माण की समस्याए,न्यू योर्क, ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, पी, 163.

सिन्हा वी. सी. : आर्थिक संवृद्धि और विकासश मयूर पेपरबैक्स नौएडा 1907

एस.के.मिश्रा; वी. के. पुरी (2010), विकास और योजना का अर्थशास्त्र सिद्धांत और व्यवहार (12वां संस्करण), हिमालय पब्लिशिंग हाउस, आईएसबीएन 978–81–8488–829–4.

1.2.12 निबन्धात्मक प्रष्न

1. अल्प विकसित देषों के संदर्भ में नर्क्स के विचार का मूल्याकन किजिए।
2. 'एक देष गरीब है क्योंकि वह गरीब है।' कि आलोचनात्मक व्याख्या किजिए।
3. गरीबी के कुचक्र का मांग एवं पूर्ति पक्ष को उदाहरण सहित स्पष्ट किजिए।

खण्ड–2
इकाई–02
मिर्डल का संचयी प्रक्रिया अवधारणा

इकाई का संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उददेष्य
2.3 मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण का सिद्धान्त
2.4 अतिनिर्यात प्रभाव
2.5 प्रसरण प्रभाव
2.6 प्रादेषिक असमानताए
2.7 समीक्षात्मक मूल्यांकन
2.8 सिद्धान्त के दोष
2.9 अभ्यास हेतु प्रष्न
2.10 सारांष
2.11 षब्दावली
2.12 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
2.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.14 उपयोगी पाठय पुस्तक
2.15 निबन्धात्मक प्रष्न

2.1 प्रस्तावना

इस इकाई में मिर्डल के चक्रीय सिद्धान्त के आधार पर स्पष्ट किया जायेगा कि अर्थव्यवस्था में सदैव संतुलन स्थापित नही हो सकता। साथ ही सिद्धान्त को स्पष्ट करने हेतु अतिनिर्यात प्रभाव तथा प्रसरण प्रभाव को भी स्पष्ट किया जायेगा। मिर्डल के चक्रीय सिद्धान्त का आलोचनात्मक मुल्यांकन करेगें।

2.2 उद्देष्य

इस इकाई को पढने के बाद छात्रों में निम्नलिखित की समझ विकसित हो सकेगी।

1. छात्र मिर्डल के सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेगें।
2. अतिनिर्यात तथा प्रसरण प्रभाव की व्याख्या कर सकेगें।
3. सिद्धान्त के अनुकुल तथा प्रतिकुल प्रभावों से अवगत हो सकेगे।
4. विकास के मार्ग में आने वाली रूकावटों को पहचान सकेगें।

2.3 मिर्डल का चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत

नोबल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री प्रो. गुन्नार मिर्डल ने अपनी पुस्तक ' Economic Theory and Under developed Regions' में अर्धविकसित देशों के अल्पविकास के कारणों की व्याख्या एक नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत की। जिसके अनुसार चक्रीय संचयी कार्यकारण तथा अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect) के कारण अर्द्धविकसित और विकसित देशों के बीच एक दुश्चक्र (Vicious Circle) पैदा हो जाता है जो अर्द्धविकसित तथा विकसित देशों के बीच आय की असमानता को बढ़ाता रहता है।

प्रो. मिर्डल ने अपने चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत के आधार पर स्पष्ट किया कि असमानताओं के सम्बन्ध में प्रतिष्ठित सिद्धान्त स्थिर संतुलन की मान्यता सही नही है। प्रो. गुन्नार मिर्डल को अनुसार कि वास्तविक जगत में इस प्रकार की स्थिति नहीं पायी जाती। यह आवश्यक नहीं है कि अर्थव्यवस्था में सदैव संतुलन स्थापित ही होता रहे। वास्तविकता यह है कि अर्थव्यवस्था में जब एक बार संतुलन भंग हो जाता है तो अर्थव्यवस्था निरंतर संतुलन से दूर हटती चली जाती हैं। क्योंकि असंतुलन का उदय करने वाले घटकों का संचयी प्रभाव होता है। विकास को प्रभावित करने वाले आकस्मिक घटकों में परस्पर संबंध एवं परस्पर निर्भरता होती है। ये घटक चक्राकार रूप में संचयी प्रवृत्ति लिये रहते हैं जिसके फलस्वरूप जब इनमें किसी एक घटक में कोई परिवर्तन होता है तो उसके प्रभावों से अन्य घटकों में परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार एक परिवर्तन दूसरे परिवर्तन का कारण एवं प्रभाव बन जाता है।

प्रो.गुन्नार मिर्डल ने अपने चक्राकार सिद्धांत तथा संचयी कारण एवं परिणाम के सिद्धांत को स्पष्ट करने हेतु अमेरिका की नीग्रो समस्या को आधार बनाया है। उन्होंने बताया है कि गोरे लोगों द्वारा पक्षपात के कारण नीग्रो लोगों के साथ अनेक विभेदात्मक नीतियों को विभिन्न क्षेत्रों में अपनाया जाता है। दूसरे नीग्रों लोगों का निम्न जीवन स्तर गोरे लोगों द्वारा अपनायी गयी विभेदात्मक नीतियों का ही परिणाम है। फलतः नीग्रो लोगों में पायी जाने वाली गरीबी अंधविश्वास अज्ञानता शिष्ट व्यवहार का अभाव इत्यादि के कारण उनके प्रति गोरे घृणा का ही दृष्टिकोण रखते हैं। दोनों बातों में परस्पर धनात्मक सह–संबंध है। इस प्रकार गोरे लोगों का पक्षपात और नीग्रो लोगों की गरीबी दोनों एक–दूसरे के कारण हैं। इस अवस्था को हम किसी प्रकार स्थिर संतुलन की अवस्था नहीं कह सकते। इन परिस्थितियों में यदि उपयुक्त दो बातों में से किसी एक में बाह्य परिवर्तनों या अन्य कारणों से परिवर्तन होने शुरू हो जाते हैं तो यह प्रक्रिया धीरे–धीरे संचयी रूप प्राप्त कर लेती है ऐसी स्थिति में संपूर्ण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होता है।

अतः मिर्डल का यह मत है कि विकास की इस प्रक्रिया में आर्थिक तथा सामाजिक सभी शक्तियां क्रियाशील होती हैं जो असंतुलन को जन्म देती तथा बढ़ाती हैं।

मिर्डल का विचार है कि आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से अत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने निम्नलिखित दो धारणाओं का उपयोग किया है।

2.4 अतिनिर्यात प्रभाव / प्रतिवाही प्रभाव (Backwash Effects)

2.5 प्रसरण प्रभाव (Spread Effects)

मिर्डल ने अतिनिर्यात प्रभाव के अंतर्गत उन सभी प्रभावों को सम्मिलित किया है जो श्रम के देशांतरण पूँजी प्रवाह तथा व्यापार के माध्यम से उत्पन्न होते हैं तथा आर्थिक व अनार्थिक सभी साधनों के मध्य चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं। आर्थिक विकास विस्तार केंद्रों से अन्य क्षेत्रों की ओर विस्तारशील गति से कुछ उपकेंद्र प्रसरण प्रभावों को प्रदर्शित करते हैं। प्रसरण प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होते हैं। मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं का प्रमुख कारण अर्धविकसित देशों में प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव तथा दुर्बल प्रसरण प्रभाव रहे हैं।

2.6 प्रादेशिक असमानताएं (Regional Inequalities)

मिर्डल के अनुसार प्रादेशिक असमानताओं की उत्पत्ति का आधार गैर– आर्थिक होता है। यह पूँजीवादी व्यवस्था से संबंध रखता है जो लाभ के उद्देश्य से संचालित होती है। लाभ के उद्देश्य के कारण उन क्षेत्रों का विकास होता है जहां लाभों की प्रत्याशाएं अधिक होती हैं जबकि अन्य क्षेत्र अर्द्धविकसित रह जाते हैं। बाजार शक्तियां प्रादेशिक असमानताओं को घटाने के बजाय बढाती है। मिर्डल के शब्दों में यदि बात बाजार शक्तियों पर ही छोड़ दी जाये और उन्हें किन्हीं नीति हस्तक्षेपों से न रोका जाय तो औद्योगिक उत्पादन व्यापार बैंकिग बीमा नौवहन और वास्तव में वे सभी आर्थिक क्रियाएं जो विकासशील

अर्थव्यवस्था को औसत से अधिक प्रतिफल प्रदान करती हैं कुछ स्थानों तथा प्रदेशों में एकत्रित हो जाती हैं और देश के शेष भागों को अनदेखा छोड़ देती हैं। ऐसी स्थिति में आर्थिक विषमता घटने के स्थान पर बढ़ती है।

मिर्डल के अनुसार श्रम देशांतर पूँजी प्रभाव एवं अन्तरक्षेत्रीय व्यापार विकसित तथा अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्थाओं के बीच असमानताओं को कम नहीं करते बल्कि बढ़ाते हैं। उन्होंने अपनी सिद्धान्त में यह बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार श्रम का देशांतर पूँजी प्रभाव व व्यापार के अतिनिर्यात प्रभाव पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास में बाधा डालते हैं और साथ ही संपूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास को धीमा करते हैं।

मिर्डल के चक्रीय तथा संचयी प्रक्रिया के अतिनिर्यात तथा प्रसरण प्रभाव एवं विषमताओं मे वृद्धि को एक सरल उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। माना A और B दो क्षेत्र हैं जो विकास की दृष्टि से बराबर हैं अर्थात् दोनों में प्रति व्यक्ति आय श्रम की उत्पादकता और मजदूरी बराबर है। श्रम तथा पूँजी व उत्पादन के अन्य साधनों का आवागमन A और B क्षेत्र के बीच स्वतंत्र रूप से होता है। दोनों क्षेत्रों के बीच व्यापार पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं है और एक ही मुद्रा प्रचलित है।

माना A क्षेत्र में लोहा व कोयला मिल जाने के कारण B क्षेत्र की अपेक्षा विकास तीव्र गति से होता है। फलतः असंतुलन का जन्म होता है। मिर्डल के अनुसार जब एक बार इस तरह की असंतुलन की प्रक्रिया जन्म ले लेगी तो कुछ ऐसी आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियां क्रियाशील हो जायेंगी जो इस असंतुलन को और बल देंगी। फलतः लाभ प्राप्तकर्ता A क्षेत्र में संचयी विस्तार की प्रक्रिया शुरू हो जायेगी जबकि B क्षेत्र जो अलाभकारी स्थिति में है निरंतर संचयी रूप से पिछड़ता जायेगा। इस प्रकार विकास की प्रक्रिया दूसरे देश अर्थात् B क्षेत्र को क्षति पहुंचा कर ही होगी।

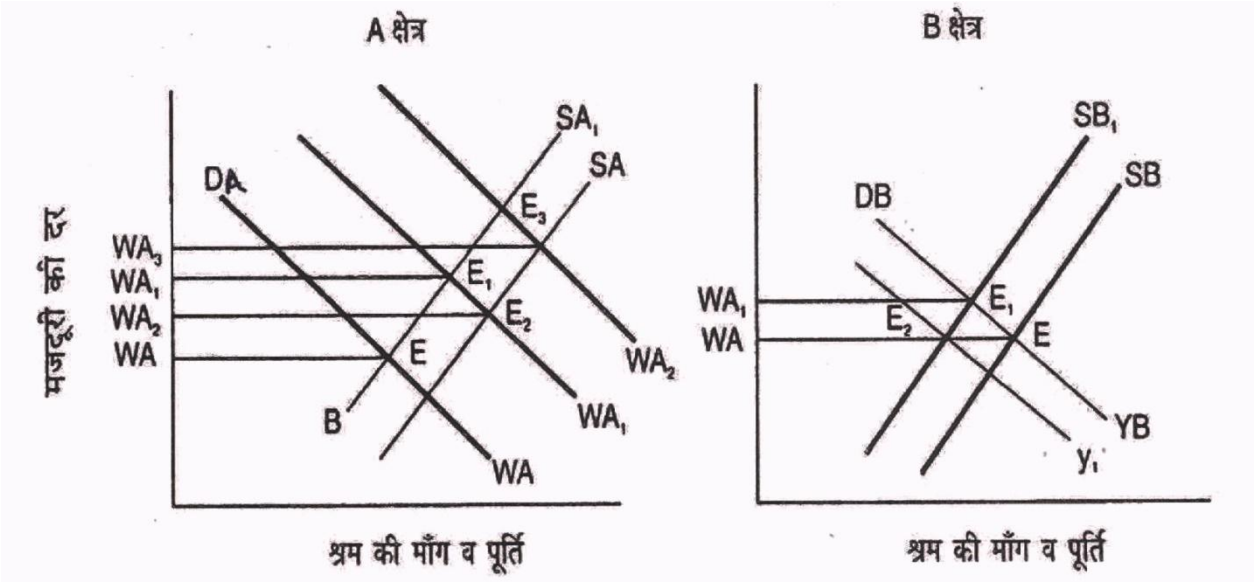

चित्रः–2.1 चित्रः–2.2

मिर्डल के मतानुसार यह मानना सर्वथा गलत होगा, जैसा कि स्थैतिक विश्लेषण में हम मानते हैं कि असंतुलन अस्थायी होता है और कालांतर में संतुलन स्थापित हो जाता है। मांग एवं पूर्ति की शक्तियां परस्पर इस प्रकार से क्रियाशील होंगी कि संतलन पुनः स्थापित नहीं होगा बल्कि संचयी रूप से संतुलन दूर हटता जायेगा। मिर्डल के सिद्धांत को रेखाचित्र 2.1 की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र में A क्षेत्र विकसित और B क्षेत्र पिछड़ा हुआ है।

स्थैतिक विश्लेषण की स्थिति में दोनों देशों में मांग व पूर्ति की शक्तियां परस्पर समायोजित हो जायेंगी और संतुलन की स्थिति पुनः WA = WB पर कायम हो जायेगी। परंतु मिर्डल की संचयी प्रक्रिया की धारणा के अनुसार पूर्ति में परिवर्तन मांग को इस प्रकार तथा इस सीमा तक प्रभावित करेगी कि पुनः संतुलन की संभावना समाप्त हो जायेगी।

B क्षेत्र से श्रमिकों का A क्षेत्र में स्थानांतरण हो जाने से B क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओं की मांग कम होने लगती है जिससे मांग वक्र नीचे को सरक कर D हो जाता है अब A क्षेत्र में वस्तुओं व सेवाओ की मांग पहले से अधिक हो जाती है। फलतः इस क्षेत्र में कार्यरत उद्यमियों को नया उत्साह मिलता है। वस्तुओं की मांग बढ़ने से मांग वक्र DA से ऊपर सरक कर DA_1 हो जाता है। जो पूर्ति वक्र SB को बिन्दु E पर काटने से इस क्षेत्र में WA के बराबर मजदूरी का निर्धारण होता है। उपर्युक्त पूरी प्रक्रिया A और B क्षेत्रों में संचयी रूप से चलती रहेगी और A क्षेत्र की स्थिति उत्तरोत्तर अच्छी तथा B क्षेत्र की स्थिति उत्तरोत्तर खराब होती जायेगी। इस प्रकार A क्षेत्र का आर्थिक विकास B क्षेत्र को हानि पहुंचाकर होगा और दोनों के बीच अंतराल बढ़ता जायेगा। अतः एक बार जब दोनों क्षेत्रों के बीच विकास संबंधी अंतर शुरू होगा तो विस्तार की संचयी प्रक्रिया लाभप्रद स्थिति वाले क्षेत्र (अर्थात् A क्षेत्र) के पक्ष में होती चली जायेगी और उसका दूसरे क्षेत्र के ऊपर जो प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा उसे मिर्डल ने अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect) कहा है और इसके कारण दोनों क्षेत्रों के बीच विषमता का अंतराल बढ़ता जायेगा।

इसी प्रकार पूँजी का प्रवाह भी संचयी प्रक्रिया को और बल देकर प्रादेशिक विषमता को बढ़ाता है क्योंकि जो प्रदेश विकसित हो जाते हैं उनमें बढ़ी हुई मांग विनियोग एवं पुनर्वियोग को प्रेरणा प्राप्त होती है तथा पूँजी की मांग भी बढ़ती है। ऐसी स्थिति में मांग एवं आय दोनों ही बढ़ती है। यह क्रम चलता रहता है तथा दूसरी ओर पिछड़े क्षेत्रों में पूँजी विनियोग में और कमी आ जाती है। फलतः पिछडे क्षेत्र और पिछड़ जाते हैं।

इसी प्रकार व्यापार भी पिछड़े क्षेत्रों की तुलना में विकसित क्षेत्रों को अधिक लाभ पहुंचाता है तथा पिछडे क्षेत्रों में केवल पिछड़ा कृषि क्षेत्र रह जाता है जबकि विकसित क्षेत्र में पूँजी उद्योग सेवा तीनों क्षेत्रों का तेजी से विकास होता है। मिर्डल के अनुसार व्यापार निर्धन देशों के सामने स्फीतिकारी अंतराल एवं दबाव गरीबी में वृद्धि भुगतान संतुलन की कठिनाई उपभोक्ता वस्तुओं की कमी तथा गुणक प्रभाव के अभाव जैसी समस्या उत्पन्न कर देते हैं तथा पहले से विद्यमान छोटे–मोटे उद्योगों का गला घोट देते हैं।

मिर्डल के अनुसार ''प्रसरण प्रभाव आर्थिक विस्तार के केन्द्रों के निकट के क्षेत्रों में फैल जाने की प्रवृत्ति रखते हैं। जिसके निम्नलिखित अनुकूल प्रभाव पडते हैं''।

(i) उस क्षेत्र के औद्योगिक विस्तार से कच्चे मालों व कृषि उपजों की मांग में वृद्धि होती है।

(ii) पिछड़े क्षेत्रों से प्रवाहित श्रम शक्ति को विकसित क्षेत्रों में अधिक आय प्राप्त होती है जिसका कुछ भाग पिछड़े क्षेत्रों को भेज दिया जाता है।

(iii) तकनीकी ज्ञान का विस्तार भी पिछड़े क्षेत्रों की ओर होने लगता है। मिर्डल का मानना है कि उपर्युक्त प्रसरण प्रभाव अर्द्धविकसित देशों में कमजोर होते हैं और उनमें अतिनिर्यात प्रभावों का प्रतिरोध करने की क्षमता कम रहती है।

अतः अर्द्धविकसित देशों के पिछड़ेपन का प्रमुख कारण दुर्बल व कमजोर प्रसरण प्रभाव तथा प्रबल अतिनिर्यात प्रभाव रहे हैं जिससे संचयी प्रक्रिया में निर्धनता स्वयं अपना कारण बन जाती है।श

राज्य की भूमिका मिर्डल ने निर्धनता के इस दुष्चक्र को तोड़ने के लिए राज्य की भूमिका को महत्व दिया है। उनके अनुसार अर्द्धविकसित देशों की सरकारों को चाहिए कि वे ऐसी समतावादी नीतियां अपनाएं

जो अतिनिर्यात प्रभावों को दुर्बल बनाये और प्रसरण प्रभावों को शक्ति दे ताकि प्रादेशिक असमानताएं दूर हों और सतत् आर्थिक प्रगति की आधरशिलाएं मजबूत हों।

2.7 समीक्षात्मक मूल्यांकन

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गुन्नार मिर्डल का सिद्धांत अल्प – विकास के अन्य सिद्धांतों की तुलना में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह प्रथम आर्थिक विकास संबंधी विस्तृत, क्रमबद्ध और विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं के गहन अध्ययन तथा विश्लेषण पर आधारित है। दूसरे यह स्पष्ट करता है कि अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के माध्यम से किस प्रकार विकसित देश विकासशील देशों से लाभ प्राप्त कर रहे हैं। तीसरे इस तथ्य पर भी प्रकाश डालता है कि अर्द्धविकसित देशों में प्रसरण प्रभाव किस प्रकार अतिनिर्यात प्रभावों के दुष्प्रभावों से मंद हो जाते हैं। चौथे इससे इस तथ्य का भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि किस प्रकार एक देश की असमानता दूसरे देश को प्रभावित कर रही है।

2.8 सिद्धांत के दोष

उपर्युक्त गुणों के होते हुए भी मिर्डल के सिद्धांत की निम्नलिखित आधारों पर आलोचनाएं की जाती है

(i) इस सिद्धांत में केवल पूँजी प्रवाह एवं व्यापार को ही असमानता का आधार बनाया गया है, जबकि असमानता के लिए अन्य तत्व भी उत्तरदायी है।

(ii) मिर्डल ने आंतरिक एवं बाह्म असमानताओं के अनुपात का समावेश नहीं किया कि कितनी मात्रा में इनका प्रभाव पड़ता है।

(iii) यह सिद्धांत अर्थव्यवस्था में हासमान प्रतिफल नियम की उपस्थिति को ध्यान में नहीं रखता है।

2.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. Economic Theory and the Underdeveloped Countries नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं –

क. गुन्नार मिर्डल
ख. एच. मिन्ट
ग. जे. एच. बू
घ. इनमें से कोई नहीं

2. Economic Theory and Underdeveloped Regions' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं

क. गुन्नार मिर्डल
ख. एच. मिन्ट
ग. जे. एच. बू
घ. इनमें से कोई नहीं

3. एषियन ड्रामा पुस्तक के लेखक है–

क. मिर्डल
ख. मिन्ट
ग. मार्क्स
घ. मनमोहन सिंह

4. मिर्डल के अनुसार चक्रीय संचयी कार्यकारण तथा अतिनिर्यात प्रभाव के कारण उत्पन्न होता है–

क. अर्द्धविकसित और विकसित देषों के मध्य दुष्चक्र

ख. प्रसरण प्रभाव
ग. अतिनिर्यात प्रभाव
घ. गैर आर्थिक कारक

2.10 सारांश–

मिर्डल के मतानुसार आर्थिक विकास के कारण चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया उत्पन्न होती है जिससे असमानताओं का जन्म होता है। उनका सिद्धांत राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों से उत्पन्न असमानताओं पर आधारित है। अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संबंधों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने अतिनिर्यात प्रभाव एवं प्रसरण प्रभाव की धारणाओं का उपयोग किया है। अनेक गुणों के होते हुए भी मिर्डल के सिद्धांत की आलोचनाएं भी की जाती है।

2.11 शब्दावली–

मुद्रा बाजार मुद्रा बाजार वह बाजार अथवा क्षेत्र है जहाँ अल्पकालीन ऋणों का लेनदेन होता है। मुद्रा बाजार संगठित या असंगठित हो सकता है।

संगठित मुद्रा बाजार रू संगठित मुद्रा बाजार में ब्याज दरें कम एवं प्रचुर मात्रा में साख सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। इसमें केन्द्रीय बैंक, वाणिज्यिक बैंक, सहकारी समितियां और बैंक, विदेशी बैंक तथा अन्य वित्तीय संस्थाएं जिनमें कृषि सम्बन्धी वित्त निगम औद्योगिक वित्त निगम बीमा कम्पनियां और विकास बैंक शामिल होते हैं।

अतिनिर्यात प्रभाव (Backwash Effect) : अतिनिर्यात प्रभाव के अंतर्गत उन सभी प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है जो श्रम के देशांतरण पूँजी प्रवाह तथा व्यापार के माध्यम से उत्पन्न होते हैं तथा आर्थिक व अनार्थिक सभी साधनों के मध्य चक्रीय कार्यकारण प्रक्रिया के कारण उत्पन्न होते हैं। ये प्रभाव आर्थिक विकास के प्रतिकूल होते हैं।

प्रसरण प्रभाव (Spread Effects) : आर्थिक विकास विस्तार केंद्रों से अन्य क्षेत्रों की ओर विस्तारशील गति से कुछ उपकेंद्र प्रसरण प्रभावों को प्रदर्शित करते हैं । प्रसरण प्रभाव आर्थिक विकास के अनुकूल होते हैं।

2.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर–

उत्तर 1. ख एच. मिन्ट
2. क गुन्नार मिर्डल
3. क. गुन्नार मिर्डल
4. क. अर्द्धविकसित और विकसित देषों के मध्य दुष्चक

2.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

झिंगन एम. एल. विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. दिल्ली 2020
एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022
ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020
सिंह योगेश कुमार एवं गोयल आलोक कुमारः शविकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली
सिन्हा वी. सी. : आर्थिक संवृद्धि और विकासश मयूर पेपरबैक्स नौएडा
Agarwal R. C. : Economics of Development and Planning, Lakshmi Narayan Agarwal Agra 2020

2.14 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

Myrdal G. : Economic Theory and Under developed Regions 1957
Taneja M. L. & Myer R. M. : "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co. Delhi

2.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मिर्डल के चक्रीय कार्यकारण सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. मिर्डल द्वारा प्रतिपादित अतिनिर्यात एवं प्रसरण प्रभावों की समीक्षा कीजिए।
3. चक्रीय कार्यकारण के सम्बन्ध में मिर्डल के विचारों की व्याख्या कीजिए।
4. मिर्डल के मॉडल का सविस्तार वर्णन कीजिए।

खण्ड–02

इकाई–03

जनसंख्या एवं आर्थिक विकास, नेल्सन का निम्न स्तरीय संतुलन अवधारणा (Backwash and Spread Effects) विपरीत बहाव व फैलाव प्रभाव

इकाई का संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उददेष्य
3.3 जनसंख्या एंव आर्थिक विकास
3.4 ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि (माल्थस यूजीनिक्स नव–माल्थसियन इत्यादि)
3.5 जनसंख्या वृद्धि
3.6 प्रतिकूल प्रभाव
3.7 अभ्यास हेतु प्रष्न
3.8 सारांष
3.9 षब्दावली
3.10 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 उपयोगी पाठय पुस्तक
3.13 निबन्धात्मक प्रष्न

3.1 प्रस्तावना–

यह इकाई जनसंख्या और विकास के साथ उनके संबंध को समझाने का प्रयास करती है। परंपरागत रूप से भारत की जनगणना जनसांख्यिकीय और कई सरकारी अधिकारियों की चिंता रही है जो भारत की जनगणना रिपोर्ट तैयार करते हैं। लेकिन जनसंख्या जांच केवल संख्या या जन्म और मृत्यु की गिनती से कहीं अधिक है। यह एक समाज की सामाजिक–आर्थिक स्थिति का अवलोकन करता है और सामाजिक–आर्थिक विकास को निर्धारित करने से संबंधित है। जनगणना एक बहुत बड़ी कवायद है। जनसंख्या की सामाजिक आर्थिक स्थिति के बारे में जानकारी एकत्र करने के साथ–साथ भारत की जनसंख्या के बारे में डेटा एकत्र करने की एक लंबी प्रक्रिया है। प्रत्येक जनगणना के दौरान अधिक जनसंख्या, गरीबी और बेरोजगारी और सामाजिक असमानता के बारे में दैनिक चिंताओं और बयान दिए जाते है। समाज को समग्र रूप से समझने के लिए जनसंख्या अध्ययन के महत्व और जीवन के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं ने विभिन्न वैज्ञानिक क्षेत्रों के विशेषज्ञों का ध्यान आकर्षित किया है। इसी समय जनगणना में वांछित राष्ट्रीय विकास के बारे में विरोधाभासों, विसंगतियों और लंबी बहस की विशेषता थी। ओवर पॉपुलेशन लंबे समय से दुनिया भर में एक बड़ी समस्या रही है। तथाकथित विकासशील देशों (मुख्य रूप से एशियाई और अफ्रीकी देशों) में बड़ी आबादी पृथ्वी के सीमित और पहले से ही अत्यधिक उपयोग किए जाने वाले प्राकृतिक संसाधनों के साथ वैश्विक संकट में योगदान दे रही है। वैश्विक संकट और अधिक जनसंख्या को समझने के लिए अलग–अलग दृष्टिकोण हैं। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि वैश्विक संकट को बढ़ाने में अधिक जनसंख्या की भूमिका को लेकर विरोध रहा है। उनका तर्क है कि संकट के कारण के रूप में जनसंख्या पर अत्यधिक जोर विकसित देशों में प्राकृतिक संसाधनों के अति प्रयोग और बर्बादी के अन्य संरचनात्मक कारणों से ध्यान भटकाता है। इस संदर्भ में विकास संबंधी बहसें महत्व प्राप्त करती हैं और जनसंख्या के मुद्दों की राजनीति पर प्रकाश डालती हैं। इस इकाई में हम

जनसंख्या और विकास की बहस के केंद्र में कुछ प्रमुख मुद्दों को प्रस्तुत करना चाहेंगे। लोकप्रिय हित की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, इसकी उत्पत्ति, इसके द्वारा उठाए जाने वाले मुद्दे इसमें शामिल राजनीति और कैसे लोकलुभावनवाद का विषय एक अंतरराष्ट्रीय सेटिंग में एक संस्थागत मुद्दा बन गया। जनसंख्या समस्या से उत्पन्न होने वाले महत्वपूर्ण मुद्दों का वर्णन करता है कैसे जनसंख्या विकास के मुद्दों और पर्यावरणीय मुद्दों पर विकसित और विकासशील देशों के बीच विवाद और बातचीत का एक बिंदु बन गई है। भारत की जनसंख्या और विकास के अनुभव और देश के जनसंख्या संकट को समझने में व्यापक नीतिगत परिवर्तनों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। इकाई के विभिन्न भागों में जनसंख्या और विकास की चर्चा में उठाए गए मुख्य मुद्दों का सारांश प्रस्तुत करता है।

3.2 उद्देष्य

इस इकाई को पढने के बाद छात्रों में निम्नलिखित की समझ विकसित हो सकेगी।

1. जनसंख्या एवं आर्थिक विकास के विभिन्न पहलुओं पर विषेषज्ञो द्वारा किये गये विष्लेषणों पर चर्चा कर सकेगें।

2. जनसंख्या के सिद्धान्त की ऐतिहाससिक पृष्ठभूमि को भी स्पष्ट कर सकेगे।

3. जनसंख्या वृद्धि के अनुकूल तथा प्रतिकूल प्रभावों को जान सकेगें।

3.3 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

जनसंख्या के सिद्धांत पर थॉमस माल्थस का निबंध (1798) जनसंख्या का एक मौलिक अध्ययन माना जाता है। जिसने जनसंख्या वृद्धि का एक मौलिक सिद्धांत विकसित किया। सिद्धांत के अनुसार प्राकृतिक संसाधनों की तुलना में जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ती है। जनसंख्या प्रत्येक 25 वर्षों में दोगुनी हो जाती है और यदि अकेले छोड़ दिया जाए तो यह तेजी से (1 2 4 8 आदि) बढ़ती है जबकि खाद्य उत्पादन अंकगणितीय प्रगति (1 2 3 4 5 आदि) में बढ़ता है। और प्राकृतिक संसाधनों की सीमाओं को देखते हुए भोजन दुर्लभ होगा। जनसंख्या वृद्धि दर और खाद्य आपूर्ति के बीच यह असंतुलन युद्ध अकाल और महामारी जैसी अच्छी स्थितियों का कारण बनता है जो अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि को रोकने का काम करता है। उन्होंने जनसंख्या नियंत्रण के लिए गर्भ निरोधकों और गर्भपात का विरोध किया। इसने भीड़भाड़ पर चेक का सुझाव दिया जैसे कि लंबी अवधि की शादी और देर से शादी।

माल्थस ने अपने सिद्धांत को ऐसे समय में प्रस्तावित किया जब यूरोप बेहतर स्वास्थ्य सेवा और सामान्य औद्योगिक विकास के कारण मृत्यु दर में गिरावट का अनुभव कर रहा था। यूरोप ने बाद में तेजी से जनसंख्या वृद्धि का अनुभव किया। लेकिन उद्योग के प्रसार और उपनिवेशों के अधिग्रहण ने बढ़ती जनसंख्या को समायोजित करना संभव बना दिया। साथ ही 1800 और 1930 के बीच लगभग 400 मिलियन लोग बेहतर नौकरियों की तलाश में यूरोप से उत्तरी अमेरिका चले गए। यूरोप जनसंख्या में कमी का सामना कर रहा है न कि अधिक जनसंख्या का। संयुक्त राज्य अमेरिका जनसंख्या वृद्धि के बारे में चिंतित है मुख्य रूप से प्रवासियों की आमद और उनमें उच्च जन्म दर के कारण। अमेरिका ने सख्त अप्रवासी नीतियां लागू की हैं और कुछ यूरोपीय देशों ने अधिक आर्थिक अवसरों के द्वार बंद कर दिए हैं। 1800 के दशक में जन्म दर में गिरावट का अनुभव करने वाला फ्रांस पहला देश था और 1870 में प्रशिया इसके नुकसान के कारणों में से एक के रूप में कम जन्म दर का हवाला दिया गया था। 1919 में सरकार ने स्वास्थ्य मंत्रालय के भीतर एक विशेष समिति की स्थापना की समस्या का समाधान और सुझाए गए उपाय। सरकार ने बड़े परिवारों को प्रोत्साहित करने के लिए कई उपाय किए हैं। बड़े परिवारों वाले कर्मचारियों की मदद के लिए बाल भत्ते तैयार किए गए हैं।1923 में गर्भपात पर रोक लगाने वाले कानून में संशोधन किया गया और इसे और प्रभावी बनाया गया। अन्य यूरोपीय देशों ने भी कम प्रजनन दर का

अनुभव किया जिसके कारण इटली और जर्मनी जैसे देशों में प्रसव पूर्व उपायों (स्थानीय आबादी को घर पर रखने के उपाय) को लागू किया गया। उदाहरण के लिए इटली ने गर्भपात और जन्म नियंत्रण के साथ–साथ अप्रवासन के खिलाफ सख्त कानून पेश किए हैं। नाजी जर्मनी में परिवार शुरू करने के लिए जोड़ों को विवाह ऋण दिया जाता था। नस्ल और विज्ञान के विचारों ने यूजीनिक्स के उद्‌भव को जन्म दिया एक राजनीतिक आंदोलन और दर्शन जो 1900 के दशक की शुरुआत में यूरोप पर हावी था विशेष रूप से हिटलर के जर्मनी में। यूजीनिक्स मानव गुणवत्ता में सुधार के लिए श्रेष्ठ मानव जीन का चयनात्मक प्रजनन है।

जर्मनी में यहूदियों के उत्पीड़न और सामान्य नस्लवाद के लिए यूजीनिक्स का एक मौलिक औचित्य था। द्वितीय विश्व युद्ध के अंत तक जनसांख्यिकी संबंधी विचार यूरोप के बाद के अधिकांश डर और नीतियों पर हावी हो गए। राष्ट्र संघ (1900 और 1914 के बीच) ने विभिन्न मंचों पर जन्म नियंत्रण और आप्रवासन जैसे मुद्दों को उठाया जनसंख्या के मुद्दे अंतर्राष्ट्रीय हो गए। फ्रांस इटली और नीदरलैंड जैसे देशों में माल्थसियन भविष्यवाणियों के समर्थकों ने जनसंख्या और युद्ध के बीच संबंध पर चर्चा की। उनके अनुसार जनसंख्या का दबाव अंतर्राष्ट्रीय तनाव देशों के बीच आर्थिक प्रतिस्पर्धा और उपनिवेशवाद का एक प्रमुख कारण था। जन्म पूर्ववादी आंदोलन को आर्थिक संसाधनों तक पहुंच की कमी के विरोध के रूप में देखा गया जिसके कारण नस्लवादी और नैतिक प्रतिस्पर्धा हुई। ब्रिटिश माल्थसियन लीग (1919) और छठे अंतर्राष्ट्रीय नव–माल्थुसियन और जन्म नियंत्रण सम्मेलन (1925) जैसे विभिन्न मंचों पर नव–माल्थुसियनों ने बार–बार जन्मदर को सीमित करने का वादा किया ताकि लोग स्वतंत्र रूप से जी सकें। ब्रिटिश माल्थसियन लीग ने उन देशों को सदस्यता से वंचित करने का प्रस्ताव पारित किया जिन्होंने जन्म दर को सीमित करने का संकल्प नहीं लिया था।

नव–माल्थसियनवाद शब्द 1877 में माल्थस लीग के उपाध्यक्षों में से एक डॉ. सैमुएल वैन हाउटन द्वारा गढ़ा गया था। नव–माल्थुसियनवाद केवल एक गर्भनिरोधक अभियान नहीं था। यह एक अनूठा दृष्टिकोण था जिसने लोगों के व्यवहार और दृष्टिकोण को प्रभावित किया। नव–माल्थसियन आंदोलन इस प्रकार पुराने माल्थसियन दृष्टिकोण से दो मामलों में भिन्न था। उन्होंने जन्म नियंत्रण पर जोर दिया और श्रमिक वर्ग की अधिक जनसंख्या के बराबर किया। अति–औद्योगीकृत मलिन बस्तियों की पहचान नैतिक पतन के स्थानों के रूप में की गई है। इसने सार्वजनिक बहस को गरीबी और संसाधनों की असमान पहुंच से लेकर जन्म नियंत्रण तक स्थानांतरित कर दिया। वास्तव में न तो सार्वजनिक पहुँच और न ही संसाधनों की उपलब्धता गरीबों को अधिक बच्चे पैदा करने से रोकती है। नव–माल्थसियनवाद ने इस प्रकार निजी संपत्ति व्यक्तिवाद और पूंजीवाद की विचारधाराओं को मजबूत किया। नव–माल्थसियन स्थिति अधिक जनसंख्या की समस्या पर एक संभ्रांतवादी भावना थी। आम लोगों से बढ़ती धमकियों का सामना करते हुए संभ्रांत लोगों ने जन्म नियंत्रण को अपनी संपत्ति पर भविष्य के संघर्षों को रोकने के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा। हालांकि फ्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल ने एक उभयभावी रवैया बनाए रखने की कोशिश की लेकिन वे गर्भनिरोधक से दूर हो गए क्योंकि इसने किसी के कार्यों के परिणामों के लिए जवाब दिए बिना यौन सुख प्राप्त करने के विचार को बढ़ावा दिया। उनके अनुसार इसने विवाह और पारिवारिक मूल्यों की पवित्रता का अवमूल्यन किया है। कैथोलिक चर्च के लिए गर्भनिरोधक अवैध अनैतिक और ईसाई सिद्धांतों के विपरीत है। 1920 के दशक में अधिकांश चिकित्सकों की राय गर्भनिरोधक के खिलाफ थी। इसे अस्वास्थ्यकर और अनैतिक माना गया। दृष्टिकोण बदलने लगे जैसा कि 1921 में अंग्रेजी चिकित्सा विशेषज्ञों द्वारा उपलब्ध चिकित्सा ज्ञान के आलोक में गर्भनिरोधक पर अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करने के लिए एपिस्कोपल चर्च से आग्रह करने के प्रयास द्वारा प्रदर्शित किया गया था। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी 1929 के एक अदालत के फैसले के बाद स्वास्थ्य कारणों से जन्म नियंत्रण की गोलियाँ लिखने के डॉक्टरों के अधिकार को बरकरार रखने के बाद गर्भनिरोधक को चिकित्सा पाठ्यक्रम में शामिल किया गया था।

जन्म नियंत्रण क्लीनिक यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका के विभिन्न हिस्सों में स्थापित किए गए जिससे गर्भनिरोधक आंदोलन में एक नया चरण आया। कम आक्रामक और सामाजिक शब्दों जैसे परिवार नियोजन या नियोजित पितृत्व का उपयोग करके गर्भनिरोधक को लोकप्रिय बनाया गया और महिलाओं के स्वास्थ्य से बच्चों को अलग करने पर जोर दिया गया। जीवन के यौन और घरेलू क्षेत्रों को नियंत्रित करने के अपने प्रयास में गर्भनिरोधक ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के आधुनिक मूल्यों और निजता के अधिकार का खंडन किया। इस बीच उन्होंने उस समय की रूढ़िवादिता पर सवाल उठाया और इसे जन्म नियंत्रण को प्रमाणित करने के प्रयास के रूप में प्रस्तुत किया कि बच्चे होना या न होना एक व्यक्तिगत पसंद है। लेकिन जन्म नियंत्रण बहस के केंद्र में यह नहीं था कि क्या व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा की जाए बल्कि यह था कि अत्यधिक जनसंख्या, जनसंख्या में कमी या गिरावट और दुनिया पर इसके प्रभाव का प्रबंधन कैसे किया जाए। चर्चा के मुख्य विषय प्रवासन, श्रम, उपलब्धता, संसाधन, संघर्ष और गरीबी थे। चिंताएँ विकासात्मक और राजनीतिक थीं। पूर्व सोवियत सरकार निःशुल्क जन्म नियंत्रण परामर्श और सेवाएं प्रदान करने का प्रयास करने वाली पहली सरकार थी। परिवार नियोजन के एक प्रमुख प्रस्तावक के रूप में लेनिन ने नव–माल्थुसियन प्रचार और जिसे उन्होंने चिकित्सा ज्ञान प्रदान करने की स्वतंत्रता और पुरुषों और महिलाओं दोनों के नागरिकों के मौलिक लोकतांत्रिक अधिकारों की सुरक्षा कहा के बीच अंतर किया (साइमंड्स और कार्डर 1973)। समाजवादियों ने लगातार तर्क दिया है कि सार्वजनिक पाखंड असमानता और वर्ग संघर्ष के मुख्य मुद्दों से ध्यान भटकाने का एक तरीका है। समाजवादियों के लिए वास्तविक समस्या जनसंख्या वृद्धि नहीं बल्कि संसाधनों तक असमान पहुँच थी, उनके अनुसार यदि संसाधनों का सही वितरण किया जाए तो सभी के लिए पर्याप्त होगा। समस्या समान वितरण की कमी थी और पूंजीपति और संपत्ति वर्ग अपने नियंत्रण वाले संसाधनों को छोड़ना नहीं चाहते थे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्थिति बदल गई जब कई नए स्वतंत्र राष्ट्र संयुक्त राष्ट्र में शामिल हो गए। अब तक जनसंख्या परिवर्तन के नव–माल्थसियन सिद्धांत को व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। इस सिद्धांत के अनुसार सभी देश जनसांख्यिकीय विकास के चार चरणों से गुजरते हैं। पहली अवधि पूर्व–औद्योगिक अवधि है जो उच्च प्रजनन क्षमता, मृत्यु दर और धीमी जनसंख्या वृद्धि की विशेषता है। दूसरी अवधि प्रौद्योगिकी और सामाजिक जीवन स्थितियों में सुधार द्वारा संचालित जनसंख्या विस्फोट की विशेषता है। हालांकि मृत्यु दर कम है जन्म दर उच्च बनी हुई है। जिसके परिणामस्वरूप उच्च जनसंख्या वृद्धि हुई है। तीसरी अवधि सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों के कारण प्रजनन दर में गिरावट की शुरुआत को चिह्नित करती है और चौथी अवधि इस प्रवृत्ति को स्थिर करती है जिससे कम और स्थिर जनसंख्या वृद्धि सुनिश्चित होती है। इस सिद्धांत का एक दिलचस्प पहलू यह है कि जनसंख्या वृद्धि को समाज के आर्थिक विकास के स्तर को प्रतिबिंबित करना चाहिए। उन्होंने एक विकसित अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण संकेतक के रूप में एक छोटी आबादी पर प्रकाश डाला।

नव–माल्थसियन विश्लेषण के दृष्टिकोण से उत्तर–औपनिवेशिक राज्य या तीसरी दुनिया, बाहर खड़े हैं। नीदरलैंड से तेल निकालने वाले उत्तर–औपनिवेशिक देश उच्च जन्म दर और निम्न मृत्यु दर के साथ जनसांख्यिकीय संक्रमण के दूसरे चरण से गुजर रहे थे। बेहतर चिकित्सा सुविधाओं और दुर्लभ अकालों के कारण जनसंख्या न केवल स्थिर हुई बल्कि तेजी से बढ़ी। उन्हें पिछड़े देश माना जाता था। आर्थिक विकास और तकनीकी विकास के मामले में विकसित समाजों से बहुत पीछे। जनसंख्या वृद्धि की निरंतर उच्च दर में परिलक्षित होता है। इसने विकसित दुनिया को चौंका दिया। औपनिवेशिक युग ने इन देशों को गरीब और अधिक आबादी वाला बना दिया।

जनसंख्या में कमी संयुक्त राष्ट्र के लिए प्राथमिकता बन गई है। इसका मुख्य उद्देश्य विकासशील देशों में पोषण स्तर में सुधार करना और महिलाओं और बच्चों के लिए चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करना था। 1945 में पीपुल्स कमेटी बनाने का प्रस्ताव आया। लेकिन पूर्व सोवियत संघ और यूगोस्लाविया ने इस आधार पर

इसका विरोध किया कि संयुक्त राष्ट्र के भीतर अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रसार को देखते हुए एक और समिति केवल मामलों को भ्रमित करेगी। हालांकि आयोग के लिए मुख्य आपत्ति यह थी कि यह विकास पर नहीं बल्कि जनसंख्या परिवर्तन और जनसंख्या विस्फोट के बाद होने वाली आसन्न तबाही पर केंद्रित था। उन्होंने विकासशील देशों में आर्थिक पिछड़ापन पैदा करने में वैश्विक पूंजीवादी विकास की भूमिका की उपेक्षा की। हालाँकि आयोग औपचारिक रूप से 1946 में स्थापित किया गया था। इसके पास कोई निर्णय लेने का अधिकार नहीं था इसने संयुक्त राष्ट्र की अन्य विशिष्ट एजेंसियों जैसे अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, खाद्य और कृषि संगठन और विश्व स्वास्थ्य संगठन के साथ सहयोग किया।

3.4 जनसंख्या वृद्धि

जनसंख्या वृद्धि विकास प्रक्रिया में कुछ तरीकों से मदद करती है और उन्हें अन्य तरीकों से बाधित करती है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के बीच संबंध जटिल पेचीदा और संवादात्मक है। इसके अलावा जनसंख्या वृद्धि का अर्थ श्रम आपूर्ति में वृद्धि है, जो उत्पादन का एक प्रमुख कारक है। पूरे दर्ज इतिहास में जनसंख्या वृद्धि और श्रम आपूर्ति दोनों विकास के प्रमुख स्रोत रहे हैं। आवश्यक औजारों और साजो–सामान से लैस मानव श्रम हमेशा से ही राष्ट्र की सबसे बड़ी उत्पादक संपत्ति रहा है और आज भी है।

जनसंख्या वृद्धि से कुल उत्पादन में वृद्धि होती है। लेकिन इस उत्पाद को वितरित करने वालों की संख्या भी बढ़ जाती है। कई उत्पादक हाथ हैं लेकिन खिलाने के लिए कई मुंह भी हैं। किसी समाज के प्रति व्यक्ति उत्पादन स्तर पर जनसंख्या वृद्धि का प्रभाव जनसंख्या वृद्धि के पैटर्न और संस्थागत (संगठनात्मक) आधार पर निर्भर करता है। यानी यह जनसंख्या की आयु संरचना पर निर्भर करता है। गिल कहते हैं प्रभाव नकारात्मक हो सकता है. हालांकि अगर जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई जिसने सामाजिक कार्यकर्ताओं के उत्पादक वर्षों को बढ़ा दिया तो उच्च समर्थन बोझ की समस्या कम से कम आंशिक रूप से ऑफसेट हो सकती है।

इस अर्थ में दो पहलुओं पर ध्यान दिया जा सकता है।

क. आयु वितरण दिखाने वाले व्यय पैटर्न

उम्र बढ़ने वाली आबादी (वृद्ध लोगों के बढ़ते अनुपात वाली आबादी) को अधिक एंटी–एजिंग उत्पादों और अपेक्षाकृत कम युवाओं से संबंधित उत्पादों की आवश्यकता होती है।औद्योगिक प्रणालियों को वस्तुओं और सेवाओं की बदलती मांग के अनुकूल होना चाहिए। यह समन्वय विशेष रूप से कम लचीलेपन वाले पुराने कार्यबल के लिए चुनौतियां पेश कर सकता है।

ख. युवा कार्यकर्ता आम तौर पर अधिक उत्पादक और लचीले होते हैं। वृद्ध लोगों को अनुभव का लाभ मिलता है लेकिन युवा ऊर्जावान और सक्रिय हो सकते हैं। साथ ही उम्रदराज आबादी में युवा लोगों को जिम्मेदारी के पदों तक पहुंचने के लिए अधिक समय तक इंतजार करना पड़ सकता है। जिसके निराशाजनक प्रभाव हो सकते हैं। यह दावा कि युवा लोग अधिक उत्पादक होते हैं निश्चित रूप से विवादास्पद है (विशेष रूप से वृद्ध लोगों से)। हालांकि कुछ लोगों को इस राय पर संदेह है कि वे लचीले हैं और नई नौकरी के लिए तैयार करना आसान है। उच्च मांग वाले उद्योगों में काम करने के लिए युवा आबादी को हाई स्कूल स्नातकों के प्रवाह को बढ़ाने की भी आवश्यकता है। यह उद्योगों के बीच श्रमिकों को ले जाने से जुड़ी कठिनाइयों और लागतों से बचा जाता है। एक कार्यकर्ता की एक नौकरी से दूसरी नौकरी में आसानी से जाने की क्षमता को नौकरी की गतिशीलता कहा जाता है। यह भारत जैसी अर्थव्यवस्था में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है जिसे न केवल घरेलू मांग में बल्कि बाहरी मांग और प्रतिस्पर्धा में भी बदलाव का जवाब देना है।

ग. उत्पादन कार्यरत आयु वर्ग पर निर्भर करता है। स्कूल छोड़ने के बाद और सेवानिवृत्त होने वाली आबादी के बीच का एक महत्वपूर्ण हिस्सा जो देश के अधिकांश कार्यबल को प्रदान करता है कामकाजी आयु वर्ग में है। समूह को समुदाय के गैर–कामकाजी सदस्यों का समर्थन करने का भी काम सौंपा गया है। यदि अधिकांश आबादी सेवानिवृत्त या स्कूल में है तो सेवानिवृत्ति या शिक्षा की अतिरिक्त लागत काम करने वाले और कमाने वाले लोगों की अपेक्षाकृत कम संख्या पर पड़ेगी। हालांकि जनसंख्या वृद्धि दर बहुत महत्वपूर्ण है। सीआईएस देशों में जनसंख्या के दबाव की समस्या का अध्ययन करते समय दो अन्य कारकों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। पहला प्राकृतिक संसाधनों के सापेक्ष जनसंख्या घनत्व है और दूसरा प्रौद्योगिकी है।

छोटे भौगोलिक क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि आम तौर पर मौजूदा कारकों विशेष रूप से एक समुदाय के प्राकृतिक संसाधनों पर बहुत अधिक दबाव डालती है। इसके अलावा यदि किसी समाज के पास पूंजी का सीमित भंडार है तो उसे पूंजी के लिए श्रम को प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता हो सकती है इस मामले में उत्पादन कार्य प्रतिफल के नियम को प्रदर्शित करता है।

ऐसा तब होता है जब श्रम परिवर्तनशील कारक होता है और पूंजी स्थिर कारक होती है। घटती हुई आय एक गंभीर समस्या हो सकती है जब जनसंख्या तेजी से बढ़ रही हो और प्राकृतिक (भूमि) या मानव निर्मित (पूंजीगत सामान) संसाधन बहुत कम या बिल्कुल नहीं बढ़ रहे हों। हालाँकि तकनीकी प्रगति अस्थायी रूप से कानून का स्थान ले लेती है। जनसंख्या समस्या का अध्ययन करते समय जनसंख्या आधार के पूर्ण आकार पर विचार किया जाना चाहिए। जनसंख्या आधार का आकार बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अर्थव्यवस्था के समग्र आकार को प्रभावित करता है। यह औद्योगीकरण की सफलता से संबंधित है क्योंकि विकास अक्सर घरेलू बाजार के छोटे आकार से बाधित होता है। हम जानते हैं कि जनसंख्या वृद्धि का अर्थ है कई वस्तुओं और सेवाओं के लिए बढ़ते बाजार और यह कि श्रम का विभाजन बाजार के आकार द्वारा सीमित है। संभावित विकास बाजार उद्यमियों को उत्पादन सुविधाओं और मशीनरी में अधिक निवेश करने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। नतीजतन गतिविधि को प्रोत्साहित किया जाता है। साथ ही अधिक आय और रोजगार सृजित होंगे। यह बड़े पैमाने पर विनिर्माण उत्पादों का कुशलतापूर्वक उत्पादन भी कर सकता है। शुद्ध प्रभाव से देश को लाभ हो सकता है। बेशक किसी देश के घरेलू बाजार का आकार न केवल उसकी संख्या पर निर्भर करता है बल्कि प्रति व्यक्ति आय के स्तर पर भी निर्भर करता है। लेकिन प्रति व्यक्ति आय जितनी कम है, भारत जैसे देश पूंजीगत सामान भारी उद्योग बनाने के लिए अच्छी स्थिति में हैं जो सफलता के लिए बड़े पैमाने की अर्थव्यवस्थाओं पर निर्भर करते हैं।

इसके विपरीत कम आबादी वाले और घनी आबादी वाले देश जैसे कि श्रीलंका अपने घरेलू बाजारों के छोटे आकार के कारण विशेष रूप से वंचित हैं। जनसंख्या वृद्धि पिछले 200 वर्षों में कई देशों में विकास को चलाने में एक अनुकूल कारक रही है। जबकि विशाल क्षेत्र काफी हद तक स्थिर रहे हैं। 1930 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में भी धीमी जनसंख्या वृद्धि की भविष्यवाणी की गई थी जिससे दीर्घकालिक ठहराव हो सकता है। बल्कि भारत में माल्थस की भविष्यवाणी आज अपनी सत्यता सिद्ध कर रही है। माना जाता है कि धीमी जनसंख्या वृद्धि का हमारे विकास की संभावनाओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यकीनन जनसंख्या वृद्धि आर्थिक विकास के लिए फायदेमंद या हानिकारक हो सकती है यह इस बात पर निर्भर करता है कि यह कहाँ कब और कैसे होता है। यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि विकसित देशों में आबादी आर्थिक विकास परिणामस्वरूप बढ़ी है। जबकि विकासशील देशों में विकास से पहले अस्तित्व में थी। यह विकास को कठिन और वांछनीय बनाता है। प्रति व्यक्ति आय की गणना राष्ट्रीय आय को जनसंख्या से भाग देकर की जाती है। जब जनसंख्या राष्ट्रीय आय या सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में तेजी से बढ़ती है तो औसत नागरिक के जीवन स्तर में सुधार नहीं होता है। अधिकांश

विकासशील देशों में जनसंख्या लगातार बढ़ रही है। यह विकास में बहुत बड़ी बाधा है। अधिकांश विकासशील देशों के लिए सबसे बड़ी चुनौती जनसंख्या वृद्धि को नियंत्रित करना प्रतीत होता है।

3.5 प्रतिकूल प्रभाव

जनसंख्या वृद्धि तीन कारणों से विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

(क) **पूंजी की कमीः** तीव्र जनसंख्या वृद्धि, प्रति व्यक्ति पूंजी की उपलब्धता को कम करती है श्रम उत्पादकता को कम करती है।

(ख) **आयु निर्भरताः** तेजी से जनसंख्या वृद्धि उपभोग की जरूरतों के कारण कई आश्रित बच्चे पैदा करती है जो अर्थव्यवस्था की बचत करने की क्षमता को कम करती है।

(ग) **निवेश रूपांतरणः** तीव्र जनसंख्या वृद्धि सरकारी खर्च को राष्ट्रीय अवसंरचना (सड़क दूरसंचार आदि) से शिक्षा और स्वास्थ्य की ओर स्थानांतरित कर रही है। अपेक्षाकृत कम कृषि भूमि और पानी वाले देशों में जनसंख्या वृद्धि के नकारात्मक प्रभाव और भी स्पष्ट हैं। हालांकि यह नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए कि एक द्विदिश कारण संबंध है। अभी तक हमने आर्थिक विकास पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभाव का अध्ययन किया है। साथ ही आर्थिक विकास का जनसंख्या वृद्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। पिछली दो शताब्दियों में आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में मृत्यु दर में गिरावट आई है और परिणामस्वरूप जनसंख्या में वृद्धि हुई है। हालांकि जन्म दर भी गिर गई। आर्थिक विकास ने उच्च जीवन स्तर, बेहतर पोषण, पर्याप्त कपड़े और आवास और सूखे और अकाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा प्रदान की है। चिकित्सा सुविधाओं में भी सुधार हुआ है। इससे शिशु मृत्यु दर में कमी आई और लोगों के स्वास्थ्य और जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई। यह सब इन देशों की आर्थिक सफलता से जुड़ा है। सामान्य तौर पर यूरोप और उत्तरी अमेरिका के विकासशील देशों में आधुनिक जनसंख्या वृद्धि जीवन स्तर, औद्योगीकरण और तकनीकी प्रगति की समग्र प्रक्रिया के एक महत्वपूर्ण हिस्से के साथ और प्रतिनिधित्व करती है।

विकासशील देशों में जनसंख्या विस्फोट के मुद्दे पर लौटते हुए देखा जा सकता है कि इन देशों की आर्थिक विकास दर बहुत कम थी। हालांकि उनकी आबादी तेजी से बढ़ रही है। जैसे–जैसे पश्चिमी तकनीक स्वास्थ्य देखभाल स्वच्छता और चिकित्सा ने इन देशों में प्रवेश किया मृत्यु दर में नाटकीय रूप से गिरावट आई और जनसंख्या तेजी से बढ़ी। हालांकि जीवन स्तर में अभी भी उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ है।

3.6 अभ्यास हेतु प्रष्न

1. माल्थस के अनुसार खाद्यान तथा जनसंख्या वृद्धि में प्रगति होती है–

क. धनात्मक तथा गुणोत्तर

ख. गुणोत्तर एवं धनात्मक

ग. दोनों एक समान

घ. कहा नही जा सकता

2. प्रीमेटिव चेक का अर्थ है–

क. गर्भपात

ख. गर्भनिरोधक

ग. देर से षादी

घ. प्राकृतिक प्रकोप

3. जनसंख्या वृद्धि का विकास पर प्रभाव नहीं है–

क. कार्यषील जनसंख्या उपलब्ध कराना
ख. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि
ग. कृषि हेतु मजदूर उपलब्ध कराना
घ. घरेलू बाजार के आकार में सम्भावित वृद्धि करना

4. जनसंख्या वृद्धि के नकरात्मक प्रभाव है–
क. अत्यधिक दबाव
ख. संषाधनों का दोहन
ग. श्रमिकों का अवषोषण
घ. उपरोक्त सभी

3.7 सारांष

जनसंख्या वृद्धि को पारंपरिक रूप से आर्थिक विकास के सकारात्मक चालक के रूप में देखा जाता है। एक बड़ी श्रम शक्ति का अर्थ है उच्च उत्पादकता और एक बड़ी आबादी का अर्थ है घरेलू बाजार के संभावित आकार में वृद्धि। हालांकि यह बहस का विषय है कि श्रम–अधिशेष विकासशील देशों में श्रम आपूर्ति में तेजी से वृद्धि का आर्थिक विकास पर सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इन अतिरिक्त श्रमिकों का अवशोषण और उत्पादक रोजगार में उनकी हिस्सेदारी स्पष्ट रूप से आर्थिक प्रणाली की क्षमता पर निर्भर करता है मुख्य रूप से पूंजी संचय की गति, प्रकार और प्रबंधकीय और प्रशासनिक कौशल जैसे अन्य संबंधित कारकों की उपलब्धता पर।

3.8 षब्दावली

सेन्सस– भारत में होने वाली जनगणना ।
अंकगणितीय– 1 +2 +3+ 4 +.....
षिषु जन्मदर–एक निष्चित समय में प्रति हजार व्यक्तियों पर जन्में षिषुओं की संख्या
मृत्यु दर– प्रति एक हजार लोगों पर प्रतिवर्ष होने वाली मौतो की संख्याा
प्रजनन दर– एक महिला के जीवन काल में जन्म लेने वाले कुल षिषुओं की संख्या

3.9 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1. क. अंकगणितीय तथा गुणोत्तर
2. ग. देर से षादी
3. ख. प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि
4. घ. उपरोक्त सभी

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

झिंगन एम. एल. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली 2020
एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन, षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022
ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020
सिंह योगेश कुमार एवं गोयल आलोक कुमारः विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली

3.11 उपयोगी सहायक पाठय सामग्री

Myrdal G. : Economic Theory and Under developed Regions 1957

Taneja M. L. & Myer R. M. : "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co- Delhi

3.12 निबन्धात्मक प्रष्न

1. जनसंख्या के विभिन्न सिद्धान्तों का संक्षेप में वर्णन करें।

2. जनसंख्या वृद्धि किस प्रकार विकास में योगदान दे सकती है? अपने उत्तर के पक्ष में चर्चा करिये।

3. जनसंख्या वृद्धि के आर्थिक विकास पर सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभावों की आलोचनात्मक समीक्षा किजिए।

निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण

3.2.3 निम्न स्तर संतुलन पाश विश्लेषण
3.2.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा
3.2.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या
3.2.3.3 सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु
3.2.3.4 सिद्धान्त की आलोचनायें
3.2.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.2.5 सारांश
3.2.6 शब्दावली
3.2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.2.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.2.9 उपयोगी सहायक पाठ्य सामग्री
3.2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.2.3 निम्न स्तर संतुलन पास विश्लेषण

आर. आर. नेल्सन ने अपना निम्न सन्तुलन पाश सिद्धान्त 1956 में अमेरिकन Economic Review में प्रकाशित अपने एक लेख 'A Theory of the Low Level of Equilibrium Trap' में प्रस्तुत किया। अल्पविकसित देशों की समस्याओं पर विचार करते हुए नेल्सन ने यह प्रतिपादित किया कि अल्प विकसित देश निम्न प्रति व्यक्ति आय के सन्तुलन पाश मे जकड़े हुए हैं। ये देश अत्यन्त ही अल्प प्रति व्यक्ति आय स्तर जो जीवन निर्वाह की आवश्यकता की पूर्ति के बराबरया लगभग बराबर है पर स्थित संस्थिति की गतिहीनता की स्थिति में है। स्थायी संस्थिति एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें यदि किसी प्रयास के कारण ये देश इस अल्पस्तरीय संस्थिति से बाहर निकलते हैं तो पुनः इसी स्तर पर संस्थिति के पुनः स्थापित होने की प्रवृत्ति होगी।

अल्पस्तरीय संस्थिति की स्थिति में बचत तथा विनियोग की दर अत्यन्त ही कम होती है। इस स्थिति में यदि प्रति व्यक्ति आय को न्यूनतम जीवन निर्वाहस्तर से ऊपर उठाया गया तो इसके कारण जनसंख्या में वृद्धि प्रेरित होगी। जनसंख्या की यह वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में कमी लायेगी और अर्थव्यवस्था पुन उसी न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तरीय प्रति व्यक्ति आय के साथ संस्थिति जाल में फंसी रह जायेगी। जनसंख्या की तीव्र वृद्धि प्रति व्यक्ति आय को ऊपर नहीं उठने देती । नेल्सन ने यह प्रतिपादित किया कि इस निम्न संतुलन पाश से बाहर निकालने के लिए यह आवश्यक है कि इतनी अधिक मात्रा में विनियोग किया जाये कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर को पीछे छोड़ दे। क्योंकि प्रारम्भ में जब प्रति व्यक्ति आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर उठती है तो उसके साथ जनसंख्या भी बढ़ती है पर एक सीमा के बाद प्रतिव्यक्ति आय में और वृद्धि होने पर जनसंख्या की वृद्धि दर में गिरावट होने लगती है।''

3.2.3.1 सिद्धान्त की व्याख्या

आर. आर. नैल्सन ने अल्पविकसित देशों के लिए निम्न संतुलन पाश का सिद्धान्त विकसित किया। नैल्सन का सिद्धान्त माल्थम की इस उपकल्पना पर आधारित है कि किसी देश की प्रति व्यक्ति आय के न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से बढ़ जाने पर जनसंख्या बढ़ने लगती है परन्तु जब जनसंख्या की वृद्धि दर 'एक उच्च भौतिक सीमा पर पहुंच जाती है तो प्रति व्यक्ति आय में और वृद्धि होने पर यह (जनसंख्या वृद्धि–दर) गिरने लगती है। नेल्सन के अनुसार अल्पविकसित देशों के रोग की पहचान यह है कि वह प्रति

व्यक्ति आय का ऐसा स्तर है जो निर्वाह आवश्यकताओं पर या उनके निकट पहुंचकर स्थिर हो जाता है।श प्रति व्यक्ति आय के स्थिर संन्तुलन स्तर पर बचत की दर और परिणामतः शुद्ध निवेश की दर एक नीचे स्तर पर रहती है। जब कुल राष्ट्रीय आय की वृद्धि दर बढ़ाकर बचत एवं निवेश की दर बढ़ाने के प्रयत्न किए जाते हैं तो उनके साथ जनसंख्या वृद्धि की दर भी ऊंची हो जाती है तो प्रति व्यक्ति आय को पीछे धकेल कर उसको स्थिर संतुलन स्तर पर पहुंचा देती है। इस प्रकार अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाएं निम्न संतुलन पाश की जकड़ में फंस जाती है।

3.2.3.2 सिद्धान्त के मुख्य बिन्दु

नेल्सन ने चार सामाजिक एवं प्रौद्योगिक स्थितियों का उल्लेख किया है जो पाश करने में सहायक होती है। ये हैं–

1. प्रति व्यक्ति आय के स्तर तथा जनसंख्या वृद्धि की दर में ऊंचा सहसंबंध है।
2. अतिरिक्त प्रतिव्यक्ति आय को बढ़ाते हुए प्रति व्यक्ति निवेश में लगाने की न्यून प्रवृत्ति
3. कृषि योग्य कृषि भूमि की दुर्लभता ।
4. उत्पादन के अदक्ष तरीके।

उपर्युक्त कारको के साथ प्रो नैल्सन ने दो कारण और बताए – सांस्कृतिक निष्क्रियता तथा आर्थिक निष्क्रियता। सांस्कृतिक निष्क्रियता से आर्थिक निष्क्रियता और आर्थिक निष्क्रियता से सांस्कृतिक निष्क्रियता आती है। अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के अध्ययन से पता चलता है कि ऊपर बताई गई स्थितियों की उपस्थिति के कारण अधिकांश अल्प विकसित देश निम्न संतुलन पाश मे जकड़े हुए हैं।

आय के निम्न स्तर पर किसी अर्थव्यवस्था का पाश समझाने के लिए नैल्सन ने संबंधों के लिए तीन मान्यताए प्रयोग किए हैं। प्रथम आय, पूँजी स्टॉक, प्रौद्योगिकी स्तर तथा जनसंख्या आकार का फलन है। दूसरे शुद्ध निवेश यह पूँजी है जो औद्योगिक क्षेत्र में औजारों एवं उपकरणों के स्टॉक में बढोत्तरियों के रूप में हुई बचतों (जमा) के साथ कृषिगत भूमि की मात्रा में नई भूमि की बढ़ोत्तरी से है। जो कि बचतो पर आधारित होती है। तीसरे यदि प्रति व्यक्ति आय नीची हो तो मृत्युदर में परिवर्तनों के कारण जनसंख्या वृद्धि की दर में अल्पकालीन परिवर्तन होते हैं। और प्रति व्यक्ति आय के स्तर में परिवर्तनों के कारण मृत्युदर में परिवर्तन होते हैं। फिर भी जब प्रति व्यक्ति आय एक बार निर्वाह आवश्यकताओं के स्तर से भली प्रकार ऊपर पहुंच जाती है तो प्रति व्यक्ति आय में होने वाली और वृद्धियों का मूल्य दर पर प्रभाव नहीं के बराबर होता है।

नेल्सन माडल इस मान्यता पर आधारित है कि जनसंख्या की वृद्धि प्रति व्यक्ति आय तथा राष्ट्रीय आय की वृद्धि परस्पर आश्रित तथा सम्बन्धित है। नेल्सन ने अपने माडल की रूपरेखा तीन समीकरणों के आधार पर की। पूँजी निर्माण से सम्बन्धित समीकरण – अर्थव्यवस्था में पूँजी निर्माण बचत तथा नयी भूमि को जोत में लाने के द्वारा होगी। चूंकि जैसे – जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती जाती है नयी भूमि जोत में आती है पर एक सीमा के बाद नयी भूमि में वृद्धि दुर्लभ हो जायेगी। इसलिए यह मान लिया गया है कि नयी भूमि पूँजी निर्माण की स्रोत नहीं है। पूँजी स्टॉक में वृद्धि बचत के द्वारा ही होगी। यह भी मान लिया गया है कि सभी बचत विनियोजित हो जायेगी। इस प्रकार पूँजी निर्माण में वद्धि = बचत में वद्धि = औद्योगिक क्षेत्र में विनियोग में वृद्धि।

विनियोग में कोई वृद्धि सम्भव नहीं होगी जब तक आय जीवन निर्वाह स्तर से ऊपर नहीं हो जाती जिसके बाद इसमें वृद्धि प्रति व्यक्ति आय के साथ होती है। नेल्सन ने यह भी माना कि विनियोग की भी एक निचली सीमा है क्योंकि कोई कितना भी भूखा क्यों न हो वह रेल या सड़क तोड़कर नहीं खायेगा। प्रति व्यक्ति बचत वृद्धि दर तथा प्रति व्यक्ति आय के सम्बन्ध को रेखा चित्र संख्या के माध्यम से बताया गया है। प्रति व्यक्ति विनियोग में वृद्धि (Increment in Per Capita Investment)

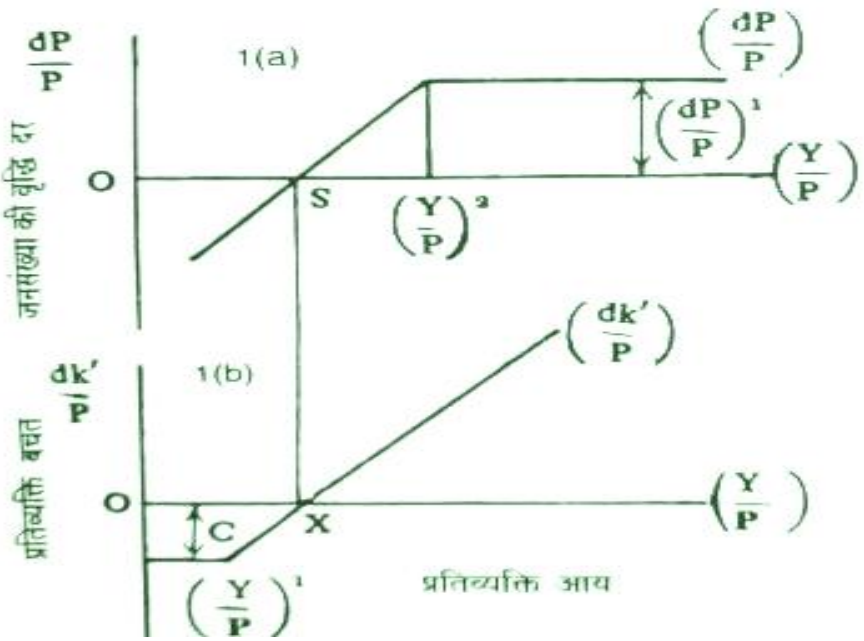

चित्रः–3.1

रेखाचित्र 3.1 में आधार अक्ष पर प्रति व्यक्ति आय (Y/P) तथा लम्ब अक्ष पर प्रति व्यक्ति विनियोग में वृद्धि दर प्रदर्शित है। रेखाचित्र में X बिन्दु आय के उस स्तर को प्रदर्शित करता है जिस पर बचत शून्य है। इससे बायीं ओर नीचे (Y/P) तक प्रति व्यक्ति आय इतनी कम है कि अबचत या अविनियोग की स्थिति है जो कि की स्थिर दर से मान ली गयी है । (Y/P) स्तर के बाद प्रति व्यक्ति बचत प्रतिव्यक्ति आय के साथ बढ़ती है।

जनसंख्या वृद्धि समीकरण – यह मान लिया गया है कि प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि के साथ जनसंख्या की वृद्धि दर (dP/P) मृत्युदर की गिरावट के कारण बढ़ती है। प्रति व्यक्ति आय तथा जनसंख्या की वृद्धि दर के बीच सम्बन्ध को रेखाचित्र संख्या 3.1 में दिखाया गया है। रेखाचित्र में बिन्दु S न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तरीय प्रति व्यक्ति आय प्रदर्शित करता है। S से बायीं ओर जब प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर से भी कम है जनसंख्या की वृद्धि दर ऋणात्मक है। अर्थात् मृत्युदर जन्मदर से अधिक है पर जब प्रति व्यक्ति आय से ऊपर बढ़ती है तो जनसंख्या तब तक बढ़ती है जब तक कि यह ऊपरी सीमा T तक नहीं पहुंच जाती। इसके बाद जनसंख्या की वृद्धि दर इसी स्तर पर रहती है जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का स्तर (Y/P) नहीं हो जाता उसके बाद इसमें गिरावट शुरू हो जाती है। अर्थात् उच्च प्रति व्यक्ति आय स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर गिरेगी। इस रेखाचित्र में PP वक्र प्रति व्यक्ति आय के विभिन्न स्तरों पर 'जनसंख्या वृद्धि पथ' प्रदर्शित करता है।

आय निर्धारण समीकरण – नेल्सन माडल में आय निर्धारण समीकरण उत्पादन फलन की ही तरह है। माडल इस मान्यता पर आधारित है कि आय उत्पादन साधनों के रूप में आगतों का रैखिक सहजातीय फलन है अर्थात् Y अथवा $Q = f(L)$ जिसमें ज्ञ पूँजी $L = Je_0$ (जो जनसंख्या का एक स्थिर अनुपात है) तथा T कुल उत्पादकता का निर्देश है। प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक ढांचा को स्थिर मान लिया गया है।

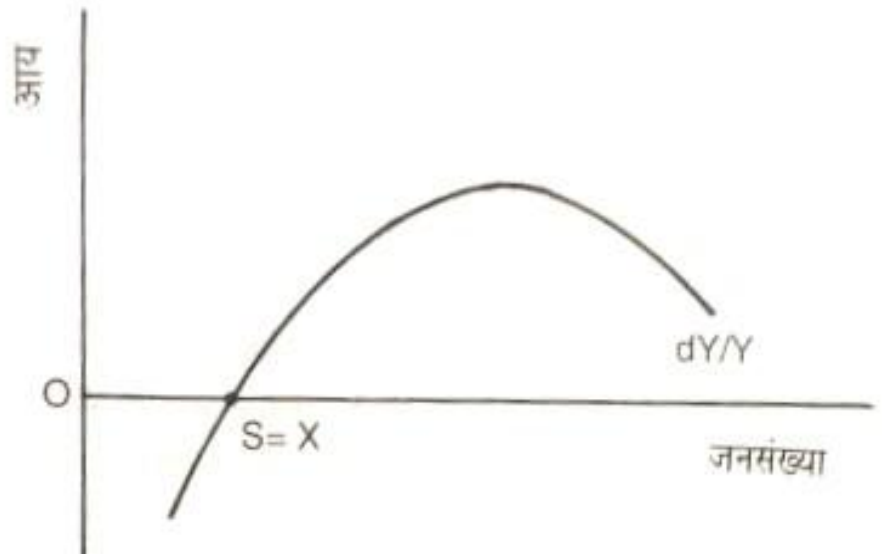

चित्रः—3.2

मॉडल की मान्यताओं के आधार पर आय वृद्धि वक्र का निर्माण किया जा सकता है। जिसका प्रदर्शन रेखाचित्र संख्या 3.2 में dY/Y वक्र के द्वारा किया गया है। जिसका निर्धारण रेखाचित्र संख्या 3.1 से किया गया है। इस स्थिति में जनसंख्या स्थिर है। बचत के द्वारा निर्मित प्रति व्यक्ति पूँजी शून्य है। फलस्वरूप आय की वृद्धि दर शून्य (dY/Y)(0) है। इस स्थिर संस्थिति के स्तर से ऊपर प्रति व्यक्ति आय के वृद्धि के साथ प्रति व्यक्ति पूँजी की उपलब्धता तथा श्रम शक्ति के वृद्धि के कारण आर्थिक विकास की दर में वृद्धि होती है। पर प्राविधिक प्रगति के अभाव में परिवर्तनशील अनुपात नियम के क्रियाशीलन के कारण वृद्धि दर में गिरावट आयेगी। इसके पूर्व हम लोगों ने नेल्सन माडल के उन तीन समीकरणों की व्याख्या की तथा रेखाचित्र संख्या 3.1 तथा 3.2 के अंतर्गत उनके आधार पर तीन महत्वपूर्ण वक्र प्राप्त की। (dp/P) या जनसंख्या में वृद्धि दर वक्र (dK/P) प्रति व्यक्ति निवेश वृद्धि दर वक्र तथा (dY/Y) आय वृद्धि दर वक्र। इन तीनों समीकरणों तथा तीनों वक्रों के आधार पर नेल्सन ने अपने माडल की व्याख्या की। नेल्सन माडल की व्याख्या के लिए हम 3.1 तथा 3.2 में दिये गये रेखाचित्रों को मिलाकर नीचे रेखाचित्र 3.3 दे रहे हैं। जिसके आधार पर अल्पस्तरीय आय संस्थिति पाश की स्थिति प्रदर्शित की गयी है जिसमें प्रति व्यक्ति आय स्थायी रूप से गिरावट की स्थिति में है, को प्रदर्शित किया गया है।

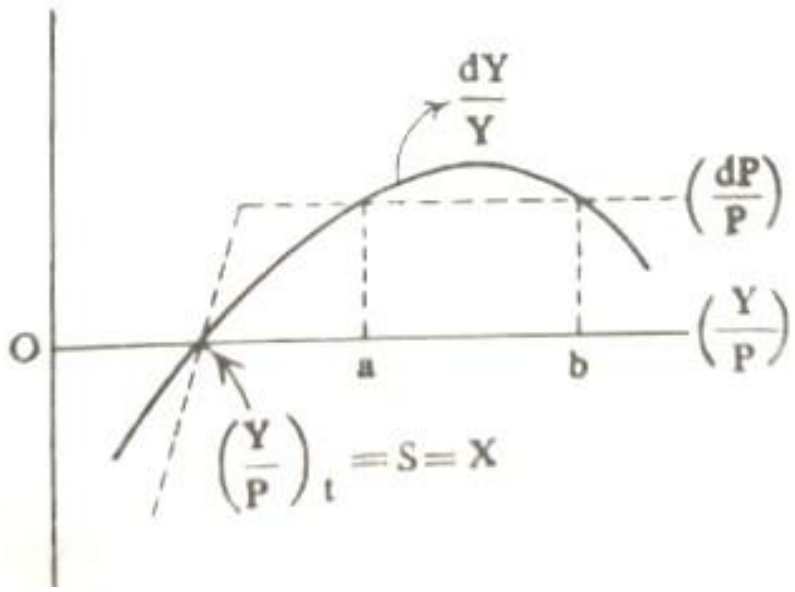

चित्रः—3.3

इस रेखाचित्र में (dY/Y) आय वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखाचित्र संख्या 3.2 से लिया गया है तथा (dP/P) वक्र जनसंख्या वृद्धि दर वक्र है जिसे रेखा 3.1 से लिया गया है। रेखाचित्र 1 (b) से X का स्तर लिया गया है जो सुविधा के लिए S के बराबर मान लिया गया है। रेखाचित्र 3.2 में S बिन्दु है जिस पर प्रति व्यक्ति आय न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर के बराबर है जिस पर जनसंख्या की वृद्धि दर स्थिर है तथा दूसरी ओर यह प्रदर्शित करता है कि इस बिन्दु पर प्रति व्यक्ति बचत तथा निवेश शून्य है।

प्रति व्यक्ति आय के प्रत्येक स्तर पर जो जीवन निर्वाह स्तर बिन्दु (S = X) तथा Oa के बीच हो जनसंख्या की वृद्धि दर आय की वृद्धि दर की अपेक्षा अधिक होगी इसके परिणाम स्वरूप प्रति व्यक्ति आय मे स्थायी रूप से गिरावट होगी और यह जीवन निर्वाह स्तर पर पहुंच जायेगी। संस्थिति प्रति व्यक्ति आय का स्तर वहां होगा जहां जनसंख्या की वृद्धि दर प्रदर्शित करने वाली वक्र (dP/P) आय संवृद्धि दर वक्र (dY/Y) को नीचे से काटे। ऐसा एक बिन्दु Oa के बायीं ओर वहां होगा जहां S=X है। यह बिन्दु 'अल्पसन्तुलन पास की स्थिति को प्रदर्शित करेगा। प्रति व्यक्ति आय का कोई भी स्तर जो a से कम हो प्रति व्यक्ति आय को आवश्यक रूप से जीवन निर्वाह स्तर पर पहुंचा देगा। इसके विपरीत यदि प्रति व्यक्ति आय का स्तर Oa से अधिक हो तो प्रति व्यक्ति आय में तब तक स्थायी वृद्धि होगी जब तक कि दोनों वक्रं एक दूसरे को Ob स्तर पर पुनः नहीं काटतीं। यह एक नयी स्थिर संस्थिति की स्थिति होगी जहां 'जनसंख्या की वृद्धि दर वक्र आय वृद्धि दर वक्र को नीचे से काटती है। इस 'अल्प सन्तुलन पास' से निकलने के लिए दो रास्ते हैं – या तो प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाकर Oa कर दिया जाये या सरकारी नीतियों के द्वारा dY/Y तथा dP/P वक्रं वांछित रूप से विवर्तित कर दी जायें। ऐसे विकासशील देश जो ऐसे पास में फंसे हैं उन्हें एक बार में अपनी प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाकर Oa के बराबर लाना होगा। ये देश इस पास से तभी छूट सकते हैं जब प्राविधिक प्रगति के कारण समयान्तर में dY/Y को ऊपर विवर्तित किया जा सके या प्रभावपूर्ण जनसंख्या नीति द्वारा dP/P वक्र को नीचे विवर्तित किया जा सके।

3.2.3.4 सिद्धान्त की आलोचनायें

1. जनसंख्या वृद्धि दर मृत्यु दर से सम्बन्धित है।
2. जन्मदर मे कमी प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के कारण नहीं होती।
3. जन्मदर कम करने के लिए राज्य प्रयत्नों की उपेक्षा की गई करता है।
4. समय तत्व की उपेक्षा।
5. प्रति व्यक्ति आय तथा वृद्धि दर में जटिल संबंध।
6. यह बन्द अर्थव्यवस्था पर लागू होता है।

3.2.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. लिबिन्सटीन के ही समान विचार निम्न में से किस अर्थशास्त्री ने दिये?

क. रोस्ट
ख. रोजेस्टी
ग. हर्षमैन
घ. नेल्सन

2. नेल्सन ने किस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया?

क. प्रबल प्रयास सिद्धान्त
ख.आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त
ग.निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त
घ.जीवन–निर्वाह सिद्धान्त

3.

क. नेल्सन से
ख. जे0ई0 मीड
ग. डोमर
घ.रॉबिन्सन

4. प्रतिव्यक्ति आय के स्तर तथा जनसंख्या वृद्धि की दर में ऊंचा सह संबंध है यह विचार धारा सम्बन्धित है।

क. सिंगर
ख. नेल्सन
ग. फ्लेमिंग
घ. मार्शल

3.2.5 सारांश

निम्न संतुलन पाश से बचने के लिए नेल्सन ने अनेक साधन लक्ष्य किए हैं। प्रथम देश में अनुकूल सामाजिक–राजनैतिक वातावरण होना चाहिए। दूसरे मितव्ययिता तथा उद्यम वृत्ति पर अधिक बल देकर सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाया जाए। अधिक उत्पादन के लिए और प्रोत्साहन दिए जाएं। परिवार का आकार सीमित रखने के लिए भी प्रोत्साहन दिए जाए। तीसरे आय के वितरण में परिवर्तन लाने के लिए कदम उठाए जिससे निवेशक धन संचय कर सकें। चौथे एक सर्वव्यापी सरकारी निवेश कार्यक्रम होना

चाहिए। पांचवे विदेशों से कोष प्राप्त करके आय तथा पूँजी बढ़ाई जाए। अन्तिम विद्यमान साधनों को अधिक पूर्णता से उपयोग में लाने के लिए उत्पादन की सुधरी तकनीकें काम में लायी जायें ताकि दिये हुए उपकरणों से आय बढ़ जाये। अल्प विकसित देशों में निम्न संतुलन पाश से बचने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि यह अधिक हो। जब किसी निश्चित न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय स्तर से ऊपर एक बार यह स्थिति उपलब्ध हो जायेगी तो सरकारी प्रयत्न के बिना भी तब तक सतत वृद्धि होती चलेगी जब तक कि प्रति व्यक्ति आय का एक नया उच्च स्तर नहीं आ जाता।

3.2.6 शब्दावली

उच्च भौतिक सीमा – उच्चतम उपभोग की अवस्था ।

न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर – आय की वह मात्रा जो मात्र अति आवश्यक उपभोग को ही क्रय कर सके अर्थात् आय का निम्न स्तर।

जनसंख्या वृद्धि समीकरण– जब भी प्रति व्यक्ति आय निर्वाह स्तर से ऊपर के स्तर पर पहुंच जाती है तो इसमें किसी भी तरह की और वृद्धि का मृत्यु दर पर नगण्य प्रभाव पड़ेगा। इसके अलावा, मृत्यु दर में बदलाव प्रति व्यक्ति आय में बदलाव के कारण होता है।

आय निर्धारण समीकरण– आय पूंजी के भंडार, जनसंख्या के आकार और तकनीक के स्तर पर निर्भर करती है।

शुद्ध निवेश– में बचत–निर्मित पूंजी और खेती के तहत भूमि की मात्रा में वृद्धि शामिल है।

3.2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ. नेल्सन
2. ग.निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त
3. क. नेल्सन से
4. ख. नेल्सन

3.2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्रो. एम० एल० झिगन " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन " बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस दिल्ली

प्रो० एस० एन० लाल आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, 1999

प्रो. एस0पी0 सिंह " आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन, एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली 2009.

नेल्सन, रिचर्ड आर. नेल्सन (दिसंबर 1956), "अविकसित अर्थव्यवस्थाओं में निम्न–स्तरीय संतुलन पाश का एक सिद्धांत", अमेरिकी आर्थिक समीक्षा 46 (5): 894–908।

बूरा, रोहित. "आर.आर. नेल्सन द्वारा प्रस्तुत निम्न स्तरीय संतुलन ट्रैप सिद्धांत क्या है?"

नेल्सन, रिचर्ड आर. (जुलाई 1960), "ग्रोथ मॉडल्स एंड द एस्केप फ्रॉम द लो–लेवल इक्विलिब्रियम ट्रैपः द केस ऑफ जापान", आर्थिक विकास और सांस्कृतिक परिवर्तन 8 (4): 378–388

3.2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

R- R- Nelson "A theory of the low level Equilibrium Trap"- American Economic Reviev.

Agarwal R- C- : "Economics of Development and Planning" Lakshmi Narayan Agarwal Agra 2007.

Taneja M-L- & Myer R-M-: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co- Delhi 203-2.

3.2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नेल्सन के निम्न संतुलन पाश सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करिए, आपकी राय में निम्न संतुलन पाश से बचने के क्या उपाय हो सकते हैं?

खण्ड–02

इकाई 4

लीबन्स्टीन का क्रान्तिक न्यूनतम प्रयास अवधारणा, लुईस का द्विक्षेत्रीय विकास का माडल

इकाई का संरचना

4.1.1 प्रस्तावना
4.1.2 उद्देश्य
4.1.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त
4.1.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा
4.1.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या
4.1.3.3 सिद्धान्त के प्रमुख बिन्दु
4.1.4 सिद्धान्त की आलोचनाएँ
4.1.5 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.1.6 सारांश
4.1.7 शब्दावली
4.1.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.1.10 उपयोगी सहायक पाठ्य सामग्री
4.1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1.1 प्रस्तावना

1957 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक –Economic Backwardness and Economic Growth' में प्रो. एच. लीबन्स्टीन ने नेल्सन की ही तरह अल्प प्रति व्यक्ति आय की संस्थिति पाश की चर्चा की जिसमें विकासशील तथा अल्प विकसित अर्थव्यवस्थायें निरन्तर फंसी रहती हैं। इस भंवर से निकालने के लिए लीबन्स्टीन ने 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास की आवश्यकता पर बल दिया जिससे प्रति व्यक्ति आय में इतनी अधिक वृद्धि आ जाये कि आय की वृद्धि दर जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक हो जायें इस 'निम्न संतुलन पाश से किसी देश को बाहर निकालकर सतत विकास की स्थिति में लाना किसी वायुयान को भूमि की सतह से उड़ाकर ऊपर ले जाने के समान हैं। किसी वायुयान को हवा में उड़ने वाला बनाने के पहले यह आवश्यक है कि उसे एक न्यूनतम आवश्यक गति प्रदान की जाय। ठीक उसी प्रकार जब तक आवश्यक न्यूनतम प्रयास न किया जाये अर्थव्यवस्था इस जाल से मुक्त नहीं हो सकती हैं।

4.1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्रों में निम्नलिखित की समझ विकसित हो सकेगी–

1. अर्थव्यवस्था में न्यूनतम प्रयास द्वारा आर्थिक विकास किस प्रकार होता है।
2. किसी भी अर्थव्यवस्था के लिये आवश्यक न्यूनतम प्रयास से क्या आषय है।

4.1.3 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त

4.1.3.1 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की अवधारणा

यह सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित है कि अल्प विकसित देशों में जन संख्या दबावों के कारण निर्धनता एव अल्प पूँजी निर्माण का दुश्चक्र पाया जाता है। श्ये विषम वृत्त इसलिये अधिक विषम बने रहते हैं क्योंकि पर्याप्त मात्रा में विकास के लिए वांछित प्रोत्साहन (प्रयास) उपलब्ध नहीं किये जा सकते हैं। जब निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में कम किया जाता है तो उससे आय में वृद्धि तो होती है लेकिन बढ़ी हुई आय बढ़ी हुई जनसंख्या द्वारा उपयोग कर ली जाती है और निवेष नहीं बढ़ता है। विकास का क्रम स्थिर बना रहता है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में किया जाये ताकि अल्प बचत व अल्प पूँजी निर्माण के रिसते हुए घावों को एक बारगी सुखाया जा सके अर्थात् आर्थिक दुश्चक्र तोड़ा जा सके।

4.1.3.2 आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या

लीबन्स्टीन ने सिद्धान्त की व्याख्या के लिए अनेक रेखाचित्रों का सहारा लिया। ऐसी स्थिति जबकि अर्थव्यवस्था में जनसंख्या की वृद्धि शून्य हो तथा निवेश या पूँजी संचयन भी शून्य हो – इस स्थिति की व्याख्या रेखाचित्र संख्या 4.1 में की गयी है। इस स्थिति की व्याख्या के लिए यह मान लिया गया है कि उत्पादन की मात्रा संसाधन तथा जनसंख्या के आकार पर निर्भर करती है। दोनों ही जनसंख्या तथा निबल निवेश, प्रति व्यक्ति आय पर निर्भर करते हैं।

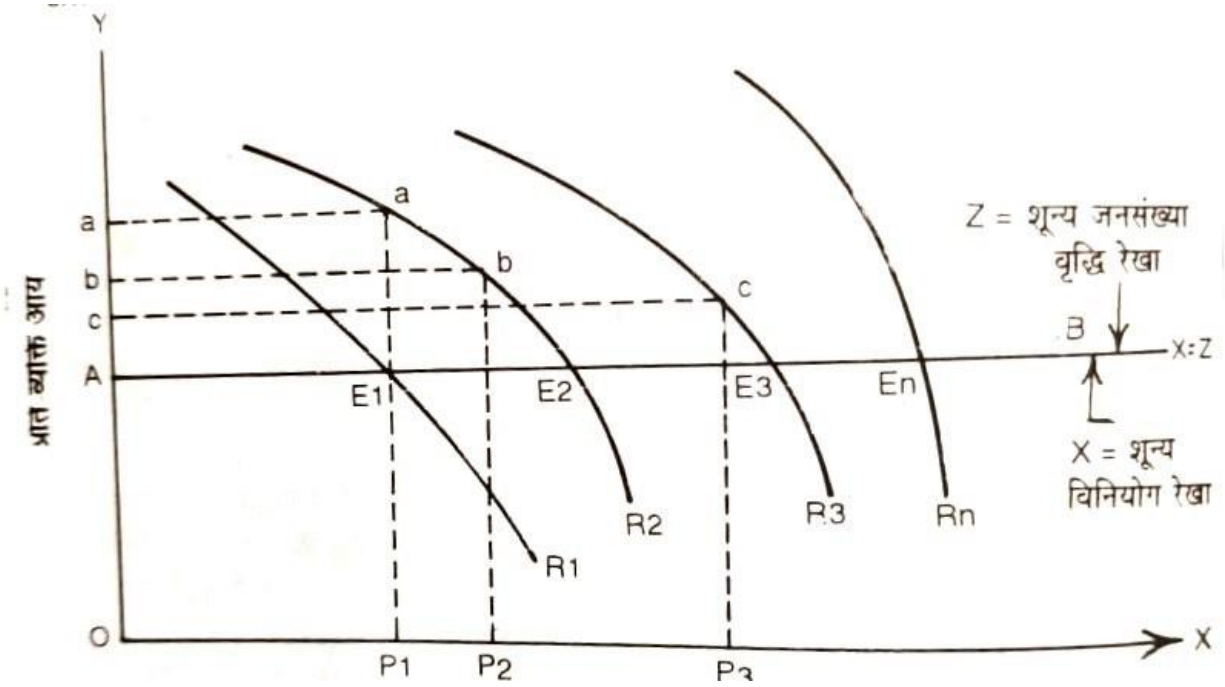

चित्रः–4.1

प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि लाती है, तथा यह वृद्धि इतनी होती है कि अर्थव्यवस्था पुनः अपने पूर्ववर्ती व्यवस्था में पहुच जाती है क्योकि बढ़ी हुयी आय। जनसंख्या द्वारा उपयोग कर ली जायेगी।

रेखा चित्र 4.1 में खीची गयी AB रेखा जो आधार अक्ष पर समानान्तर है X = Z प्रदर्शित करती है अर्थात् जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य है। जिसका अर्थ हुआ कि मृत्युदर तथा जन्मदर बराबर हैं। प्रति व्यक्ति आय के OA स्तर पर जनसंख्या की वृद्धि दर शून्य है यदि प्रति व्यक्ति आय OA से अधिक हुयी तो जनसंख्या की वृद्धि दर धनात्मक होगी OA पर शून्य तथा OA से कम पर ऋणात्मक होगी। OA स्तर पर निबल निवेश भी शून्य है। शून्य निवेश का अर्थ यह हुआ कि सकल विनियोग तो धनात्मक है पर वह पूँजी सम्पत्ति के प्रतिस्थापन तथा हास या तोड़ फोड़ को पूरा करने के लिए ही हो रहा है अर्थात् निवल निवेश = सकल विनियोग – ह्रास रेखाचित्र में R_1 R_2 R ------- R_n वक्र वैकल्पिक प्रति व्यक्ति आय प्रदर्शित करती है जिसे दिये हुए संसाधन R_1 R_2 R_3 ..... R_n से वैकल्पिक जनसंख्या के आकार पर प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार ये वक्रं एक निश्चित संसाधन के साथ प्रतिव्यक्ति आय तथा / जनसंख्या के आकार के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करती है। हम सबसे पहले R को लेते हैं जो संसाधन R तथा जनसंख्या OP के साथ सम्बन्ध व्यक्त करती है। मूल संस्थिति की स्थिति E_1 पर है। इस स्थिति में प्रति व्यक्ति आय OA है जिस पर X = Z है। अब मान लीजिए प्रेरित विनियोग के कारण संसाधन R_1 से बढ़कर R_2 हो जाते हैं। स्पष्ट है यदि जनसंख्या OP_2 होतो नये संसाधन R_2 के साथ प्रति व्यक्ति आय O या P_1a होगी पर इस बढ़ी हुयी प्रति व्यक्ति आय के कारण जनसंख्या में वृद्धि होगी। मान लीजिए इसके कारण जनसंख्या का आकार बढ़कर OP_2 हो जाता है तो प्रति व्यक्ति आय गिरकर P_2b या Ob हो जायेगी। निवेश की और अधिक वृद्धि यदि R_3 ♭ तक हो जाय तो जनसंख्या का आकार OP_3 हो जायेगा और प्रति व्यक्ति आय घटकर P- या Oc हो जायेगी और यह क्रिया तब तक चलती जायेगी जब तक कि पुनः OA की स्थिति नहीं प्राप्त हो जाती है। अतः स्पष्ट है कि इस स्थिति में जनसंख्या एक अवसादी शक्ति के रूप में कार्य करेगी। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि जनसंख्या में वृद्धि लाती है और जनसंख्या की वृद्धि इतनी बलवती है कि अर्थव्यवस्था पुनः **अल्पस्तरीय संस्थिति** में वही पहुंच जाती है। यहां हम लोगों ने जो व्याख्या की उसमे यह मान लिया कि प्रत्येक वृद्धि चाहे वह कितनी बड़ी क्यों न हो। जनसंख्या वृद्धि के दीर्घकालीन प्रभाव प्रेरित विनियोग के कारण उत्पन्न प्रभाव की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होगी। लेबन्स्टीन इस सम्भावना के अतिरिक्त दो और सम्भावनाओं की बात करते हैं–

1. प्रणाली छोटी असन्तुलन के लिए अर्ध स्थिर संस्थिति के रूप में है पर बडी असन्तुलन के सम्बध में ऐसा नहीं है। कहने का अर्थ यह है कि छोटी मोटी गड़बड़ियों या असंतुलनों की स्थिति में प्रति व्यक्ति आय को गिराने में जनसंख्या की अवसादी शक्ति प्रेरित विनियोग की उत्प्रेरक शक्ति से अधिक प्रबल होगी पर बडी असन्तुलनों के सम्बन्ध में जनसंख्या की अवसादी शक्ति, कम महत्वपूर्ण होगी। जब प्रारम्भ से ही संस्थिति अस्थायी है तब स्वयं लीबन्स्टीन वाली सम्भावना को अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में व्यवहारिक तथा ठीक हीं पाते हैं।

ऐसी स्थिति जबकि शून्य विनियोग रेखा (X) तथा शून्य जनसंख्या वृद्धि Z एक ही नहीं हो बल्कि X=Z रेखा से ऊपर हो – ऐसी स्थिति को रेखाचित्र –4.2 में प्रदर्शित किया गया है –

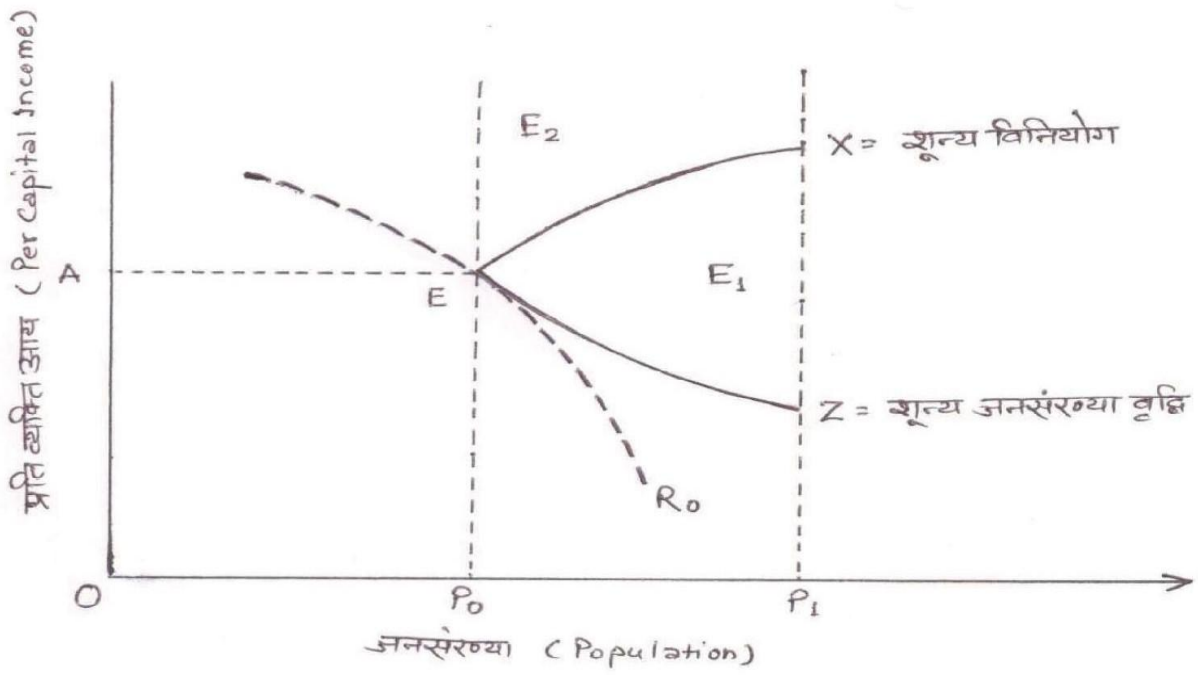

चित्रः–4.2

इस रेखाचित्र में AE न्यूनतम प्रतिव्यक्ति आय रेखा है जिससे अधिक प्रति व्यक्ति आय स्तर पर आर्थिक संवृद्धि कायम रह सकेगी। R पहले ही की तरह निश्चित संसाधन Ro के साथ प्रति व्यक्ति आय तथा जनसंख्या क आकार के बीच सम्बन्ध स्थापित करती है। मान लीजिये मूल संस्थिति E पर है जहां जनसंख्या के आकार OP प्रति व्यक्ति आय OA तथा संसाधन Ro है। यह देखा जा सकता है कि प्रेरित विनियोग के कारण कोई भी असन्तुलन जो प्रणाली को EXZ या X के भीतर रखती है तो पुनः मूल संस्थिति E की स्थिति कायम हो जायेगी। उदाहरण के लिए यदि असन्तुलन के बाद नयी संस्थिति का बिन्दु XEZ के भीतर हो मान लीजिए E इस बिन्दु पर निबल निवेश ऋणात्मक होगा क्योंकि E_1 बिन्दु EX या शून्य विनियोग से नीचे है तथा जनसंख्या की वृद्धि दर धनात्मक या शून्य से अधिक होगी क्योंकि E बिन्दु शून्य जनसंख्या वृद्धि रेखा EZ से ऊपर है। इस स्थिति में अविनियोग तथा जनसंख्या वृद्धि दोनों ही प्रति व्यक्ति आय के नीचे लायेंगे। और पुनः संस्थिति E पर कायम हो जायेगी। यदि संस्थिति का नया बिन्दु E X के भीतर है मान लीजिए E_2 है तो निवेश तो धनात्मक होगा क्योंकि E_2 बिन्दु EX रेखा के बिन्दुओं से ऊपर तो है पर जनसंख्या की वृद्धि दर बहुत अधिक है। जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रति व्यक्ति आय को नीचे लाने वाली शक्ति धनात्मक विनियोग के कारण आय वर्धक शक्ति की अपेक्षा अधिक प्रबल होगी जो पुनः अर्थव्यवस्था को E पर संस्थिति की स्थिति में ला देगी।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास– सिद्धान्त के उपयुक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि जब तक अर्थव्यवस्था में प्रतिव्यक्ति आय आवश्यक न्यूनतम आय से कम रहेगी इसमें अल्पस्तरीय संस्थिति E पर आने की प्रवृत्ति होगी इन देशों के आर्थिक विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रति व्यक्ति आय चित्र 4.2 में प्रदर्शित MM से अधिक हो। पर ऐसा तभी होगा जब आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों से अधिक प्रबल

हों। पिछड़े देशों में आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों से अधिक नहीं होंगी इसलिए प्रति व्यक्ति आय में उतनी अधिक वृद्धि नहीं होगी जितनी होनी चाहिए। जिससे अर्थव्यवस्था अल्पस्तरीय संस्थिति से बाहर निकल सके। यही वास्तव में उनकी सम्पूर्ण विचारधारा का निचोड़ है। यदि आय की प्रारम्भिक वृद्धि इतनी अधिक हो कि आय वर्धक शक्तियां आय अवसादी शक्तियों को बहुत अधिक पीछे छोड़ दे। तो आर्थिक विकास की संचयी प्रक्रिया शुरू हो जायेगी। इसलिए लीबन्स्टीन ने यह प्रतिपादित किया है कि 'अल्पविकसित देशों में आर्थिक पिछड़ेपन से छुटकारा पाने के प्रयास आवश्यक न्यूनतम से कम है। दी हुयी जनसंख्या की वृद्धि के साथ विनियोग के रूप में आवश्यक न्यूनतम प्रयास इतना होना चाहिए जिससे जनसंख्या का अवरोध टूट सके तथा आर्थिक विकास संचयी रूप से आगे बढ़ सके। यदि जनसंख्या की वृद्धि दर कम हो तो आय में होने वाली प्रारम्भिक वृद्धि जितनी ही अधिक होगी उतनी शीघ्र ही संचयी विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी। स्पष्ट है कि ऐसे अल्पविकसित देशो में जहां जनसंख्या की वृद्धि दर अत्यन्त ही अधिक है वहीं इस स्थिति को प्राप्त करना कठिन होगा तथा इसे प्राप्त करने में बहुत अधिक समय लगेगा।

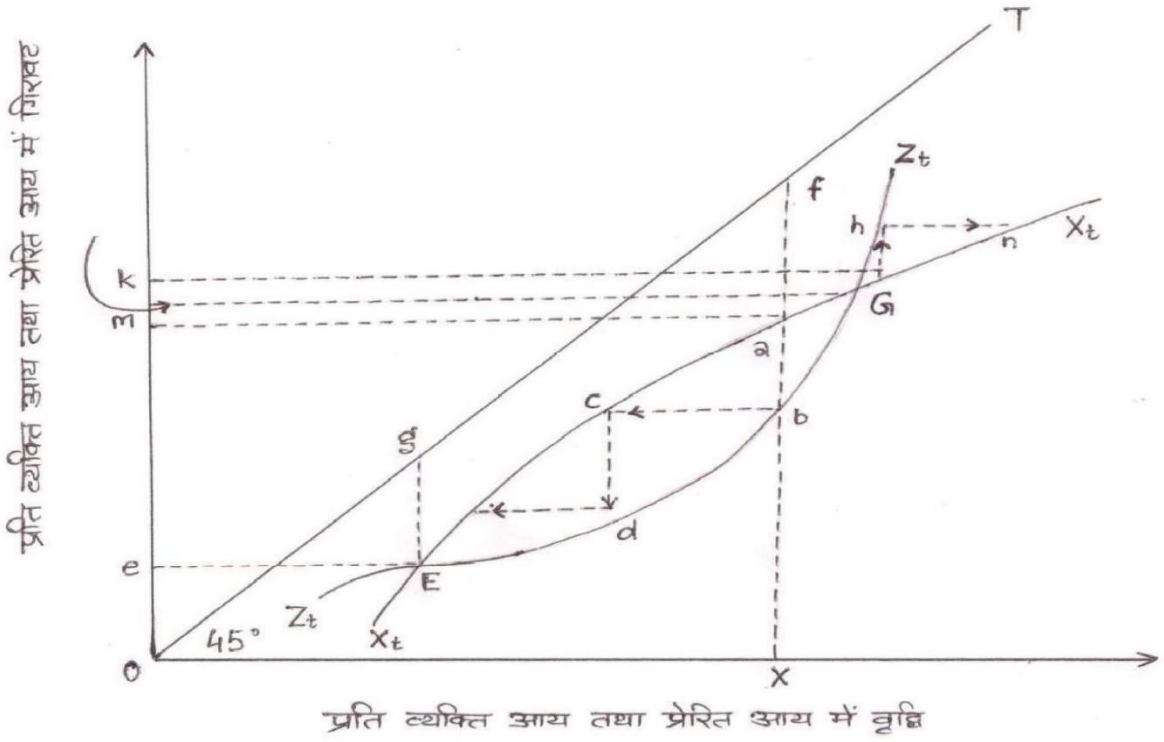

चित्रः–4.3

रेखाचित्र 4.3 में 45 Degree रेखा OT प्रेरित आय में वृद्धि = प्रेरित आय में कमी प्रदर्शित करती है। इस रेखा मे विचलन के आधार पर प्रेरित आय में वृद्धि तथा प्रेरित आय में कमी प्रदर्शित किया गया है। X_t X_t सभी आय वर्धक शक्तियों तथा Zt Zt सभी आय अवसादी शक्तियों को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भिक संस्थिति की स्थिति E पर है। जबकि दोनों शक्तियां परस्पर बराबर हैं। आय वर्धक शक्ति E है तथा आय अवसादी शक्ति भी कम ही है। यहां इसका उल्लेख आवश्यक है कि OT से इन वक्रों पर लम्बीय अन्तर इन शक्तियों की माप प्रदर्शित करता है आधार अक्ष से इन पर लम्बीय दूरी इसे प्रदर्शित नही करता है जैसा हम सामान्यता करते हैं।

अब यदि प्रारम्भिक समय के प्रति व्यक्ति आय Om हो तो आय वर्धक शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में fa की वृद्धि लायेगी पर इस स्थिति में आय में कमी लाने वाली शक्तियां प्रति व्यक्ति आय में fb की कमी लायेगी गिरावट का पथ ˙ b c d.... से दिखाया गया है और पुनः E पर संस्थिति की स्थिति कायम हो जायेगी। पर यदि प्रति व्यक्ति आय व हो तो जैसा रेखाचित्र से स्पष्ट है OT से Xt पर प्रदर्शित लम्बी दूरी OT से Zt पर प्रदर्शित लम्बी दूरी की अपेक्षा अधिक है फलस्वरूप अर्थव्यवस्था Gh n पथ से विकसित होती हुयी अल्पस्तरीय संस्थिति जाल से बाहर हो जायेगी पर ऐसा तभी होगा जबकि प्रतिव्यक्ति आय का स्तर OI एक बार पा लिया जाये।

लीबन्स्टीन का यह मत है कि यदि अल्पविकसित देशों के पास पर्याप्त संसाधन नहीं हों तो विदेशों से पूंजी की व्यवस्था की जा सकती है पर यदि साथ ही एक बार में इतना अधिक विनियोग सम्भव नहीं हो कि अर्थव्यवस्था न्यूनम आवश्यक मात्रा को पार कर सके, तो नियोजित ढंग से इसे थोड़े कम प्रयास के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

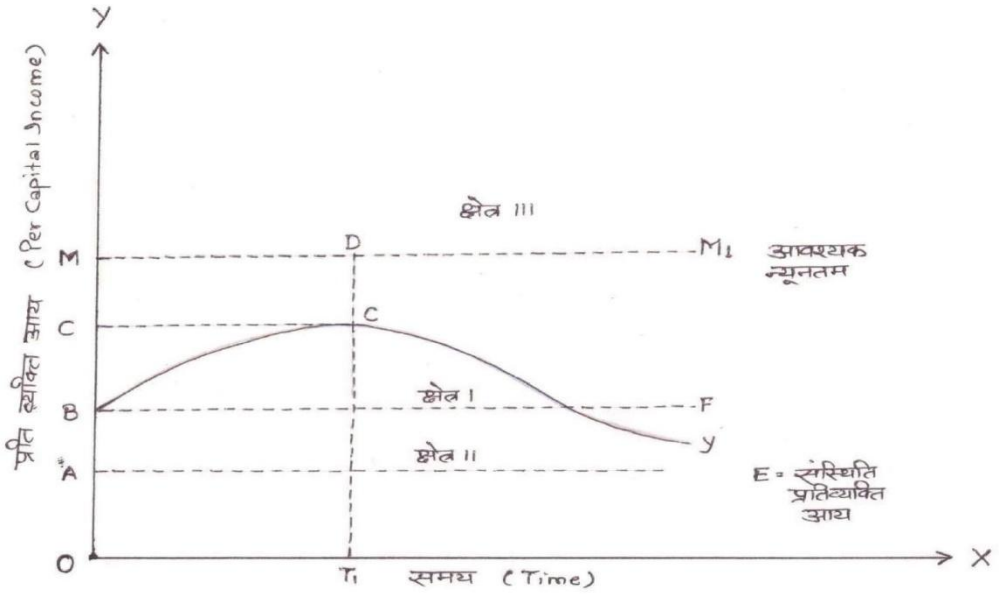

चित्रः—4.4

यदि विनियोग एक बार इतनी प्रचुर मात्रा में कर दिया जाय कि प्रति व्यक्ति का M स्तर (या OM) प्राप्त हो जाय स्वतः पोषित आर्थिक विकास की स्थिति प्राप्त हो जायेगी पर अल्प विकसित देशों के लिए यह अधिक सस्ता तथा कम कष्टप्रद होगा यदि वे अपने उपलब्ध साधनों को दो बार में लगायें पहली बार में प्रतिव्यक्ति आय OB तक पहुंच जाय तथा दूसरी बार में विनियोजन के द्वारा इसमें CD के बराबर वृद्धि ला दी जाये और इस प्रकार MM की प्राप्ति हो जाये।

लीबन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों में पाये जाने वाले गरीबी के दुश्चक्र तथा साहसिकता के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध की बहुत ही प्रभावपूर्ण व्याख्या की। उनके अनुसार इन देशों में साहसियों तथा साहसिक योग्यता की कमी नहीं है। इन देशों की परिस्थितियां उन्हें धानात्मक राशि क्रियाओं के स्थान पर शन्य राशि क्रियायें में लगने के लिए बाध्य करती है। जिनके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के समग्र संसाधनों में कोई वृद्धि नहीं होती है बल्कि साहसिक संसाधन का अपव्यय होता है। ये क्रियाएं अर्थव्यवस्था की उपलब्ध निबल

बचत को प्रयोग में लाती है। लीबन्स्टीन का कहना है कि प्रत्येक साहसिक क्रिया लाभ की प्रत्याश में की जाती है यदि लाभ की आशा कम हो तो सहसी धनात्मक क्रियाओं में नहीं लगेगा और धनात्मक क्रियाओं में न लगने का अर्थ होगा राष्ट्रीय आय के विस्तार में कमी।

लीबन्स्टीन के दृष्टिकोण की प्रमुख बातें इस प्रकार हैं–

1. ऐसी अल्पविकसित अर्थव्यवस्थायें जो अल्पस्तरीय प्रति व्यक्ति आय की संस्थिति जाल फंसी हुई हैं जहां जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि अर्थव्यवस्था को निरन्तर इसी अल्प संस्थिति की स्थिति में बनाये रखती है और बाहर नहीं निकलने देती। ऐसी अर्थव्यवस्थाएं यदि इस जाल से बाहर निकलना चाहती है यह आवश्यक है कि वे इतनी अधिक मात्रा में विनियोजन करें कि प्रति व्यक्ति आय का स्तर जनसंख्या वृद्धि को पीछे छोड़कर विकास की संचयी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये।

2. विनियोजन विदेशी पूँजी घरेलू पूँजी या श्रम के रूपान्तरण के द्वारा प्राप्त हो सकता है।

3. जन्मदर की गिरावट आर्थिक विकास की पूर्ववर्ती शर्त नहीं होगी बल्कि आर्थिक विकास स्वतः जनसंख्या की वृद्धिदर में कमी लायेगा। प्रारम्भ में ऐसा हो सकता है कि मृत्युदर में गिरवट आये और जनसंख्या की वृद्धि दर बढ़े पर अंतिम रूप में निश्चित रूप से जनसंख्या की वृद्धि में कमी आयेगी।

4. संचयी विकास के लिए आय वर्धक शक्तियों का प्रबल होना आवश्यक है।

5. 'न्यूनतम आवश्यक प्रयास की मात्रा वह होगी जहां पहुंचकर अर्थव्यवस्था पुनः अल्पस्तरीय संस्थिति जाल में न आये बल्कि संचयी प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये ।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास के सम्बन्ध में दो प्रश्न यह उठते हैं कि

1. विनियोजन की मात्रा कितनी हो? उसका उत्तर लीबन्स्टीन ने यह दिया कि निवेश की मात्रा इतनी अधिक अवश्य होनी चाहिए कि जो न केवल आय अवसादी शक्तियों का सामना करने के लिए पर्याप्त हो बल्कि आय वृद्धि की कुछ मात्रा पूँजी निर्माण के लिए भी होती रहे (ध्यान रहे पूँजी निर्माण तभी होगा जब उपभोग से आय वृद्धि अधिक होगी)।

2. दूसरा प्रश्न यह है कि क्या निवेश एक बार में ही किये जायें या टुकड़ों में ? लीबन्स्टीन का सुझाव है कि निवेश को टुकड़ों और उन्हें एक दशक में फैलाकर करना अधिक लाभप्रद होगा। लेकिन ऐसा करते समय यह ध्यान रहे कि निवेश की प्रत्येक डोज से एक निश्चित अवधि में पूर्ण निर्धारित प्रति व्यक्ति आय का स्तर प्राप्त होता रहना चाहिए और निवेश के आखिरी धक्के से देश का आय स्तर आवश्यक न्यूनतम स्तर को अवश्य प्राप्त कर ले। हां! निवेश का हर दूसरा इंजेक्शन पहले इंजेक्शन के प्रभाव के खत्म होने से पूर्व ही लगा देना चाहिए जिससे कि विकास वर्धक श्वेताणुओं को पनपने का पर्याप्त अवसर मिल सके और दम तोड़ते हुए विनाश मूलक कीटाणुओं को सर उठाने का मौका न मिल सके। लीबन्स्टीन का यह भी कहना है कि यदि निवेश की आवश्यक न्यूनतम मात्रा देश मे वर्तमान आय स्तर पर उपलब्ध नहीं है तो विदेशी सहायता का सहारा भी लिया जा सकता है।

आवश्यक न्यूनतम प्रयास की आवश्यकता क्यों ? लीबन्स्टीन ने अल्पविकसित देशों के लिए आवश्यक न्यूनतम प्रयास को निम्न कारणों से आवश्यक बताया है

1. प्रथम कारण, साधनों या निवेशों की अविभाज्यता है। अतः बाहरी बचतें प्राप्त करने के लिए बड़ी मात्रा में निवेश करना जरूरी हो जाता है।

2. संतुलित विकास के लिए भी आवश्यक न्यूनतम प्रयास आवश्यक होता है।

3. लीबन्स्टीन का कहना है कि आर्थिक विकास पुरानी मान्यताओं आस्थाओं विचारों तथा रीति रिवाजों को भेदने से होता है। आवश्यक न्यूनतम प्रयास से कम निवेश करने पर यह संस्थागत रूकावटें नहीं टूटती। क्योंकि पुराने मूल्य और परम्परायें बदलने मे अत्यधिक समय लेती हैं। उन पर तो एक

अचानक और वह भी बड़ी मात्रा मे हमला करना चाहिए ताकि हर नया परिवर्तन किसी नये परिवर्तन को जन्म दे।

4. कभी कभी विकास के परिणाम स्वरूप ही विकास बाधक तत्व उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे आय में थोड़ी वृद्धि होने पर मृत्युदर घटती है किन्तु जनसंख्या बढ़ने लगती है। आय में वृद्धि इतनी अधिक होनी चाहिए कि जन्मदर कम हो जाये और यह तभी संभव है जब निवेश आवश्यक न्यूनतम प्रयास रूप में किये जायें। 5. चूंकि विकास के साथ साथ पूँजी उत्पाद अनुपात घटता जाता है इसलिये यदि निवेश आवश्यक न्यूनतम मात्रा में किया जाय तो आर्थिक विकास तेजी के साथ होगा।

मुख्य आलोचनायें इस प्रकार हैं

1. जनसंख्या वृद्धि दर और मृत्युदर का अवास्तविक सम्बन्ध – इस मॉडल की यह मान्यता है कि जनसंख्या वृद्धि की दर एक निश्चित बिन्दु तक प्रति व्यक्ति आय का वृद्धिमान फलन है और उसके बाद यह आय के हासमान फलन का रूप ले लेता है ठीक नहीं है। इसका कारण जनसख्या में वृद्धि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से नहीं बल्कि मृत्युदर में कमी से होती है और वह कमी चिकित्सा विज्ञान एवं स्वास्थ्य दशाओं में सुधार होने के कारण होती है।

2. प्रति व्यक्ति आय के स्तर और वृद्धि दर का क्रियात्मक सम्बन्ध – प्रो. मिंट का कहना है कि प्रति

व्यक्ति आय के स्तर और वृद्धि की दर में स्थापित किया गया फलनात्मक सम्बन्ध काफी जटिल है और वह इतना सरल नहीं जितना कि लीबन्स्टीन मानते हैं। यह सम्बन्ध आय के वितरणात्मक ढांचे और बचतों को गतिशील करने वाली वित्तीय संस्थाओं की प्रभावी क्षमता पर निर्भर करता है जिसे लीबन्स्टीन ने पूरी तरह से भुला दिया है।

3. मॉडल की आधारभूत मान्यता का दोषपूर्ण होना – प्रो. मिंट लीबन्स्टीन की इस मन्यता से भी सहमत नहीं हैं कि अगर प्रारम्भिक निवेश आवश्यक न्यूनतम आकार से कम हुआ तो जनसंख्या बढ़ जायेगी। उन्होंने कहा कि यह तो एक प्रकार से आय और जनसंख्या के बीच प्रत्यक्ष सह सम्बन्ध स्थापित करने वाली बात है जिसे प्रयोगों द्वारा भी सिद्ध नहीं किया जा सकता।

4. जन्मदर में कमी का कारण प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि नहीं। लीबन्स्टीन का यह सोचना भी भ्रमपूर्ण है कि जन्मदर में कमी इसलिए होती है कि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि आवश्यक न्यूनतम स्तर पर पहुंच जाती है और जनसंख्या वृद्धि से भी आगे निकल जाती है। सच तो यह है कि लीबन्स्टीन के विचार उन्नत देशों के अनुभवों पर आधारित रहे होंगे। जबकि अल्प विकसित देशों में प्रजनन दर की समस्या मुख्यतः सामाजिक व सांस्कृतिक प्रकृति की होती है और इस पर आय वृद्धि की अपेक्षा धर्म, मर्यादा और परम्पराओं का अधिक प्रभाव पड़ता है।

5. समय तत्व की उपेक्षा – इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि इसने समय तत्व पर कोई ध्यान नहीं दिया, जो कि सतत् प्रयासों के लिये अत्यावश्यक है और जिसमें आत्म स्फूर्ति को सुनिश्चित करने के लिये संस्थात्मक एवं उत्पादक ढांचे में आधारभूत परिवर्तन करने आवश्यक होते हैं।

6. परिवार नियोजन सम्बन्धी राजकीय प्रयत्नों की उपेक्षा – लीबन्स्टीन ने जन्म दर को घटाने सम्बन्धी सरकरी प्रयत्नों पर कोई ध्यान नहीं दिया जबकि आज कल प्रत्येक सरकार जनाधिक्य से निबटने के लिये विस्तृत अभियान चालू किये हुए हैं। हमारी दृष्टि में आज कोई भी देश इस बात कि प्रतीक्षा नहीं कर सकता है कि कब प्रति व्यक्ति आय क्रानिक न्यूनतम स्तर से ऊपर उठे ताकि जन्म दर स्वयमेव गिरनी शुरू हो जाए। प्रतीक्षा की इन घड़ियों में हो सकता है कि वह देश जनसंख्या विस्फोट की स्थिति में पहुंच जाये और समस्या सुझलने के बजाय और उलझ जाये।

7. बन्द अर्थव्यवस्था मूलक मॉडल – यह मॉडल आय, बचत तथा विनियोग के विभिन्न स्तरों पर विदेशी पूँजी तथा अन्य बाहय घटकों के प्रभाव का अध्ययन नहीं करता। इस प्रकार यह सिद्धान्त केवल बन्द अर्थव्यवस्था पर लागू होने के कारण अवास्तविक है।

4.1.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. हार्वे लीबिन्सटीन ने किस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया?

क. निम्न सन्तुलन पाश सिद्धानत

ख. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त

ग. प्रबल प्रयास सिद्धान्त

घ. जीवन–निर्वाह सिद्धान्त

2. आवश्यक न्यूनतम प्रयास का विचार किसने दिया?

क. नेल्सन

ख. रोजेन्स्टीन रोडा

ग. मिन्ट

घ. हार्वे लीविन्स्टीन

3. हार्वे लिबिन्स्टीन का कहना है कि अल्पविकसित देशों में थोड़े–थोड़े आर्थिक विकास के प्रयास गरीबी के दुश्चक्र को

क. रोक सकते हैं।

ख. तोड़ नहीं सकते हैं

ग. तोड़ सकते हैं

घ. उपरोक्त में कोई नहीं

4. सत्य/असत्य

1. लीबन्स्टीन ने उद्यमी निवेशकर्ता बचतकर्ता तथा नवप्रवर्तकों को विकास का प्रतिनिधि माना।

2. लीबन्स्टीन ने प्रबल धक्का सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

3. लीबन्स्टीन की प्रसिद्ध पुस्तक Economic Backwardness and Economic Growth है।

4.1.6 सारांश

अपनी पुस्तक में लीबन्स्टीन ने लिखा है कि उसका लक्ष्य नुस्खा बनाना नहीं बल्कि व्याख्या करना तथा समझना है।श परन्तु रोस्टोव की उत्कर्ष की अवस्था की भांति उसके क्रांतिक– न्यूनतम प्रयत्नश सिद्धान्त ने अर्थशास्त्रियों तथा अल्प विकसित देशों में योजना बनाने वालों का ध्यान आकर्षित किया है और वह आर्थिक पिछड़ेपन का नुस्खा समझा जाता है। रोजेन्स्टीन, रोडान के प्रबल प्रयास'' सिद्धान्त के अपेक्षा लीबन्स्टीन सिद्धान्त अधिक वास्तविक है। अल्प विकसित देशों में औद्योगिकरण के प्रोग्राम को एकदम से ''प्रबल प्रयास'' देना असाध्य है जबकि अर्थव्यवस्था को सतत विकास के मार्ग पर लाने के लिए क्रांतिक– न्यूनतम प्रयत्न उचित ढंग से समय – समय पर किया तथा छोटे प्रयत्नों के क्रम में तोड़ा जा सकता है। यह सिद्धान्त प्रजातंत्रात्तक योजना से भी मेल खाता है।

4.1.7 शब्दावली

मांग की अविभाज्यताः यह यूडीसी में बाजारों के छोटे आकार को संदर्भित करता है जो पैमाने को सीमित करता है, उत्पादन का और इसलिए फर्मो की क्षमता का कम दोहन होता है।

विकास दूत – विकास क्रियाओं के संचालक अर्थात् उत्पादक, निवेशक, बचतकर्ता आदि।

P=f(y) –जनसंख्या एवं आय के मध्य प्रतिक्रियात्मक सम्बन्ध

अवसादी शक्ति– आर्थिक विकास में बाधा के रूप में।

झटके– उन ताकतों को संदर्भित करते हैं जो उत्पादन, आय, रोजगार और निवेश आदि के स्तर को कम करते हैं। दूसरे शब्दों में, झटके विकास शक्तियों को कमजोर और निराश करते हैं। विकास की शक्तियों को दबा देते हैं जिससे विकास का पहिया उलट जाता है।

उत्तेजक – उन शक्तियों को संदर्भित करते हैं जो आय, उत्पादन, रोजगार और निवेश आदि के स्तर को बढ़ाते हैं। दूसरे शब्दों में, उत्तेजक विकास शक्तियों को प्रभावित और प्रोत्साहित करते हैं।

'आय सृजनकारी शक्तिया– जो विकास के पहिये को गति देती हैं। उत्तेजक पदार्थों में प्रति व्यक्ति आय को संतुलन स्तर से ऊपर बढ़ाने की क्षमता होती है।

4.1.8 अभ्याय प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. आवश्यक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त
2. हार्वे लीविन्स्टीन
3. तोड़ नहीं सकते हैं
4. सत्य/असत्य
1. सत्य
2. असत्य
3. सत्य

4.1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

प्रो. एम. एल. झिगन (2010) शविकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस, दिल्ली।

प्रो. एस. एन. लाल (2010) आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।

प्रो. एस. पी. सिह (2010) आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन, एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली।

हार्वे लीबेंस्टीन (1960), आर्थिक पिछड़ापन और आर्थिक विकासः आर्थिक विकास के सिद्धांत में अध्ययन, जॉन विली एंड संस।

हार्वे लीबेंस्टीन (1978), सामान्य एक्स–दक्षता सिद्धांत और आर्थिक विकास, ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस।

4.1.10 उपयोगी /सहायक पाठ्य सामग्री

अग्रवाल आर.सी.ः विकास और योजना का अर्थशास्त्र (लक्ष्मी नारायण अग्रवाल) आगरा 2007

तनेजा एम.एल. और मायर आर एम.ः विकास और योजना का अर्थशास्त्र, विशाल प्रकाशन सह–दिल्ली) 2010

बी. हिगिंस : आर्थिक विकास सिद्धांत, समस्याएं और नीतियां

एम.पी.टोडारोः तीसरी दुनिया में आर्थिक विकास

Agarwal R. C.:"Economics of Development and Planning"Lakshmi Narayan Agarwal Agra 2007

Taneja M. L. & Myer R.M. :" Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co-Delhi 2010
B. Higgins : " Economic Development Priciples, problems and policies"-
M. P. Todaro : "Economic Development in third world"
• G. M. Meiter: " Inter Sectoral Relationship in Dual Economy"-

4.1.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लीबन्स्टीन के न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त की आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए?
2. हार्वे लीबन्स्टीन के न्यूनतम क्रान्तिक प्रयास सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए ।
3. क्रांन्तिक न्यूनतम प्रयास सिद्धान्त का वर्णन कीजिए और भारत जैसे विकासशील देश में इसकी प्रासंगिकता बताइए ?

आर्थर लेविस का सिद्धान्त
(Theory of Arthur Lewis)

इकाई का संरचना

4.2.1 प्रस्तावना
4.2..2 उद्देश्य
4.2..3 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त
4.2..3.1 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की अवधारणा
4.2..3.2 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त के तत्व
4.2..3.3 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की श्रेष्ठता
4.2..3.4 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनाएं
4.2..4 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.2..5 सारांश
4.2..6 शब्दावली
4.2..7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.2..8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.2..9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ पाठ्य सामग्री
4.2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.2.1 प्रस्तावना

अल्पविकसित देशों की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करने हेतु विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित माडलों में आर्थर लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त का विशेष स्थान है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की भाँति लेविस ने भी यह माना है कि अल्पविकसित देशों में जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर श्रम की असीमित पूर्ति उपलब्ध होती है। अतः श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर आर्थिक विकास को सम्भव किया जा सकता है।

4.2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्रों में निम्नलिखित की समझ विकसित हो सकेगी–

1. अल्पविकसित देशों के विकास में श्रम की असीमित पूर्ति का क्या योगदान है?
2. लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त क्या है?
3. लेविस का विकास मॉडल किन तत्वों पर आधारित है?
4. लेविस का मॉडल प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के मॉडल से किस प्रकार श्रेष्ठ है?
5. लेविस के विकास मॉडल की किन आधारों पर आलोचना की गई है?

4.2..3 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त

4.2.3.1 आर्थर लेविस का असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की अवधारणा

सन् 1954 में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध लेख श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour)। प्रो. डब्लू आर्थर लेविस (Arthur Lewis) ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डों के दो–क्षेत्रीय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया। लेविस मॉडल को दो–क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल (Dualistic Economy Model)

भी कहा जाता है क्योंकि उसका मॉडल द्वैत– अर्थव्यवस्था – (अ) जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात् कृषि तथा (ब) पूँजीवादी क्षेत्र अर्थात् उद्योग पर आधारित है।

1. दोहरी (द्वैत) अर्थव्यवस्था (Dual Economy) – लेविस अपने मॉडल की व्याख्या एक दोहरी– अर्थव्यवस्था (द्वैत अर्थव्यवस्था (Dual Economy) की मान्यता से करते हैं। इस दोहरी अर्थव्यवस्था में दो क्षेत्र (Sector) हैं (1) कृषि क्षेत्र अथवा जीवन निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र तथा (2) उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र।

इनमें पूँजीवादी क्षेत्र वह है जिसमें पुनरूत्पादनशील पूँजी (Reproducible Capital) का प्रयोग किया जाता है। पूँजी के प्रयोग का नियंत्रण पूँजीपति करता है। यह श्रम की सेवाओं को किराये पर लेता है। लेविस के अनुसार पूँजीवादी क्षेत्र के अन्तर्गत प्लांटेशन तथा खनन भी आ जाते हैं। यहां पूँजीपति श्रमिकों को अपने लाभ के लिए किराये पर लेता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र (अथवा पोषण क्षेत्र अथवा कृषि क्षेत्र) वह क्षेत्र है जिसमें पुनरुत्पादनशील पूँजी का प्रयोग नहीं किया जाता है। इसे घरेलू परम्परागत क्षेत्र (Indigenous Traditional Sector) भी कहा जा सकता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में प्रति व्यक्ति उत्पादन (GNP Per Capita) अथवा प्रतिव्यक्ति आय (Per Capita Income) पूँजीवादी क्षेत्र से काफी कम होती है।

2. असीमित श्रम पूर्ति (Unlimited Supply of Labour) – लेविस विकास मॉडल इस मान्यता पर आधारित है कि जीवन निर्वाह के क्षेत्र में श्रम की असीमित पूर्ति है। इस असीमित श्रम अथवा श्रमाधिक्य (Surplus Labour) को जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी पर किसी दूसरी जगह रोजगार में लिया जा सकता है। यहां श्रमिकों की असीमित पूर्ति का अर्थ है जीवन निर्वाह (अथवा कृषि) क्षेत्र में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता, जीवन निर्वाह मजदूरी से काफी नीचे है जिसके परिणामस्वरुप कृषि क्षेत्र से

श्रमिकों को निकाल लेने पर श्रम के औसत उत्पादन में कमी नहीं आयेगी । लेविस की असीमित श्रम पूर्ति की आवधारणा को रेखाचित्र 4.5 द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। रेखाचित्र में भूमि की स्थिर मात्रा पर श्रम की उत्तरोत्तर अधिक इकाइयां लगायी गयी है।

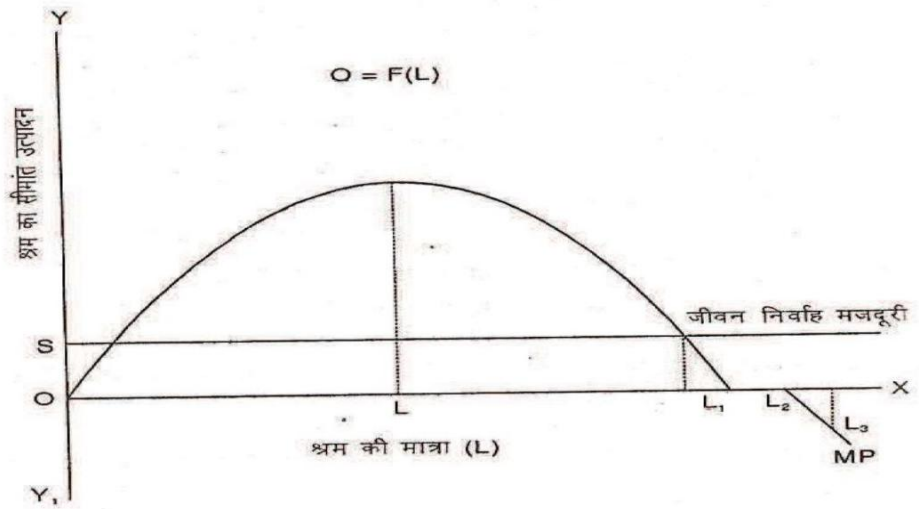

चित्रः–4.5

OL श्रम के बाद श्रम के सीमांत उत्पादन में गिरावट शुरू हो जाती है और जब इसकी मात्रा OL_1 होती है तो इसका मूल्य जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी के बराबर हो जाता है। L_1 L_2 तक श्रम की सीमांत उत्पादकता शून्य है और L_2 के बाद ऋणात्मक हो जाती है। इस प्रकार OL के बाद जितने भी श्रमिक कृषि क्षेत्र में लगेंगे वे सभी अतिरिक्त श्रमिक होंगे। प्रो. लेविस के अनुसार कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त श्रमिकों (रेखाचित्र 4.5 में OL के बाद श्रमिकों) की सेवाओं को उद्योगपति जीवन निर्वाह मजदूरी के बराबर अथवा इससे कुछ अधिक देकर किराये परप्राप्त कर सकता है। उद्योगपति (अथवा पूँजीपति) दी हुई मजदूरी पर जितने श्रमिक चाहे उतने किराये पर ले सकता है। औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति की लोच पूर्णतया लोचदार (Perfectly Elastic) होगी।

4.2.3.2 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त के तत्व

लेविस मॉडल का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है

1. केन्द्रीय समस्याः श्रमशक्ति को एकत्र करना (Central Problem: Collection of Labour Force) – लेविस ने अपना मॉडल इस मान्यता से प्रारम्भ किया है कि अल्प–विकसित देशों में प्रचलित मजदूरी की दरों पर श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार होती है। श्रम की यह असीमित पूर्ति अर्थव्यवस्था के निर्वाह क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक मात्रा में लगे श्रमिकों की कृषि पर बढ़ती हुई निर्भरता एवं अदृश्य बेरोजगारी के रूप में देखी जा सकती है।

श्रम–शक्ति को एकत्र करने के लिए निम्न उपाय किये जाते हैं।

(अ) सर्वप्रथम अर्द्धविकसित देशों में काम न करने वाली महिलाओं को श्रमिकों की पूर्ति में सम्मिलित करना होगा। बहुत–सी महिलाएं गृह–कार्यों में लगी रहती हैं परंतु उनकी क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है।

(ब) हमें उन व्यक्तियों को भी रोजगार में लगाना होगा जो अदृश्य रूप से बेरोजगार हैं या अर्द्ध–बेरोजगारी से पीड़ित हैं तथा जो छोटे व्यापारियों घरेलू और वाणिज्यिक सेवकों के रूप में कार्य कर रहे हैं।

(स) इसी श्रम–शक्ति में देश की बढ़ती हुई जनसंख्या से फलित अतिरिक्त श्रम शक्ति को भी सम्मिलित किया जा सकता है।

परंतु उपर्युक्त सभी व्यक्ति अकुशल श्रम की श्रेणी में आते हैं जबकि आर्थिक विकास और पूँजीवादी क्षेत्र के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता होती है। इस संबंध में लेविस का कथन है कि कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध ही होता है जिसे अकुशल श्रमिकों की शिक्षा और प्रशिक्षण आदि की सहायता से दूर किया जा सकता है।

2. समस्या का समाधानः श्रमशक्ति का उचित उपयोग (Solution of Problem : Proper Utilization of Labour Force) – अतः अर्द्धविकसित देशों की प्रमुख समस्या इस अतिरिक्त श्रम शक्ति का उचित ढंग से उपयोग करने की है। प्रो. लेविस ने एक अर्थव्यवस्था को दो भागों में बांटा है– पूँजीवादी क्षेत्र और जीवन निर्वाह क्षेत्र। पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है तथा पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है। इसके दूसरी ओर जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है। अतः लेविस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन–निर्वाह–क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर और उन्हें पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर नये उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके।

इस प्रकार निर्वाह – क्षेत्र से बाहर इस अतिरिक्तश्रम–शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

3. पूँजीवादी अतिरेक (Capitalist Surplus) – (पूँजीवादी – मजदूरी तथा जीवन निर्वाह मजदूरी के अन्तर के रूप में) अब प्रश्न यह उठता है कि जीवन निर्वाह मजदूरी दर (जिस पर 'पूँजीवादी–क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम उपलब्ध होता है) का निर्धारण किस प्रकार होता है? संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि यह जीवन–निर्वाह के लिए न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी का स्तर निर्वाह क्षेत्र में प्राप्त होने वाली आय पर निर्भर करता है। सामान्यतः मजदूरी का यह स्तर निर्वाह क्षेत्र में श्रमिक की औसत उपज से कम नहीं हो सकता लेकिन कुछ परिस्थितियों में (जब किसान को लगान देना हो या खाने पर अधिक व्यय होता हो या उनकी दृष्टि में कर के प्रति अधिक मोह हो) मजदूरी दर श्रम की औसत उत्पादन से भी अधिक हो सकती है। प्रो. लेविस के अनुसार 'जीवन निर्वाह' क्षेत्र में श्रमिकों को प्राप्त होने वाली आय पूँजीवादी क्षेत्र में मजदरी की न्यूनतम सीमा को निर्धारित करती है, किन्तु व्यवहार में मजदूरियों का इससे अधिक होना आवश्यक है और पूँजीवादी मजदूरी तथा जीवन निर्वाह मजदूरी में सामान्यतः 30 प्रतिशत या उससे अधिक का अन्तर होता है।

4. पूँजीवादी क्षेत्र में मजदूरी की दर के ऊंचे होने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं।

क. निर्वाह क्षेत्र या पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि होने के परिणामस्वरूप वास्तविक आय में वृद्धि होने के कारण श्रमिकों के द्वारा पूँजीवादी क्षेत्र में काम करने के लिए अधिक मजदूरी की मांगा जाना है।

ख. निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हस्तांतरित करने पर यदि उत्पादन की मात्रा में कमी नहीं होती है तो उस क्षेत्र में बचे कार्यरत श्रमिकों की औसत वास्तविक आय में वृद्धि के कारण पूँजीवादी क्षेत्र में हस्तांतरित होने वाले श्रमिक वर्ग द्वारा भी अधिक मजदूरी पर जोर दिया जाना ।

ग. जीवन–स्तर की बढ़ती हुई लागतों और मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण सेवायोजकों द्वारा वास्तविक मजदूरी में वृद्धि कर देना।

घ. राज्य द्वारा श्रमसंघों को प्रोत्साहन देना जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग की सौदा करने की शक्ति में वृद्धि हो जाना।

इस प्रकार पूँजीवादी मजदूरी की तुलना में पूँजीवादी क्षेत्र की ऊंची सीमांत उत्पादकता के परिणाम स्वरूप ही पूँजीवादी अतिरेक उत्पन्न होता है।

5. पूँजी निर्माण पूँजीवादी अतिरेक पर निर्भर करता है (Capital Formation depends upon Capitalists Surplus) – पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरेक श्रम की सीमांत उत्पादकता उसकी जीवन निर्वाह मजदूरी एवं पूँजीवादी मजदूरी दोनों से अधिक होती है जिसके परिणामस्वरूप पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त आय या अतिरेक का उदय होता है। इस अतिरेक को नयी परिसम्पत्तियों में निवेश करने पर पूँजी का निर्माण होता है जिससे अधिक लोगों को रोजगार पर लगाया जाता है। इस क्षेत्र में जैसे–जैसे रोजगार बढ़ता जाता है वैसे–वैसे पूँजीवादी अतिरेक भी बढ़ता जाता है और उसके साथ ही साथ पूँजी निर्माण अर्थात् आर्थिक विकास का चक्र शुरू हो जाता है। यह प्रक्रिया उस समय तक चलती रहती है जब तक कि कुल अतिरिक्त श्रम को रोजगार प्राप्त नहीं हो जाता, पूँजी श्रम अनुपात नहीं बढ़ जाता और श्रम की पूर्ति लोच रहित नहीं बन जाती। इस प्रकार लेविस के अनुसार आर्थिक विकास का मूल्य पूँजी निर्माण के लिए आवश्यक पूँजीवादी अतिरेक के उत्पन्न होने पर उसके पुनर्निवेश में निहित है। इस प्रक्रिया को रेखाचित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 4.6 में X अक्ष पर श्रमिकों की संख्या एवं Y अक्ष पर मजदूरी की दर व सीमांत उत्पादकता को दर्शाया गया है।

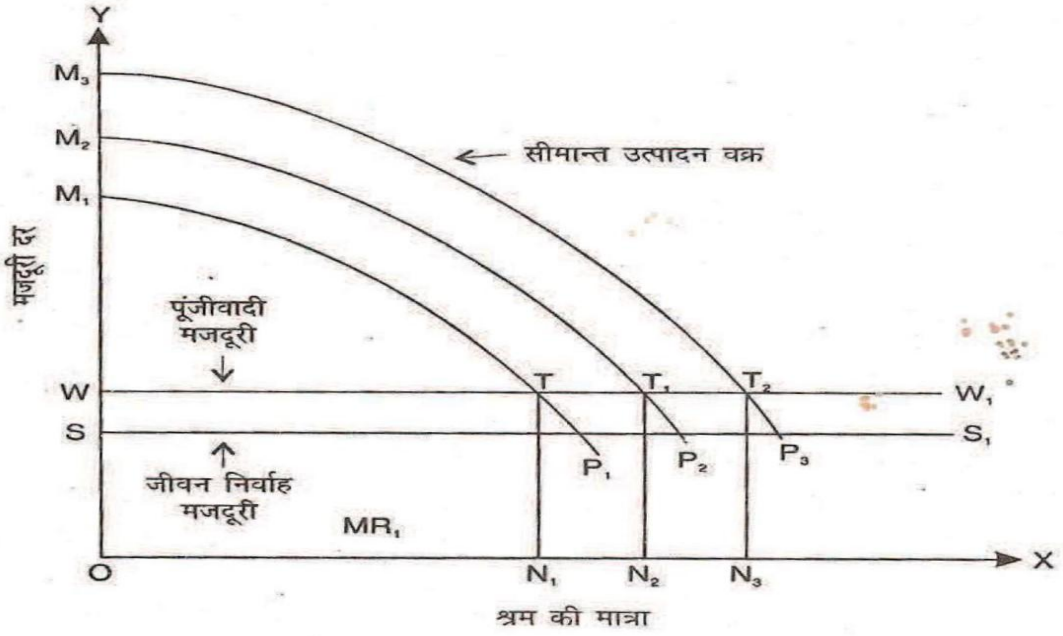

चित्रः–4.5

कृषि क्षेत्र में व्यापक बेरोजगारी व अदृश्य बेरोजगारी पाये जाने के कारण पूँजीवादी या औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की पूर्ति पूर्णतया लोचदार है। अतः औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम पूर्ति वक्र WW है जो Y अक्ष के समानांतर एक सीधी रेखा के रूप में दर्शाया गया है। मजदूरी की प्रचलित दर (पूँजीवादी मजदूरी) OW कृषि में प्रचलित जीवन निर्वाह स्तरीय मजदूरी OS से थोड़ी अधिक है।

उद्योगों में पूँजीपति लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य से कार्य करते हैं और इस प्रकार वे दी हुई मजदूरी OW को श्रम की सीमांत उत्पादकता के बराबर करेंगे। जब मजदूरी की दर OW है तो सीमांत उत्पादकता वक्र M P उसे T बिन्दु पर काटती है जो यह प्रदर्शित करती है कि इस बिन्दु पर मजदूरों की सीमांत उत्पादकता मजदूरी दर के बराबर है। अतः जब मजदूरी की दर OW है तो पूँजीपति ON_1 श्रमिकों की मांग करेंगे और रोजगार उपलब्ध करायेंगे। श्रमिकों की ON_1 मात्रा से कुल औद्योगिक उत्पादन $OM_1 TN_1$ के बराबर है तथा मजदूरी का भुगतान $OWTN_1$ के बराबर होगा। अतः WM_1 T क्षेत्र के बराबर पूँजीपतियों को लाभ प्राप्त होगा। इन लाभों के विनियोग से अधिक पूँजी निर्माण होगा। अधिक पूँजी के उपलब्ध होने पर श्रम का सीमांत उत्पादन (MP) वक्र दायीं ओर विवर्तित होकर M_2P_2 होजायेगा परन्तु मजदूरी की दर पूर्ववत् OW रहने पर श्रमिकों की प्रयुक्त मात्रा बढ़कर ON हो जायेगी और पूँजीपतियों का लाभ बढ़कर WM_2T के बराबर हो जायेगा। इन लाभों को पूँजीपति अधिक पूँजी निर्माण के लिए प्रयोग करेंगे। इस प्रकार आगे भी लाभों के विनियोग से अधिक पूँजी निर्माण होगा। Mp वक्र दायीं ओर विवर्तित होता जायेगा जिससे रोजगार व उत्पादन में वृद्धि होती जायेगी। यह क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि श्रम – अतिरेक (Labour Suplu) समाप्त नहीं हो जाता । श्रम–अतिरेक की समाप्ति के पश्चात मजदूरी दर बढ़ने लगेगी जिससे उद्योगों में अर्जित लाभ घटने लगेंगे और लाभ की दर कम होती जायेगी। फलतः विकास की गति घट जायेगी परन्तु लेविस के अनुसार तब तक विकासशील देशों में खुली बेरोजगारी तथा अदृश्य बेरोजगारी समाप्त हो चुकी होगी।

6. अर्जित लाभ एवं पूँजी निर्माण (Earned Profit and capital Formation) – इस प्रकार प्रो. लेविस ने अपने विकास माडल में पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ में से ही पूँजी निर्माण की सम्भावना को स्पष्ट किया है। लेविस के अनुसार पूँजीपतियों द्वारा अर्जित लाभ (Earned Profit) से पूँजी निर्माण किया जायेगा और पूँजी निर्माण आर्थिक विकास को बढ़ावा देगा। इस तरह अल्पविकसित देशों में श्रम की असीमित पूर्ति विकास की बाधा न हो कर पूँजी निर्माण में सहायक सिद्ध होती है। प्रो. लेविस के अनुसार श्आर्थिक विकास के सिद्धान्त में केन्द्रीय समस्या उस प्रक्रिया को समझने की है जिसके द्वारा अपनी राष्ट्रीय आय का 4 प्रतिशत या 5 प्रतिशत बचत तथा विनियोग करने वाला एक समाज किस प्रकार अपने आपको 12 प्रतिशत से 15 प्रतिशत अथवा इससे भी अधिक ऐच्छिक बचत करने वाले समाज में बदल सकता है।श

7. राज्य तथा निजी पूँजीपतियों की भूमिका (Role of State and Private Capitalists) – प्रो. लेविस के अनुसार राज्य पूँजीपतियों (अर्थात् सार्वजनिक उपक्रम एवं सरकार) और देशी निजी पूँजीपतियों (Indigenous Private Capitalists) को बढ़ावा दिया जाना चाहिए क्योंकि पूँजी निर्माण का कार्य केवल इनके द्वारा अर्जित लाभों में से ही हो सकता है। यद्यपि इनमें राज्य पूँजीपति के निर्माण की क्षमता अधिक होती है क्योंकि वह समाज से अतिरिक्त कराधान अथवा अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण के द्वारा अधिक राजस्व (Revenue) जुटा पाने में सफल रहता है। लेविस के अनुसार जब पूँजी के उत्पादक सम्बन्धी उपयोग के अवसर तेजी से बढ़ते हैं तो पूँजी अतिरेक पूँजीनिर्माण व आर्थिक विकास भी क्रमशः तेजी से बढ़ते हैं। प्रो. लेविस के अनुसार अर्द्धविकसित देशों में पूँजी की मात्रा कम होती है क्योंकि

क. अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं, क्योंकि पूँजीवादी लाभ का राष्ट्रीय आय में अनुपात कम होता है। उदाहरण के लिए वेतन व मजदूरी प्राप्त करने वाला वर्ग मुश्किल से राष्ट्रीय आय का 3 प्रतिशत या 4 प्रतिशत भाग ही बचा पाता है।

ख. अर्थव्यवस्था की बचतें कम होती हैं क्योंकि बड़े व्यापारी, राजघराने, भूपति आदि उत्पादक निवेश करने के बजाय अनावश्यक उपभोग में अधिक रूचि रखते हैं।

ग. अर्द्धविकसित देश में उत्पादन निवेश के कम होने में निकासी (Withdrawls) बहुत महत्वपूर्ण है। व्यवहार में इसे काली मुद्रा (Black Money) समानांतर अर्थव्यवस्था (ParallelEconomy) आर्थिक भ्रष्टाचार (Economic Corruption) आदि नामों से पुकारा जाता है। अर्थशास्त्री इसे पूँजी रिसाव (Capital Leakage) कहते हैं। यह पूँजी उत्पादन कार्य में न लग कर विलासिता व शान–ओ–शौकत जैसे उपभोग कार्य में लगी रहती है।

अतः अर्द्धविकसित अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक है कि

(i) जो अधिक बचत कर सकते हैं उनके द्वारा अर्थव्यवस्था में बचत क्षमता को बढ़ाया जाये तथा

(ii) सम्पूर्ण बचत को उत्पादन कार्य में विनियोग किया जाये। बचत का कोई भी अंश पूँजी रिसाव के रूप में उपभोग में न लगने दिया जाये।

यह उल्लेखनीय है कि राज्य पूँजीपति की पूँजी संचय की क्षमता निजी पूँजीपति की अपेक्षा अधिक होती है। कारण यह है कि राज्य पूँजीवादी क्षेत्र के लाभ का उपयोग करने के अतिरिक्त निर्वाह क्षेत्र में से कुछ न कुछ अतिरेक कराधान के रूप में प्राप्त करने में सफल रहता है। इस प्रकार लेविस का मत है कि जब पूँजी के उत्पादकीय उपयोग के अवसर तीव्र गति से बढ़ते हैं तो अतिरेक भी तेजी से बढ़ता है और उसके साथ–साथ पूँजीपति वर्ग का भी विकास होने लगता है।

8. बैंक साख द्वारा पूँजी निर्माण (Capital Formation through bank Credit) – लेविस का विचार है कि यद्यपि अर्द्धविकसित देशों में पूँजीवादी क्षेत्र में उपर्युक्त प्रक्रिया द्वारा पूँजी निर्माण हो सकता है किन्तु साख–सृजन (मुद्रास्फीति) द्वारा भी पूँजी निर्माण में योगदान लिया जा सकता है और उत्पादन तथा

रोजगार का स्तर बढ़ाया जा सकता है। लेविस का मत है कि यद्यपि इससे मुद्रा प्रसारिक प्रवृत्तियों को जन्म मिल सकता है परन्तु दीर्घकाल में इससे कोई हानि नहीं होगी क्योंकि पूँजी निर्माण के लिए मुद्रा– प्रसार स्वयं विनाशक या समाप्त हो जाने वाला (Self Liquidating) होता है। इसके उन्होंने निम्न कारण बतायेः

(अ) प्रारंभिक अवस्था में आय तो बढ़ेगी किंतु उपभोग वस्तुओं का उत्पादन प्रारंभ होने से मूल्य गिरने प्रारंभ हो जायेंगे।

(ब) राज्य की करारोपण से आय बढ़ जायेगी और सरकार को बाद में हीनार्थ प्रबंधन नहीं करना पड़ेगा।

9. विकास प्रक्रिया का अंत (End of Growth Process) – इस प्रकार ज्यों–ज्यों पूँजी निर्माण होता जाता है उत्पादन और रोजगार में वृद्धि होती जाती है जिसके परिणामस्वरूप लाभ की मात्रा में वृद्धि होती है जिन्हें विनियोजित करके पुनः पूँजी निर्माण को बढ़ाया जा सकता है। इसी प्रकार आर्थिक विकास का क्रम भी चलता रहता है। परंतु विकास की यह प्रक्रिया अनिश्चित काल तक नहीं चल सकती है। लेविस के अनुसार विकास की यह प्रक्रिया निम्न परिस्थितियों में रूक जाती है।

क. जब पूँजी निर्माण के परिणामस्वरूप अतिरिक्त श्रम नहीं बचते।

ख. जबकि पूँजीवादी क्षेत्र का विस्तार इतनी तीव्रगति से हो जिससे पिछड़े प्राथमिक क्षेत्र या निर्वाह क्षेत्र में जनसंख्या बहुत कम रह जाने से इसकी सीमांत उत्पादकता बढ़ जाये जिसके फलस्वरूप निर्वाह क्षेत्र और पूँजीवादी क्षेत्र दोनों में मजदूरी का स्तर ऊंचा हो जाये।

ग. जबकि निर्वाह क्षेत्र में उत्पादन की नयी प्रविधि अपनायी जाये जिससे पूँजी क्षेत्र में भी वास्तविक मजदूरी बढ़ जाये।

4.2.3.4 असीमित श्रम पूर्ति सिद्धांत की आलोचानाएं

प्रो. लेविस के विकास मॉडल की निम्न आधारों पर आलोचनाएं की जाती हैं।

1. पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम का स्थानान्तरण सरल नहीं है (Transfer of surplus labour to capitalist Seactor is not easy) लेविस के मॉडल को कार्यान्वित करने में जो महत्वपूर्ण कठिनाई आती है वह यह है कि निर्वाह क्षेत्र से पूँजीवादी क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम–शक्ति का स्थानान्तरण सरल नहीं है क्योंकि अर्द्धविकसित देशों में जाति व धर्म के बन्धनों के कारण एक ओर तो व्यावसायिक गतिशीलता कम रहती है और दूसरी ओर भाषा आवास की समस्या, उत्साह की कमी, स्थान व वातावरण से प्रेम आदि के कारण भौगोलिक गतिशीलता भी कम रहती है।

2. जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी सम्भव नहीं है।(Wage equal to subsistence level is not possible) आज जब हम कल्याणकारी समाज की स्थापना की बात करते हैं और श्रम आंदोलन व श्रम संघ सुदृढ़ होते जा रहे हैं, सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया में श्रमिक–जीवन निर्वाह मजदूरी पर कार्य नहीं करेगा। वह भी बढ़ती हुई महंगाई के तदनुरूप अपनी मजदूरी बढ़ाने की मांग करेगा और बढ़ते हुए लाभ में अपना हिस्सा मांगेगा। इन परिस्थितियों में जीवन निर्वाह के बराबर मजदूरी देते रहकर पूँजी निर्माण करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।

3. उचित प्रशिक्षण (Proper training) प्रो. लेविस के सिद्धांत का आधार यह है कि अर्द्धविकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में अकुशल श्रम–शक्ति होती है और कुशल श्रमिकों का अभाव एक अस्थायी गतिरोध उपस्थित करता है जिसे श्रमिकों के प्रशिक्षण आदि के द्वारा किया जा सकता है। वास्तव में पर्याप्त मात्रा में

श्रम–शक्ति के उचित प्रशिक्षण आदि में काफी समय लगता है। इसलिए कौशल और तकनीकी श्रमिकों का अभाव एक बहुत बड़ी कठिनाई उपस्थित करता है।

4. साहसी वर्ग का अभाव (Lack of entrepreneur class) इस सिद्धांत में यह मान लिया गया है कि अल्प–विकसित देशों में पर्याप्त मात्रा में पूँजीपति वर्ग और साहसी वर्ग मौजूद रहते हैं। परन्तु वास्तव में अधिकांष अर्द्धविकसित देशों में इनका सर्वथा अभाव रहता है और जब ये साहसी नहीं होंगे तो अतिरेक श्रम–शक्ति का उपयोग करके विकास करना सम्भव नहीं होगा।

5. विनियोग गुणक क्रियाशील न होना (Not functioning of multiplier); लेविस ने अपने

मॉडल में ऐसे पूँजीपतियों की कल्पना की है जो अधिक लाभ कमाकर उसे पुनः विनियोजित करके पूँजी का संचय करते हैं। इसका अर्थ यह है कि यहां विनियोग गुणक क्रियाशील रहता है किन्तु वस्तुतः अर्द्धविकसित देशों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता।

6. बचतकर्ताओं की गलत व्याख्या (Wrong interpretation of savers) लेविस की यह धारणा

कि बचत केवल अधिक आय वाले लोग (पूँजीवादी क्षेत्र के लोग) ही करते हैं गलत है। कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं। योजना आयोग के एक अध्ययन के अनसार भारत में 53 प्रतिशत भाग घरेलू बचत से प्राप्त होता है। अतः कम आय वाले लोग भी बचत करते हैं।

7. विषमताओं को बढ़ावा (Encouragement to disparity); प्रो. कुजनेट्स का विचार है कि लेविस का मॉडल स्वीकार करने पर अर्द्धविकसित देशों में आय का वितरण और भी असमान हो जायेगा। मायर एवं बाल्डविन का भी कथन है कि आय की असमानता उत्पादक विनियोग में प्रत्याशा से कहीं कम वृद्धि कर पाती है। अतः आय वितरण की असमानता उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती।

8. मॉडल की अव्यावहारिकता (Impracticability of model) प्रो. ए.एन. खुसरो का विचार है कि लेविस ने अदृश्य बेरोगारी के रूप में सम्भाव्य बचतों का उपयोग करके औद्योगीकरण की जो नीति तैयार की है वह पूर्णतया अव्यावहारिक है क्योंकि इस प्रक्रिया में अनेक ऐसे रिसाव हैं जो सदैव रिसते रहते हैं। जैसे–पूर्ति का मूल्य बेलोचदार होना। कृषकों व व्यापारियों द्वारा स्टाक जमा करने की प्रवृत्ति का पाया जाना इत्यादि।

9. पूँजीवादी स्फीतिकारी प्रभाव की अस्थायी प्रकृति (Temporary nature of capitalist inflationary effect) लेविस का यह तर्क कि पूँजीवादी क्षेत्र में मूल्य वृद्धि अस्थायी होती है और इसका अन्त स्वजनित घटकों से स्वतः होता है, गलत है।

10. श्रम की सीमांत उत्पादकता का शून्य न होना (Marginal productivity of labour not zero); यह कहना ठीक नहीं है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र में श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता शून्य अथवा नहीं के बराबर होती है। यदि ऐसा होता तो जीवन निर्वाह मजदूरी भी शून्य होनी चाहिए थी किन्तु ऐसा नहीं है इसलिए शून्य सीमांत उत्पादकता की मान्यता अवास्तविक है।

11. सीमित क्षेत्र (Limited scope) इस सिद्धांत का क्षेत्र सीमित है क्योंकि यह सिद्धांत अर्द्धविकसित देशों में असीमित मात्रा में श्रम की पूर्ति पर आधारित है। जबकि दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका के कई देशों में ऐसी परिस्थितियां नहीं पायी जाती हैं।

12. अकुशल कर प्रशासन (Inefficient tax administration) लेविस का यह कथन कि कराधान बढ़ती हुई आय को इकट्ठा करेगा, माना नहीं जा सकता क्योंकि अल्पविकसित देशों में कर प्रशासन इतना कुशल और विकसित नहीं होता कि वह पूँजी–संचय के लिए पर्याप्त मात्रा में कर इकट्ठा कर सके।

4.2..4 अभ्यास हेतु प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो .....का प्रयोग नहीं करता है।

क. पुनरूत्पादकीय पूँजी

ख. पूँजी–संचय

ग. असन्तुलित विकास

घ औद्योगिक विकास

2. लेविस का 'श्रम की असीमित पूर्ति से आर्थिक विकास (Economic Development with Unlimited Supplies of Labour) नामक प्रसिद्ध लेख कब प्रकाशित हुआ?

क. 1950

ख. 1967

ग. 1964

घ. 1954

3. लेविस की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम बताइए।

क. Dualistic Economy Model

ख. Theory of Economic Development

ग. Theory of Economic Population Growth

घ. Theory of Economic Growth

4. आर्थर लेविस को अर्थशास्त्र का नोबल पुरस्कार किस वर्ष में दिया गया।

क. 1971

ख. 1972

ग. 1973

घ. 1974

5. लेविस ने अर्थव्यवस्था को कितने क्षेत्रों में बांटा हैं?

क. 05

ख. 04

ग. 02

घ. 03

4.2.5 सारांश

प्रो. डब्लू आर्थर लेविस (W- Arthur Lewi) का श्रम की असीमित पूर्ति मॉडल बहुत ही स्पष्ट एवं सरल शब्दों में अल्पविकसित देशों की विकास प्रक्रिया की व्याख्या करता है। लेविस ने प्रतिष्ठित आर्थिक विकास के मॉडल को भारत जैसे श्रम बाहुल्य वाले देशों की विकास प्रक्रिया पर लागू किया और रिकार्डो के दो–क्षेत्रीय विकास मॉडल को वर्तमान विकासशील देशों की स्थिति में सार्थक बताया।

लेविस मॉडल को दो–क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल (Dualistic Economy Model) भी कहा जाता है क्योंकि यह मॉडल द्वैत–अर्थव्यवस्था–

(अ) जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थात् कृषि तथा

(ब) पूँजीवादी क्षेत्र अर्थात् उद्योग पर आधारित है। पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग करता है तथा पूँजीपति को उसके प्रयोग के लिए भुगतान करता है। इसके दूसरी ओर जीवन निर्वाह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है। अपने दो–क्षेत्रीय या द्वैत अर्थव्यवस्था मॉडल द्वारा लेविस ने यह सिद्ध किया है कि अल्पविकसित देशों में श्रम असीमित पूर्ति विकास की बाधा न हो कर पूँजी निर्माण में सहायक होती है। श्रम को निर्वाह क्षेत्र से हटाकर पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर आर्थिक विकास को सम्भव किया जा सकता है।

अतः लेविस के मतानुसार आवश्यकता इस बात की है कि जीवन निर्वाह क्षेत्र से श्रमिकों को हटाकर और उन्हें पूँजीवादी क्षेत्र में लगाकर नये उद्योगों की स्थापना की जाये या वर्तमान उद्योगों का विस्तार किया जाये ताकि आर्थिक विकास की गति तीव्र हो सके। इस प्रकार निर्वाह–क्षेत्र से बाहर इस अतिरिक्त श्रम–शक्ति के लिए रोजगार की व्यवस्था करना राष्ट्रीय आय के बढ़ाने का अचूक साधन है।

निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त अनेक आलोचनाओं के होते हुए भी श्रम की असीमित पूर्ति वाले अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास की प्रक्रिया में लेविस के माडल की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता है।

4.2.6 शब्दावली

द्वैत अर्थव्यवस्था– दोहरी या द्वैत अर्थव्यवस्था वह है जिसमें दो क्षेत्र होते हैं प्रथम कृषि क्षेत्र अथवा जीवन– निर्वाह क्षेत्र अथवा पोषण क्षेत्र तथा द्वितीय उद्योग क्षेत्र अथवा पूँजीवादी क्षेत्र अथवा आधुनिक विनिमय क्षेत्र। ऐसी अर्थव्यवस्था में जहाँ कुछ क्षेत्रों में पूँजी गहन तकनीक का प्रयोग होता है वहीं साथ ही उन्हीं क्षेत्रों या अन्य क्षेत्रों में परम्परागत व श्रम गहन तकनीक का भी प्रयोग हो रहा होता है। पूँजीवादी क्षेत्र – पूँजीवादी क्षेत्र अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है।

जीवन–निर्वाह क्षेत्र – यह अर्थव्यवस्था का वह भाग होता है जो पुनरूत्पादकीय पूँजी का प्रयोग नहीं करता है। जीवन निर्वाह क्षेत्र में पूँजीवादी क्षेत्र की अपेक्षा प्रति व्यक्ति उपज कम होती है।

काली मुद्रा – ऐसा धन जिसकी उत्पत्ति अवैधानिक गतिविधियों के कारण हुई हो। तस्करी करों की चोरी काला–बाजारी आदि ऐसी गतिविधियां हैं जिनको गैर कानूनी माना जाता है। इनसे प्राप्त आय पर कोई भी कर नहीं चुकाया जाता। काले धन से की गई खरीद व बिकी से प्राप्त मुनाफे पर कोई आय कर नहीं चुकाया जाता इस कारण इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है।

पूँजी निर्माण– कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों, कृषि सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढाने हेतु लगाया जाता है।

श्रम की सीमांत उत्पादकता – श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि। प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

4.2..7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. पुनरूत्पादकीय पूँजी
2. सन् 1954 में
3. Theory of Economic Growth
4. 1971

5. 02

4.2..8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

झिंगन एम. एल. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. दिल्ली 2003 सिंह एस0पी0 ''आर्थिक विकास एवं नियोजन'' एस० चन्द एण्ड कं० लि. नई दिल्ली 2010
सिंह योगेश कुमार एवं गोयल आलोक कुमार ''विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन'' राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 2008
सिन्हा वी. सी. आर्थिक संवृद्धि और विकास, मयूर पेपर बैक्स नौएडा 2007

4.2.9 उपयोगी/सहायक पाठ्य सामग्री

Lewis W. Arthur: "Economic Development with Unlimited Supplies of Labour" (1954) Reprinted in A.N. Agrawal and S.P. Singh "The Economics of Underdevelopment" (1969)
Misra S. K. & Puri V. K.: "Economic Development and Planning."
Agarwal R. C. : " Economics of Development and Planning" Lakshmi Narayan Agarwal Agra 2007
Taneja M. L. & Myer R. M. : "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co- Delhi 2010

4.2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए ।
2. लेविस माडल विकास सिद्धान्तों के ऐसे परिवार का प्रतिनिधि है जो असीमित श्रम शक्ति की मान्यता पर आधारित है। व्याख्या कीजिए।
3. अतिरिक्त श्रम की अवधारणा को समझाइए। निम्न आय वाले देशों में श्रम अतिरेक को किस प्रकार पूँजी निर्माण में लगाया जा सकता है ?
4. आर्थर लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की विवेचना अल्पविकसित देशों के संदर्भ में कीजिए।
5. लेविस के असीमित श्रम पूर्ति सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए। इसकी प्रमुख आलोचनाओं का वर्णन कीजिए।
6. असीमित श्रम पूर्ति की परिस्थिति में आर्थिक विकास की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
7. अतिरिक्त श्रम पूर्ति सिद्धान्त को समझाइये और बताइये कि इसे किस प्रकार अल्पविकसित देशों में पूँजी निर्माण में लगाया जा सकता है?

खण्ड–02

इकाई–05

सन्तुलित एवं असन्तुलित वृद्धि का सिद्धान्त

इकाई का संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 संतुलित विकास सिद्धान्त
5.3.1 संतुलित विकास एवं असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा
5.3.2 संतुलित विकास सिद्धान्त की व्याख्या एवं विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचार
5.3.3 संतुलित विकास सिद्धान्त का सार
5.3.4 संतुलित विकास सिद्धान्त की आलोचना
5.4 असंतुलित विकास सिद्धान्त
5.4.1 असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा
5.4.2 सामाजिक उपरि व्यय पूँजी एवं प्रत्यक्ष उत्पादक कियाओं की भूमिका
5.4.3 असंतुलित विकास सिद्धान्त का सार
5.4.4 सिद्धान्त की आलोचनायें
5.5 दोनो सिद्धान्तों की तुलना
5.6 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास की नीति क्या हो इस सम्बन्ध में विकास अर्थशास्त्रियों में एक गहरा मतभेद है। कुछ विचारकों की राय है कि अल्प विकसित देशों को विकास की सन्तुलित पद्धति को अपनाना चाहिए तो दूसरे पक्ष की राय में असन्तुलित विकास नीति आर्थिक विकास के लिये एक श्रेष्ठतम विकल्प है। कहने का अभिप्राय यह है कि देश का आर्थिक विकास सन्तुलित आधार पर किया जाये अथवा असन्तुलित आधार पर यह विचार आज भी एक विवाद ग्रस्त समस्या बनी हुई है। अतः इस दृष्टि से किसी वास्तविक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए यह अधिक उचित होगा कि पहले इन दोनों पद्धतियों की पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाये।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र निम्नलिखित का उत्तर दे सकेगे।

1.संतुलित वृद्धि से क्या तात्पर्य है।

2.विकास में असंतुलन का क्या महत्व है।

3.घरेलू तथा विदेशी व्यापार में संतुलन कैसे होता है।

4.क्या सरकार संतुलित विकास के लिये कोई प्रयास करती है।

5.क्या आर्थिक विकास असंतुलनों की श्रृंखला द्वारा होता है। सामाजिक उपरिव्यय पूँजी क्या होती है।
6.प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं से क्या तात्पर्य है।
7.संतुलित एवं असंतुलित विकास के लाभ–हानि क्या है।

5.3 संतुलित विकास एवं असंतुलित विकास सिद्धान्त

5.3.1 संतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणा

सन्तुलित विकास शब्द का अर्थ अलग अलग अर्थशास्त्रियों ने भिन्न भिन्न ढंग से लगाया है। एक मत के अनुसार सन्तुलित विकास का अर्थ है किसी अर्थ व्यवस्था के सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का समान रूप से विकास करना अर्थात उनमें एक साथ निवेश करना है। इसके विपरीत एक अन्य अर्थ में सन्तुलित विकास उपभोक्ता उद्योगों और पूँजीगत उद्योगों के समान विकास का प्रतीक है। कुछ अन्य लोगों ने सन्तुलित विकास को निर्माणकारी उद्योगों और कृषि उद्योग का सन्तुलित विकास माना है। कुछ लोगों ने उद्योग और कृषि तथा घरेलू क्षेत्र और निर्यातक क्षेत्र में सन्तुलन स्थापित करने के विचार को सन्तुलित विकास का नाम दिया है। एक अन्य विचारधारा के अनुसार परोक्ष उत्पादक निवेश अर्थात आर्थिक व सामाजिक उपरिसुविधाओं में निवेश तथा प्रत्यक्ष उत्पादक निवेश में सन्तुलन और अनुलम्ब तथा क्षैतिज बाहरी बचतों के बीच सन्तुलन बनाए रखने को सन्तुलित विकास की संज्ञा दी है। सिद्धान्त की स्पष्ट व्याख्या करने की दृष्टि से नीचे कुछ परिभाषायें दी जा रही हैं–

प्रो. अलक घोष के शब्दों में सन्तुलित विकास का अर्थ है कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक ही अनुपात में विकास हो ताकि उपभोग और निवेश समान दर से बढ़ सके।श

प्रो. रैडावे के अनुसार श्सन्तुलित विकास का अर्थ अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों में सन्तुलन प्राप्त करना है जैसे उत्पादन तथा उपभोग के ढांचे के बीच उपभोग क्षेत्र तथा पूँजीगत क्षेत्र के मध्य उत्पादन की विभिन्न प्रणालियों के बीच, जिससे कि एक तरफ कच्चे माल व मध्यवर्ती वस्तुओं तो दूसरी तरफ औद्योगिक आवश्यकताओं के बीच सन्तुलन स्थापित हो सके।

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते है कि सन्तुलित विकास से आशय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों तथा उद्योगों का एक साथ विकास करना है जिससे कि विभिन्न क्षेत्रों की उपज के लिये बाजार मिल सके और सन्तुलन उत्पन्न हो पाये।श

सन्तुलित वृद्धि का औचित्य – सन्तुलित विकास का सिद्धान्त मुख्य रूप से समन्वित एवं सजातीय विकास की मान्यता पर आधारित है। हमारी राय में विकास की कोई भी नीति अथवा सिद्धान्त इस बात की अनुमति नहीं देता कि राष्ट्रीय विनियोग केवल निजी लाभ की भावना को दृष्टि में रखकर किये जायें अथवा केवल पूर्व उन्नत उद्योगों में ही किये जायें अथवा केवल उन्हीं उद्योगों में किये जायें जहां सम्भावित प्रतिफल अधिक होने की संभावना है। चूंकि देश के आर्थिक विकास का विचार किसी एक उद्योग या वर्ग विशेष के विकास का प्रश्न नहीं बल्कि देश के सभी उद्योगों और समाज के सभी लोगों के सामूहिक व सजातीय विकास का प्रश्न हैं। इसलिए उपलब्ध क्षेत्रों को पूरक न बनाकर उन्हें परस्पर प्रतियोगी बनाया जाये और आर्थिक असन्तुलनों संघर्षात्मक प्रवृत्तियों व हीन भावनाओं को उत्पन्न न होने दिया जाये। सन्तुलित विकास के सिद्धान्त का यही मुख्य सार है। सन्तुलित विकास की नीति निर्धनता के दुष्चक्र को तोड़ने बाहरी बचतों को उत्पन्न करने अन्तर्राष्ट्रीय विशिष्टीकरण प्राप्त करने उत्पादकता में वृद्धि करने तथा आर्थिक विकास को तीव्रता प्रदान में सहायक होती है।

सन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक – सन्तुलित विकास के सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में एडम स्मिथ तथा फ्रेडरिक लिस्ट का नाम लिया जा सकता है। वर्तमान समय में रोजेन्स्टीन रोडान नकर्से लेविस सिटोवास्की रोस्टोव तथा लिवेन्स्टीन सन्तुलित विकास नीति के प्रमुख समर्थक हैं।

5.4 संतुलित विकास सिद्धान्त की व्याख्या एवं विभिन्न अर्थशास्त्रियों के विचार

सन्तुलित विकास सिद्धान्त से सम्बंधित प्रो. नर्क्से रोडान तथा लेविस द्वारा की गयी व्याख्या इस प्रकार है.

1. प्रो. आर. नर्क्से –

प्रो. नर्क्से के अनुसार अल्प विकसित देशों में निर्धनता का दुश्चक्र कार्यशील रहता है जो आर्थिक विकास में सदैव बाधा पैदा करता है। यह दुश्चक्र मांग और पूर्ति दोनों ही पक्षों में लागू होता है। पूर्ति पक्ष की दृष्टि से अल्प विकसित देशों में बचत करने की क्षमता कम होती है क्योंकि वास्तविक आय का स्तर काफी नीचा होता है। कम वास्तविक आय निम्न उत्पादकता का परिणाम होती है जो स्वयं पूँजी के अभाव के कारण पैदा होती है। इसी प्रकार मांग पक्ष की दृष्टि से अल्प विकसित देशों में विनियोग करने की प्रेरणा शिथिल होती है क्योंकि लोगों द्वारा वस्तुओं की मांग कम की जाती है। वस्तुओं की मांग इसलिये कम होती है क्योंकि क्रय शक्ति कम होती है और क्रय शक्ति निम्न आय के कारण कम होती है जबकि आय का निम्न स्तर स्वयं नीची उत्पादकता का परिणाम होता है। इस प्रकार अल्प विकसित देशों में निम्न उत्पादकता के कारण कम आय – अल्प बचतें तथा अल्प वस्तु मांग के फलस्वरूप – निवेश की प्रेरणा कम होती है जिससे बाजार का आकार सीमित बना रहता है। संतुलित विकास के लिए सरकार द्वारा अर्थव्यवथा का केन्द्रीय नियोजन तथा नियमन करना जरूरी है। यद्यपि नर्कसे का यह मत रहा है कि निजी उद्यम मूल्य प्रेरणाओं (अर्थात कीमत यंत्र) के द्वारा पूरक उद्योगों की स्थापना करके संतुलित विकास को संभव बना सकता।

2. रोजेन्स्टीन रोडान का मत

रोजेन्स्टीन रोडान का मत नर्कसे की भांति रोडान ने भी अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के लिये सन्तुलित विकास पद्धति का समर्थन किया है। परन्तु उनकी विचाराधारा नर्कसे से इस दृष्टि से भिन्न है कि वे सन्तुलित विकास की नीति को एक बड़े धक्के के रूप में लागू करना चाहते हैं। बड़े धक्के से उनका अभिप्राय सभी क्षेत्रों में एक साथ बड़ी मात्रा मे विनियोग करना है।

सन्तुलित विकास के समर्थन में एक अन्य तर्क का सहारा लेते हुए रोडान का कहना है कि आमतौर पर निवेश का सामाजिक सीमान्त उत्पाद (SMP) उसके निजी सीमान्त उत्पाद' (PMP) से भिन्न होता है और जब विभिन्न उद्योगों के एक समूह का उनकी 'सामाजिक सीमान्त उत्पाद' के अनुसार एक साथ नियोजन किया जाता है तो अर्थव्यवस्था की विकास दर निश्चित ही अधिक होती है। इसका कारण यह है कि एक व्यक्तिगत उद्यमी की रूचि केवल निवेश के निजी सीमान्त उत्पाद में होती है और दूसरा उसके लिए 'सामाजिक सीमान्त उत्पाद का सही–सही अनुमान लगाना बहुत कठिन होता है। रोडान ने इस बात की पुष्टि में कि निवेश का सामाजिक सीमान्त उत्पाद उसके निजी सीमान्त उत्पाद से अधिक होता है।

संक्षेप में प्रो. रोडान द्वारा सन्तुलित विकास के पक्ष में दिये जाने वाले तर्क इस प्रकार हैंः– तीव्र –आर्थिक विकास के लिए जरूरी है कि परस्पर पूरक उद्योगों में एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए। सन्तुलित विकास का अर्थ है श्रम प्रधान तकनीक का अपनाया जाना। यह वह तकनीक है जिसमें पूँजी की अपेक्षा श्रम का अधिक प्रयोग किया जाता है। श्रम प्रधान तकनीक के अपनाने से रोजगार के साथ साथ क्रय शक्ति बढ़ती है जिससे प्रभावपूर्ण मांग में वृद्धि होकर आर्थिक विकास तेज हो जाता है। विभिन्न प्रकार के उद्योगों में एक साथ विनियोग करने पर निजी क्षेत्र के लाभ कम हो जायेंगे और

सामाजिक लाभ में वृद्धि हो जायेगी । यही आर्थिक विकास का मुख्य लक्ष्य है। सन्तुलित विकास पद्धति बाहरी बचतों को पैदा करके अन्य क्षेत्रों में निवेश के अवसर बढ़ा देती है।

3. प्रो. आर्थर लेविस के विचार

प्रो. लेबिस ने आर्थिक विकास के लिये सन्तुलित विकास पद्धति को ही उचित ठहराया है। उनके मतानुसार विकास योजनाओं में अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास होना चाहिए जिससे कि कृषि एवं उद्योगों के बीच तथा घरेलू उपभोग हेतु उत्पादन और निर्यात हेतु उत्पादन के बीच एक उचित सन्तुलन बनाये रखा जा सके। हाँ यह धारणा देखनें में जितनी सरल है उतनी ही युक्तिपूर्ण भी और इसे आसानी से झुठलाया नहीं जा सकता।श सन्तुलित विकास का सबसे बड़ा गुण यह है कि विकास के मार्ग में आने वाले विभिन्न प्रकार के अवरोध स्वतः ही समाप्त होने लगते हैं। कुछ लोगों द्वारा सन्तुलित विकास की आलोचना प्रायः इस आधार पर की जाती है। सभी क्षेत्रों में समान दर से विकास करना सम्भव नहीं है। प्रो. लुइस ने इस आलोचना का उत्तर देते हुए कहा है कि सन्तुलित विकास का अर्थ सभी क्षेत्रों का समान विकास नहीं है बल्कि विकास के वे अनुपात हैं जो विकास की भिन्न दरों की मांगों से चालित होते हैं। दूसरे शब्दों में सभी क्षेत्रों का उनकी आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार वांछनीय दर से विकास होना सन्तुलित विकास कहलाता है ।

5.3.3 संतुलित विकास सिद्धान्त का सार

सन्तुलित विकास का अर्थ एक साथ सभी उद्योगों में निवेश करना है। जिस प्रकार शरीर के लिए सन्तुलित भोजन की आवश्यकता होती है ठीक उसी प्रकार तीव्र आर्थिक विकास के लिए सन्तुलित विकास का होना आवश्यक है। सन्तुलित विकास की प्रक्रिया एक बड़े धक्के से आरम्भ की जानी चाहिये। दूसरे शब्दों में सन्तुलित विकास के लिये सभी क्षेत्रों में आवश्यक न्यूनतम निवेश किया जाना जरूरी है। सन्तुलित विकास पूरक उद्योगों का विकास करके बाजार को विस्तृत करता है जिससे बाहरी बचतें प्राप्त होती हैं। यह सिद्धान्त बहुपक्षीय विकास के सिद्धान्त की धारणा पर आधारित है। यह सिद्धान्त मांग की दृष्टि से प्रभावपूर्ण मांग एवं पूरक मांग को उत्पन्न करने और पूर्ति की दृष्टि से विभिन्न प्रकार के उद्योगों के बीच सन्तुलन बनाए रखने की आवश्यकता पर बल देता है। अल्प विकसित देशों में व्याप्त विषैले वृत्तों विशेषकर निर्धनता के दृश्चक्र को तोड़ने के लिये सन्तुलित विकास पद्धति को अपनाया जाना अत्यावश्यक है। ताकि उपलब्ध पूँजी का सर्वोत्तम उपयोग हो सके। सन्तुलित विकास से विदेशी व्यापार को प्रोत्साहन मिलता है। सन्तुलित विकास की पद्धति निजी उपक्रम अर्थव्यवस्था के लिये अधिक उपयोगी है, किन्तु नियोजित अर्थव्यवस्था में इसका महत्व बहुत कम है। सन्तुलित विकास के अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं जिसमें अतिरिक्त बाहरी बचतें, सामाजिक लाभ में वृद्धि, जोखिम में कमी, रोजगार में वृद्धि मूल्य स्थिरता, देश का सर्वांगीण विकास, सन्तुलित विदेशी व्यापार, तथा आर्थिक नियोजन के लिए स्वस्थपूर्ण वातावरण के निर्माण इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

5.3.4 सन्तुलित विकास के सिद्धान्त की आलोचना

जहां सन्तुलित विकास के विचार के समर्थकों की कमी नहीं वहां इसके आलोचकों का भी अभाव नहीं है। प्रो. सिंगर, मार्क्स, फ्लेमिंग, प्रो. एलबर्ट तथा हर्षमैन सन्तुलित विकास सिद्धान्त के मुख्य आलोचक माने जाते हैं। सिद्धान्त की मुख्य आलोचनायें इस प्रकार हैं –

1. अल्प विकसित देशों की सामर्थ्य से बाहरः – सन्तुलित विकास की तकनीक को लागू करने के लिये पर्याप्त पूँजी, तकनीकी ज्ञान, प्रबन्धकीय क्षमता व कुशल श्रम शक्ति की आवश्यकता होती है। जबकि

इन सभी साधनों का अल्प विकसित देशों में अभाव होता है। ऐसी दशा में एक तरफ पर्याप्त साधनों के उपलब्ध होने की शर्त और दूसरी ओर उनका अभाव स्वयं में ही एक विरोधाभास है। अर्थात् एक असंगत समीकरण है। इससे भी अजीब बात तो यह है कि जो देश (अल्प विकसित) खण्डगत विकास करने की स्थिति में नहीं होता वह सम्पूर्ण विकास एक साथ कैसे कर सकता है। यह बात बिल्कुल ऐसी है जैसे भवन की पहली मंजिल बनाने की सामर्थ्य न रखने वाले शिल्पी को अगली दो मंजिलें बनाने का सुझाव देना।

अतः प्रो. हिगिन्स का कहना है कि अल्प विकसित देशों को बड़ा सोचने की सलाह देना तो अच्छा है, लेकिन सामर्थ्य न होने पर बड़ा काम करने का सुझाव इनके लिए मूर्खता का सुझाव है। सिद्धान्त की इस अव्यावहारिकता को देखते हुए प्रो. सिंगर ने कहा है कि बहुमुखी विकास के लाभ अर्थशास्त्रियों के पढ़ने के लिये रोचक तो हो सकते हैं किन्तु अल्प विकसित देशों के लिए वे वास्तव में निराशाजनक समाचार है।

2. उद्योगों के पूरक होने की दोषपूर्ण मान्यताः – सन्तुलित विकास के समर्थकों की यह एक बहुत बड़ी भूल रही है कि उन्होंने विभिन्न उद्योगों को परस्पर पूरक माना है। वास्तविकता तो यह है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न उद्योगों के बीच सम्बन्ध पूरक न होकर प्रतियोगी होता है। जिसके फलस्वरूप उत्पादन लागतों के बढ़ने, आर्थिक प्रेरणाओं के घटने और अपव्ययों के अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है। प्रो. मार्क्स एवं फ्लेमिंग का भी कहना है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि उद्योगों के बीच सम्बन्ध अधिकांशतः पूरक होता है किन्तु व्यवहार में साधनों की पूर्ति की सीमितता इस सम्बन्ध को अधिकांश रूप से प्रतियोगी बना देती हैं। श

3. सीमित साधनों का अपव्ययः – अगर थोड़ी देर के लिए सन्तुलित विकास के सिद्धान्त को स्वीकार भी कर लिया जाय तो यह हो सकता है कि सभी क्षेत्रों में थोड़े–थोड़े पूँजीगत विनियोग के कारण किसी भी क्षेत्र में प्रगति न होने पाये। जिसका अर्थ होगा – राष्ट्र के सीमित साधनों का पूर्ण अपव्यय । वास्तव में यह बात ठीक उसी प्रकार होगी जिस प्रकार यह कहना कि एक आदमी तब तक कुछ नहीं कर सकता जब तक कि वह सब कुछ करने के काबिल न हों। सच तो यह है कि जो आदमी सब कुछ करने की सोचता है वह कुछ भी नहीं कर पाता। प्रो. बैजामिन हिगीन्स का कहना है कि वहां सैकड़ों फूल कैसे खिल सकते हैं जहां पर एक फूल भी उचित देखभाल के अभाव में मुरझा जाता हो।

4. साधनों का अभावः– सन्तुलित विकास का सिद्धान्त से के बाजार नियम पर आधारित है कि पूर्ति अपनी मांग स्वयं उत्पन्न कर लेती है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वस्तुओं की पूर्ति का सम्बन्ध साधनों (विशेष रूप से पूँजी) की मांग से होता है जो अपनी पूर्ति नहीं कर सकती। जब अनेक उद्योगों में एक साथ निवेश किया जायेगा तो साधनों के लिये मांग प्रतियोगी बन जायेगी। परन्तु अल्प विकसित देशों में साधनों की पूर्ति बेलोचदार होती है। इस प्रकार सिद्धान्त का प्रमुख तर्क ही गलत सिद्ध हो जाता है। आर्थिक विकास की सर्वोपयुक्त नीति यह होगी कि उपलब्ध साधनों का उन क्षेत्रों में निवेश किया जाए जो पहले से ही अपेक्षाकृत विकसित हैं और जिनमें शीघ्र फल देने जल्दी विकसित होने तथा देश की अर्थव्यवस्था को लचीला बनाने की सम्भावनाएं विद्यमान है। इसलिये डॉ. सिंगर का कहना है कि अल्प विकसित देशों की परिस्थितियों के लिये सामने से प्रहार करने की अपेक्षा छामामार युद्ध कला अधिक उपयोगी कही जायेगी।

5. साधनों की लागत में वृद्धि – इस सिद्धान्त के अनुसार अनेक उद्योगों में एक साथ निवेश करने पर उत्पादन की वास्तविक तथा मौद्रिक लागतें घट जाती हैं। लेकिन सच यह है कि लागतें घटने के बजाय बढ़ती हैं। इसका कारण यह है कि नये उद्योग पुराने उद्योगों के साथ सीमित साधनों की पूर्ति के लिये प्रतियोगिता करते हैं। जिससे इन साधनों की कीमत बढ़ जाती है। इस सम्बन्ध में प्रो. किण्डलबर्जर का कहना है कि नर्कसे मॉडल का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह नए उद्योगों की स्थापना की बात तो करता है लेकिन वर्तमान उद्योगों में उत्पादन लागत को घटाने की सम्भावना पर विचार नहीं करता है।

ध्यान रहे जब नए उद्योग स्थापित किये जाते हैं तो इससे वर्तमान फार्मों के माल की मांग कम हो जाने से वे अलाभप्रद हो जायेंगी। यह बात तो ठीक उसी प्रकार होगी जिस प्रकार कि नये पौधे लगाते रहो भले ही पुराने सूखते रहें।श

6. साधनों में व्यनुपात – सन्तुलित विकास नीति को लागू करने की एक बड़ी कठिनाई अल्प विकसित देशों में उत्पादन के साधनों के बीच व्यनुपात का पाया जाना हैं। कुछ देशों में श्रम की अधिकता होती है तो पूँजी तथा उद्यम का अभाव होता है। जबकि अन्य देशों में यह स्थिति अन्यथा हो सकती है। इस प्रकार साधनों की पूर्ति की गैर–आनुपातिकता, सन्तुलित विकास की नीति को सार्वभौमिक रूप से लागू करने में एक रूकावट सिद्ध होती है।

7. विकास के सिद्धान्त के रूप में असफलः– एल्बर्ट हर्षमैन के मतानुसार सन्तुलित वृद्धि का सिद्धान्त आर्थिक विकास के सिद्धान्त के रूप में असफल है, अर्थात इसे विकास का सिद्धान्त माना ही नहीं जा सकता। विकास से आशय है एक प्रकार की अर्थव्यवस्था को दूसरी प्रकार की उन्नत अर्थव्यवस्था में बदलना। जब कि यह सिद्धान्त इसमें असफल रहा है।

8. बाधाओं की उपेक्षा – इस सिद्धान्त का एक दोष यह है कि इसमे विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं कमियों व आधिक्य क्षमताओं आदि की पूर्णतया उपेक्षा की है।

9. सिद्धान्त की अल्प विकसित देशों के लिये अव्यवहार्यता – हर्षमैन का कहना है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त विकसित देशों के लिये तो उपयुक्त है लेकिन उसे अल्प विकसित देशों पर लागू करना गलत होगा। वास्तव में यह सिद्धान्त कीन्स की अल्प रोजगार स्थिति का एक अल्प विकसित देश पर निरर्थक प्रयोग है।श इसका कारण यह है कि विकसित देशों में व्यापार चक्र के कारण आर्थिक क्रियाओं में एक अस्थायी शिथिलता आ जाती है।

10. सफल सरकारी निदेशन तथा निवेश की दोषपूर्ण मान्यता – यह सिद्धान्त आर्थिक विकास करने का उत्तरदायित्व सरकार को सौंपता है और केन्द्रीय नियोजन तथा निर्देशन की सफलता को पहले से ही मानकर चलता है। आलोचकों ने सरकारी निर्देशन तथा निवेश की कुशलता पर सन्देह व्यक्त किया है और यह ठीक भी है। क्योंकि निजी क्षेत्र की तुलना में सरकारी क्षेत्र की कुशलता से हम सभी लोग पूरी तरह से परिचित हैं।

11. बढ़ते प्रतिफल की दोषपूर्ण मान्यता – इस सिद्धान्त की यह मान्यता कि सन्तुलित ढंग से निवेश करने पर मांग में वृद्धि होती है और पैमाने के बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। किन्तु यह मान्यता दोषपूर्ण है क्योंकि ये दोनों शक्तियां विपरीत दिशाओं में जोर लगाती हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि सन्तुलित विकास का सिद्धान्त बढ़ते प्रतिफल के स्थान पर घटते प्रतिफल प्रदान करता है।

5.4 असंतुलित विकास सिद्धान्त

5.4.1 असंतुलित विकास सिद्धान्त की अवधारणाः–

असन्तुलित विकास का सिद्धान्त सन्तुलित विकास की धारणा के बिल्कुल विपरीत है। असन्तुलित विकास का अर्थ है किसी अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों का एक साथ विकास न करके कुछ चुने हुए प्रमुख क्षेत्रों का गहन विकास करना। असन्तुलित विकास पद्धति का औचित्य इस मान्यता पर आधारित है कि अल्प विकसित देशों के पास पूँजी व अन्य आवश्यक साधन इतने नहीं होते कि सभी क्षेत्रों में एक साथ निवेश किया जा सके फिर उपलब्ध सीमित साधनों का सभी क्षेत्रों में समान वितरण करना न केवल अनार्थिक सिद्ध होता है बल्कि अल्प विनियोग से सभी क्षेत्रों में विकास की दर या तो शून्य बनी रहती है अथवा उसमें नाम मात्र की वृद्धि होती है। इस कारण ऐसे देशों में कुछ चुने हुए महत्वपूर्ण क्षेत्रों या उद्योगों में बड़ी मात्रा में निवेश करके विकास की गति तीव्र की जाती है और उनसे उत्पन्न होने वाली बचतों में

वृद्धि होने से अन्य क्षेत्रों का भी सामाजिक विकास होने लगता है। इस प्रकार अर्थव्यवस्था धीरे धीरे असन्तुलित विकास से सन्तुलित विकास की ओर अग्रसर होती है। असन्तुलित विकास में विकास की शुद्ध दर सन्तुलित विकास की औसत दर से अधिक होती है।

असन्तुलित विकास के प्रवर्तक एवं समर्थक –

प्रो. हर्षमैन तथा सिंगर असन्तुलित विकास के प्रवर्तक हैं। जबकि इस पद्धति का समर्थन करने वालों में मार्क्स, फ्लेमिंग, बौर एवं यामी, प्रो. रूजीना जे. शीहान और किन्डलबर्जर जैसे अर्थशास्त्रियों का नाम उल्लेखनीय है।

प्रो. हर्षमैन की नीति –

असन्तुलित विकास सिद्धान्त के प्रवर्तक प्रो. हर्षमैन का कहना है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था मे निवेश ऐसे क्षेत्रों (पूँजीगत उद्योगों) में केन्द्रित किये जाने चाहिए जो आगे चलकर विकास की दर को बढ़ाने वाले हों। चूंकि आर्थिक विकास असन्तुलनों की श्रृंखला द्वारा होता है इसलिये एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार अर्थव्यवस्था को जानबूझ कर असन्तुलित किया जाना आर्थिक विकास का सबसे अच्छा तरीका है।श असन्तुलनों को हर्षमैन ने विकास की आत्मा तथा प्रेरणा दोनों माना है। इसलिये उनका मत है कि सामान्यता विकास नीति का उद्देश्य असन्तुलनों को समाप्त करने के बजाय उन्हें जीवित रखने का होना चाहिए। यदि अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाते रहना है तो विकास नीति का कार्य तनाव, व्यनुपातों तथा असन्तुलनों को बनाए रखना होना चाहिए। एक आदर्श स्थिति वह होती है जब एक असन्तुलन ऐसे विकास को प्रेरित करे जिसके फलस्वरूप फिर उसी प्रकार का असन्तुलन उत्पन्न हो और यह क्रम इसी प्रकार निरन्तर बढ़ता रहे। अर्थव्यवस्था को असन्तुलित करके ही विकास किया जा सकता है और यह तभी सम्भव है जब तो सामाजिक उपरि व्यय पूँजी तथा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में विनियोग किया जाये। क्योंकि उपरिव्यय पूँजी बाह्य मितव्ययिताओं को पैदा करती है और प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियायें मितव्ययिताओं का पुनर्विनियोजन सम्भव बनाती है।

प्रो. रोस्टोव के विचार –

प्रो. रोस्टोव के अनुसार किसी भी देश में आर्थिक विकास का कार्य कुछ अग्रगामी और आधारभूत क्षेत्रों के विकास के प्रत्यक्ष प्रभावों पर निर्भर करता है। वास्तव में इन क्षेत्रों की उत्पादकता में होने वाली वृद्धि ही सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करती है।श इसलिए उनका कहना है कि प्राविधिक ज्ञान उत्पादन तकनीक और सीमान्त उत्पादकता की दृष्टि से जो क्षेत्र दूसरों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ हैं सर्वप्रथम उन्हीं क्षेत्रों में ही विनियोग किया जाना चाहिए । असन्तुलित विकास की पद्धति अर्थ व्यवस्था के विकास को स्वयं संचालिकता प्रदान करती है।

प्रो. सिंगर का मत –

यद्यपि प्रो. सिंगर ने कुछ दशाओं में अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास के संतुलित विकास पद्धति को ही उचित माना है, तथापि उनका कहना है कि तीव्र आर्थिक विकास का प्रश्न मूलरूप से असन्तुलित विकास की प्रक्रिया से जुड़ा हुआ है। मांग और पूर्ति के असन्तुलन और साधनों के बेलोचपूर्ण होने के कारण विकास की प्रारम्भिक अवस्था में विकास का सन्तुलित ढंग, कारगर सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिये उनके मतानुसार एक अधिक अच्छी नीति यही मानी जा सकती है कि उपलब्ध साधनों को उस प्रकार के निवेशों पर केन्द्रित किया जाये जो अर्थव्यवस्था को अधिक लोचदार तथा बढ़ती हुई मांग तथा बढ़ते हुए बाजारों की प्रेरणा के अंतर्गत विकास करने के अधिक योग्य बनाते हों।श अतः अल्प विकसित देशों को प्रारम्भ से ही असन्तुलित विकास पद्धति को स्वीकार कर लेना चाहिए।

5.4.3 असंतुलित विकास सिद्धान्त का सार

असन्तुलित विकास के मुख्य तत्व इस प्रकार है असन्तुलित विकास का सिद्धान्त प्रोत्साहन एवं दबाव पर आधारित है। विकास की यह पद्धति बड़े धक्के के सिद्धान्त को स्वीकार करती है परन्तु यह बड़ा धक्का सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर विकेन्द्रित न होकर कुछ खास क्षेत्रों में केन्द्रित होना चाहिये। असन्तुलित विकास प्रक्रिया विभिन्न प्रकार के असन्तुलनों की एक कड़ी है। अर्थव्यवस्था में असन्तुलन की एक कड़ी दूसरी नवीन कड़ी को उत्पन्न कर देती है और यही आर्थिक प्रेरणाओं के उत्पन्न होने के मूल सार है। विकास की इस पद्धति में, निवेश सदैव कुछ विशेष क्षेत्रों में ही किये जाते हैं, जिसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले आर्थिक दबाव अन्य क्षेत्रों के विकास को सरल बना देते है। असन्तुलित विकास प्रक्रिया में सामाजिक ऊपरी पूंजी का विशेष महत्व है।

5.4.4 असन्तुलित विकास के लाभ

तीव्र औद्योगिक एवं आर्थिक विकासः– असन्तुलित विकास पद्धति का सबसे बड़ा लाभ देश का तीव्र आर्थिक एवं औद्योगिक विकास माना जाता है। पूँजी प्रधान तथा भारी उद्योगों की विकास दर ऊंची होती है जिससे देश प्रगति के मार्ग पर शीघ्र आरूढ हो जाता है

आधारभूत उद्योगों की स्थापनाः– किसी भी देश का आर्थिक मोक्ष आधार भूत उद्योगों की स्थापना पर निर्भर करता है जो केवल असन्तुलित विकास की प्रक्रिया के अंतर्गत ही पनप सकते हैं। सहायक उद्योगों का विकास – असन्तुलित विकास के अंतर्गत जब भारी उद्योगों की स्थापना की जाती है तो इससे उपभोक्ता उद्योगों का विकास भी स्वतः ही होने लग जाता है।

आर्थिक विकास का स्थायी स्वरूपः– असन्तुलित विकास के अंतर्गत जो परियोजनाएं शुरू की जाती है यद्यपि वे दीर्घकाल में प्रतिफल देती है लेकिन कालान्तर में चलकर ये योजनाएं देश की औद्योगिक नींव को मजबूत करके अर्थव्यवस्था को पूर्ण स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बना देती है।

साधनों का अधिक उपयुक्त उपयोगः– अल्प विकसित देशों में पूंजी जैसे साधनों का सर्वथा अभाव होता है। जो थोड़ी बहुत पूंजी उपलब्ध होती है उसे छोटे–छोटे टुकड़ों में सभी क्षेत्रों में बांट देने पर पूंजी का सार्थक उपयोग नहीं हो पाता। सीमित साधनों का सर्वोपयुक्त उपयोग तभी माना जा सकता है जब उससे मिलने वाला प्रतिफल पर्याप्त हो और यह केवल असन्तुलित विकास के अंतर्गत ही सम्भव हो पाता है।

आर्थिक अधो–संरचना का सृदृढ़ आधारः– किसी देश के आर्थिक विकास की आधारशिला उसकी अधः संरचना अर्थात यातायात, संचार, जल शक्ति, विद्युत, बैंक व बीमा आदि के विस्तार पर निर्भर करती है। चूंकि असन्तुलित विकास के अंतर्गत सामाजिक ऊपरी पूंजी के रूप में पर्याप्त विनियोग किया जाता है। जिससे इन क्षेत्रों का विधिवत विकास होने पर आर्थिक प्रगति की दर तीव्र हो जाती है।

5.4.5 असंतुलित विकास सिद्धान्त की आलोचनायें

इस सिद्धान्त का एक दोष यह बताया जाता है कि यह विस्तार की प्रेरणाओं पर तो ध्यान देता है लेकिन असन्तुलित विकास के फलस्वरूप प्रतिरोधों की सर्वथा उपेक्षा करता है। विकास का अपव्ययपूर्ण ढंग – असन्तुलित विकास की यह रीति अपव्यय पूर्ण है क्योंकि इसके अंतर्गत फालतू उत्पादन क्षमता को अनावश्यक रूप से बनाए रखना पड़ता है। चूंकि असन्तुलित विकास के अंतर्गत सभी क्षेत्र समान रूप से विकसित नहीं होते बल्कि कुछ क्षेत्र अन्य क्षेत्रों के मुकाबले ऊंची दर से बढ़ते हैं। अतः कम गति से बढ़ने वाले क्षेत्रों के लिए पूंजीगत उपकरण उपलब्ध तो रहते हैं लेकिन उनका प्रयोग नहीं किया जा पाता जो कि एक प्रकार से साधनों का अपव्यय मात्र है। असन्तुलित विकास के अंतर्गत अर्थव्यवस्था में असन्तुलनों को पैदा किया जाना जरूरी समझा जाता है। लेकिन पॉल स्ट्रीटन तथा प्रो. मायर का इस सम्बन्ध में कहना है

कि यह सिद्धान्त विकास बिन्दुओं की खोज करने में असमर्थ रहा है, और इसमें विकास की संरचना दिशा व समय पर उचित ध्यान नहीं दिया जा सका। असन्तुलित विकास की प्रक्रिया अर्थव्यवस्था के अन्दर स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न करती है। जब अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण विकास बिन्दुओं (पूँजीगत परियोजनाओं) पर बड़ी मात्रा में निवेश किया जाता है तो उससे मौद्रिक आय बढ़ती है जो उपभोक्ता वस्तुओं की पूर्ति की तुलना में उनकी मांग बढ़ा देती है। फलस्वरूप कीमत स्तर में स्फीतिकारी वृद्धि होती है। जिससे उपभोक्ताओं को भी अतिरिक्त आर्थिक भार और मानसिक कष्ट उठाना पड़ता है। असन्तुलित विकास पद्धति के लिये उच्चस्तरीय तकनीकी ज्ञान, पर्याप्त शक्ति व परिवहन तथा विस्तृत बाजार जैसी आधारभूत सुविधाओं की आवश्यकता होती है। जिनका अल्प विकसित देशों में सर्वथा अभाव होता है। अनुबन्धन प्रभाव विश्लेषण दोषपूर्ण है क्योंकि वह अल्प विकसित देशों के आंकड़ों पर आधारित नहीं है। इन देशों में सामाजिक उपरिव्यय सुविधाओं के पूर्णतः विकसित न होने के कारण अनुबन्ध प्रभाव काफी कमजोर होता है। आलोचकों का कहना है कि अल्प विकसित देशों में दबाव तथा तनाव गम्भीर परिणाम लिए होते हैं क्योंकि ये विकास की प्रक्रिया को अवरूद्ध कर देते है। इसलिये असन्तुलनों के माध्यम से विकास करना इन देशों के लिये उचित नहीं माना जा सकता।

5.6 संतुलित विकास सिद्धान्त और असंतुलित विकास सिद्धान्त की तुलना

विकास की कौन सी पद्धति अधिक श्रेष्ठ है? जहां तक इन दोनों पद्धतियों की श्रेष्ठता निर्धारण की बात है यह कहना बहुत कठिन है कि इनमें से कौन सी पद्धति अधिक उपयुक्त समझी जाए क्योंकि इन दोनों पद्धतियों के अपने कुछ गुण व दोष हैं। विकास की इन दोनों पद्धतियों का अन्तिम ध्येय तीव्र आर्थिक विकास करना हैं। अन्तर केवल इतना है कि विकास प्रक्रिया को क्या स्वरूप दिया जाए? अतः प्रो. पॉल स्ट्रीटन का कहना है कि सन्तुलित विकास और असन्तुलित विकास के सिद्धान्त के बीच चुनाव सम्बन्धी विवाद उत्पन्न करना निःसन्देह एक निरर्थक विचार है। यह दोनों पद्धतियां सही अर्थों में प्रतियोगी न होकर पूरक हैं। इसलिए इन दोनों पद्धतियों में चुनाव करने की अपेक्षा इनके समन्वित उपयोग की चर्चा करना अधिक उपयोगी होगा। फिर भी अल्प विकसित देशों की मूल विशेषताओं को देखते हुए अधिकांश विचारक असन्तुलित विकास नीति का ही समर्थन करते हैं क्योंकि इससे निवेश वृद्धि, आय–वृद्धि की अपेक्षा अधिक होती है और राष्ट्रीय आय, राष्ट्रीय उपभोग की अपेक्षा ऊंची दर से बढ़ती है। दूसरा भारी उद्योगों को अधिक महत्व दिए जाने के कारण बाह्य मितव्ययिताएं अधिक प्राप्त होती हे जो आर्थिक विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। चूंकि विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में असन्तुलनों का होना अनिवार्य है इस लिए प्रो. मायर का कहना है कि जब विकासशील देश असन्तुलन से बच नहीं सकता भले ही वह इसे पसन्द करे या न करे तो फिर जान– बूझकर असन्तुलन पैदा करना (अर्थात असन्तुलित विकास नीति को ही अपनाना अच्छा होगा) जिससे तीव्र विकास की सम्भावना अधिक हो सके।''

5.6 अभ्यास हेतु प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. गरीबी का दुष्चक्र तोड़ने के लिए रैगनर नर्स ने किस बात पर बल दिया।

क. सन्तुलित विकास

ख. कृषि विकास

ग. असन्तुलित विकास

घ औद्योगिक विकास

2. असन्तुलित विकास की रणनीति का परामर्श दियाः
क. रैगनर नर्क्स
ख. हर्षमैन
ग. कोलिन क्लार्क
घ. उपरोक्त में कोई नही

3. निर्धनता का दुश्चक्र किस पक्ष से सम्बन्धित है?
क. मांग पक्ष
ख पूर्ति पक्ष
ग. मांग और आपूर्ति दोनो
घ. उपरोक्त में कोई नही

4.. वाणिक वादियों के अनुसार आर्थिक विकास है–
क. रोजगार में वृद्धि
ख. कुल उत्पादन मात्रा में वृद्धि
ग. सोने एवं चांदी में वृद्धि
घ. उपरोक्त में से कोई नहीं

5.7 सारांश

संतुलित तथा असंतुलित वृद्धि के बीच वाद–विवाद बहुत अधिक बढ़ाया गया है जो कि प्रायः निरर्थक रहा है। एक विकासशील देश में संसाधनों के अभाव को दृष्टिगोचर रखते हुए सबसे उत्तम तरीका असंतुलित वृद्धि की कूटनीति को अपनाना है। इस कूटनीति के अंतर्गत पहले SOC को विकसित किया जाए जो आगे DPA में निवेश को प्रोत्साहित करेंगे, तब अर्थव्यवस्था संतुलित वृद्धि की ओर अग्रसर होगी। भारत जैसे अनेक विकासशील देशों का अनुभव यह बताता है कि जब तक विद्युत, सिंचाई, मानवशक्ति, परिवहन आदि SOC का विकास नहीं किया जाता कृषि, उद्योग तथा वाणिज्य का विकास रूक जाता है। वास्तव में रूस का तीव्र विकास इसी तरह हुआ है। जिसमें मुख्य क्रियाओं के विकास से अन्य क्रियाओं में विकास हुआ। परन्तु वे अल्प विकसित देश जो प्रजातंत्र पर कायम हैं, उन्हें विकास की इस कूटनीति पर चलते हुए स्फीति तथा विपरीत भुगतान शेषों की जुड़वां समस्याओं को नियंत्रित करना चाहिए। तभी वे तीव्र आर्थिक विकास करने में सफल होंगे। सन्तुलित विकास सिद्धान्त की मौलिक समस्या इसकी अल्पविकसित देशों की मूल तथा गम्भीर समस्या को समझने की असफलता है। सिंगर ने बताया है कि बड़े पैमाने पर सोचना अल्पविकसित देशों के लिए उचित राय है पर बड़े पैमाने पर कार्य करना एक बुद्धिमानीपूर्ण राय नहीं यदि यह उनको साधनों की सीमा के बाहर जाकर प्रयास करने को कहता है। सिंगर के अनुसार सन्तुलित विकास दृष्टिकोण गलत नहीं है बल्कि अपरिपक्व है। इसको स्वपोषित विकास की अगली अवस्थाओं में लागू किया जा सकता है पर गतिहीनता की स्थित को तोड़ने के लिए नहीं। अधिक अच्छी विकास नीति होगी जब उपलब्ध संसाधनों को उन विनियोगों पर केन्द्रित किया जाय जो आर्थिक विकास को अधिक लोचदार बनाये तथा बढ़े हुए बाजार तथा बढ़ी हुई मांग से जनित प्रेरणा के संदर्भ में उसे विकसित होने के लिए अधिक सक्षम बनायें। इस प्रकार स्पष्ट है कि अर्थव्यवस्था के सन्तुलित विकास के लिए– कृषि एवं उद्योग क्षेत्र के बीच समन्वय, विदेशी विनिमय की बचत तथा रोजगारपरक उद्योगों पर बल दिया जाय ताकि विकास सुनिश्चित हो सके। योजना आयोग ने दूसरी योजना की गणनायें यह मानकर की कि जनसंख्या की वृद्धि दर 1.25 प्रतिशत वार्षिक होगी पर वास्तव में जनसंख्या की वृद्धि दर 2 प्रतिशत वार्षिक से भी अधिक रही है। इस गलत अनुमान के फलस्वरूप खाद्यान्न की मांग को कम अनुमानित किया गया। अगर ऐसा नहीं रहा होता तो कृषि को और अधिक महत्व दिया गया होता। पर क्या गलत अनुमान के कारण उत्पन्न होने वाले असन्तुलन को असन्तुलित आर्थिक विकास नीति का द्योतक मान लिया जाय, इस प्रकार के असन्तुलन निश्चित रूप से जानबूझकर किये गये असन्तुलन से भिन्न होंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत में संतुलित विकास नीति का ही अनुसरण किया गया है।

5.8 शब्दावली

उच्च भौतिक सीमा – उच्चतम उपभोग की अवस्था ।

न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर – आय की वह मात्रा जो मात्र अति आवश्यक उपभोग को ही क्रय कर सके अर्थात् आय का निम्न स्तर।

जनसंख्या वृद्धि समीकरण– जब भी प्रति व्यक्ति आय निर्वाह स्तर से ऊपर के स्तर पर पहुंच जाती है तो इसमें किसी भी तरह की और वृद्धि का मृत्यु दर पर नगण्य प्रभाव पड़ेगा। इसके अलावा, मृत्यु दर में बदलाव प्रति व्यक्ति आय में बदलाव के कारण होता है।

आय निर्धारण समीकरण– आय पूंजी के भंडार, जनसंख्या के आकार और तकनीक के स्तर पर निर्भर करती है।

शुद्ध निवेश– में बचत–निर्मित पूंजी और खेती के तहत भूमि की मात्रा में वृद्धि शामिल है।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ग. असन्तुलित विकास
2. क. रैगनर नर्क्स
3. ग. मांग और आपूर्ति दोनो
4. ग. सोने एवं चांदी में वृद्धि

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

एम. एल. झिगन विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस दिल्ली 2010

एस. एन. लाल आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद 1999

एस. पी. सिंह आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन, श्एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली 2009

5.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

A-O- Hirschman The Strtegy of Economic Development--

H-W- Siger Economic Progress in Undeveloped Countries--

Increasing Returns and Economic Progress Economic Journal vol- 38 1928-

Scitovsky 'Two Concepts of EÛternal Economices' Journal of Political Economy- Vol- LXII- & 1954

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संतुलित आर्थिक वृद्धि की धारणा को समझाइए और अल्पविकसित देशों में इसकी रूकावटों को बताइए।

2. आर्थिक विकास के लिए संतुलित वृद्धि की धारणा के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।

3. संतुलित बनाम असंतुलित वृद्धि पर एक टिप्पणी लिखिए।

4. संतुलित आर्थिक वृद्धि की असंतुलित आर्थिक वृद्धि से भिन्नता प्रकट कीजिए। इन दोनों में भारतीय स्थिति के लिए कौन सी अधिक उपयुक्त है?

5.. संतुलित बनाम असंतुलित वृद्धि के विवाद को समझाइए, आप कौन सी तकनीक को श्रेष्ठ मानते हैं?

खण्ड–02

इकाई–06

रोजेन्स्टीन का प्रबल प्रयास सिद्धान्त व अन्य सिद्धान्त

इकाई का संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 'बड़े धक्के' का सिद्धान्त, रोजेन्स्टीन, रोडान का सिद्धान्त
6.3.1 सिद्धान्त की अवधारणा
6.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या
6.3.3 अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताएं
6.3.4 सिद्धान्त के गुण
6.3.5 सिद्धान्त की आलोचनायें
6.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
6.5 सारांश
6.6 शब्दावली
6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
6.9 उपयोगी सहायक पाठ्य सामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रो. पाल. एन. रोजेन्स्टीन रोडान द्वरा प्रतिपादित 'प्रबल प्रयास' या 'बड़े धक्के' का सिद्धान्त लीबन्स्टीन के 'आवश्यक न्यूनतम प्रयास से काफी मिलता जुलता है। रोडान तेजी से विकास करने व 'सन्तुलित विकास के समर्थक थे। दीर्घकालीन स्थिरता और विषैले चक्रों में फंसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्थाओं को आत्म निर्भर विकास के मार्ग पर लाने के लिए बड़े धक्के की आवश्यकता होती है। रोडान के अनुसार जिस प्रकार एक सोते हुए व्यक्ति को एकदम झकझोर कर ही उठाना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार नियोजन का उद्देश्य अर्थव्यवस्था को उसके निम्न स्तरीय साम्य से झटके के साथ बाहर निकाल कर संचयी विकास के मार्ग पर ले जाना चाहिए जिससे विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो सके।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्रों में निम्नलिखित की समझ विकसित हो सकेगी–

- बड़े धक्के के सिद्धान्त से क्या तात्पर्य है।
- बड़े धक्के से सम्बन्धित विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की क्षमता क्या होती है।
- अविभाज्यताओं एवं मितव्ययिताओं से क्या तात्पर्य है।
- अविभाज्यतायें कितने प्रकार की होती है।

6.3 बड़े धक्के का सिद्धान्तः–

6.3.1 सिद्धान्त की अवधारणाः–

इस सिद्धान्त के अनुसार धीरे धीरे चलने से आर्थिक बाधाएं दूर नहीं हो सकती। स्थिर अवस्था में पड़ी हुई अर्थव्यवस्थाओं को गति प्रदान करने के लिए एक 'आवश्यक न्यूनतम मात्रा में निवेश करना बहुत जरूरी है ताकि अर्थव्यवस्था को झटके के साथ इस स्थैतिक अवस्था से बाहर निकाला जा सके। रोडान ने अपने तर्क हेतु एक उदाहरण देते हए कहा है कि एक पिछडे हुए देश को विकास के मार्ग पर लाना अर्थात एक हवाई जहाज को जमीन से ऊपर उड़ाने के समान है। जिस प्रकार हवाई जहाज उड़ाने के लिए जमीन पर एक आवश्यक न्यूनतम गति को बनाये रखना पड़ता है, ठीक उसी प्रकार विकास कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए साधनों की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा होती है जिसका निवेश करना जरूरी है।

6.3.2 सिद्धान्त की व्याख्या

'बड़ा धक्का' अथवा 'प्रबल प्रयास' सिद्धान्त में रोजेन्स्टीन रोडान ने कहा कि अल्पविकसित अर्थव्यवस्था में विकास की बाधाओ को पार करने और उसे प्रगति पथ पर चलाने के लिए 'बडा धक्का या 'बड़ा व्यापक'कार्यक्रम की आवश्यक है जो न्यूनतम किन्तु उच्च मात्रा में निवेश के रूप में हो। यदि विकास प्रोग्राम को थोड़ा भी सफल बनाना है तो संसाधनों का एक न्यूनतम स्तर प्रयोग में लगाना ही पड़ेगा। यह सिद्धान्त कहता है कि धीरे – धीरे चलने से अर्थव्यवस्था को विकास पथ पर नहीं लाया जा सकता बल्कि इसके लिए आवश्यक यह है कि एक न्यूनतम मात्रा में निवेश किया जाए। और निवेष के लिए उन ब्राहय मितव्ययिताओं को प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है जो तकनीकी रूप में स्वतंत्र उद्योगों की एक साथ स्थापना से उत्पन्न होती है। इस प्रकार निवेश की न्यूनतम मात्रा में प्रवाहित होने वाली अविभाज्यताएँ तथा बाह्य मितव्ययिताएं आर्थिक विकास का सफलतापूर्वक सूत्रपात करने के लिए आवश्यक षर्त है।

6.3.3 अविभाज्यतायें एवं मितव्ययिताए

रोजेन्स्टीन रोडान ने तीन प्रकार की अविभाज्यताओं तथा बाहय मितव्ययिताओं को स्पष्ट किया है।

1. उत्पादन फलन में अविभाज्यताएं विशेष रूप से सामाजिक उपरि पूँजी की पूर्ति की अविभाज्यता।
2. मांग की अविभाज्यता
3. बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता।
4. मनोवैज्ञानिक अविभाज्यता।

6.3.1. उत्पादन फलन में अविभाज्यताएं – रोजेन्स्टीन रोडान के अनुसार आगतों–निर्गतों तथा प्रक्रियाओं की अविभाज्यताओं से बढ़ते प्रतिफल प्राप्त होते हैं। उसका दृढ़ विश्वास है कि संयुक्त राज्य अमेरिका में बढ़ते प्रतिफलों ने पूँजी उत्पादन अनुपात कम करने में काफी सहयोग किया था। सामाजिक उपरि पूँजी की सेवाएं, जिनके अंतर्गत आधारभूत उद्योग जैसे विद्युत परिवहन तथा संचार है, अप्रत्यक्ष रूप से उत्पादक हैं उनकी पूरी होने की अवधि लम्बी होती है। इनका तत्काल आयात नहीं हो सकता। उनकी सस्थापनाएं काफी प्रारंभिक राशि के निवेश की अपेक्षा रखती है। इसलिए उनमें कुछ समय तक अप्रयुक्त क्षमता रहेगी। इनमें विभिन्न सार्वजनिक उपयोगिताओं का अवश्य न्यूनतम उद्योग का मिश्रण होता है जिसके कारण अल्प विकसित देश को अपने कुल निवेश का 30–40 प्रतिशत इन दिशाओं में लगाना पड़ेगा।श इसलिए उन्हें शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों से पहले होना चाहिए।

इस प्रकार रोडान के अनुसार सामाजिक उपरि पूँजी को चार अविभाज्यताएं विशिष्टता प्रदान करती हैं। प्रथम यह अल्प काल में अप्रतिवर्त्य होती है और इसलिए आवश्यक है कि अन्य प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों से यह पहले हो। दूसरे इसमें एक निश्चित न्यूनतम टिकाऊपन होता है जो इसे गठीला बनाता है। तीसरे इनकी गर्भावधि लम्बी होती है (अर्थात् यह देर में फल देना शुरू करती है) अन्तिम इसमें विभिन्न प्रकार की सार्वजनिक उपयोगिताओं का एक निश्चित न्यूनतम अहास्य उद्योग मिश्रण होता है।

सामाजिक उपरि पूँजी की पूर्ति की ये अविभाज्यताएं अल्पविकसित देशों में विकास की प्रमुख बाधा है। इसलिए शीघ्र फलदायक प्रत्यक्षतः उत्पादक निवेशों का मार्ग बनाने के लिए आवश्यक है कि सामाजिक उपरि पूँजी में उच्च प्रारम्भिक निवेश किया जाए।

6.3.2. मांग की अविभाज्यता – मांग की अविभाज्यता या पूरकता इस बात की अपेक्षा रखती है कि अल्प विकसित देशों में परस्पर निर्भर उद्योगों की एक साथ स्थापना हो। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं में भारी जोखिम रहता है। अनिश्चितता यह होती है कि उनकी वस्तुओं के लिए मार्केट होगी भी या नहीं इसलिए निवेश सम्बन्धी निर्णय परस्पर निर्भर रहते हैं। रोजेन्स्टीन रोडान ने अपनी बात स्पष्ट करने के लिए जूता–फैक्टरी का प्रसिद्ध उदाहरण दिया है। शुरू में बन्द अर्थव्यवस्था की मान्यता मान लीजिए कि एक जूता फैक्ट्री में सौ अदृश्य बेरोजगार श्रमिक काम पर लगाए जाते हैं जिनकी मजदूरी अतिरिक्त आय का निर्माण करती है। यदि ये श्रमिक अपनी समस्त आय उन जूतों पर खर्च करें जिनका वे निर्माण करते हैं तो जूता मार्केट में निरन्तर मांग रहेगी और इस प्रकार उद्योग सफल हो जाएगा। परन्तु वे अपनी समस्त अतिरिक्त आय जूतों पर नहीं खर्च करेंगे क्योंकि मानवीय आवश्यकताएं विविध प्रकार की होती हैं। फैक्टरी के बाहर के लोग भी इन अतिरिक्त जूतों को नहीं खरीदेंगे क्योंकि वे गरीब हैं और उनके पास इतना धन नहीं है कि अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकें। इस प्रकार मार्केट के अभाव के कारण फैक्टरी उजड़ जायेगी।

इसी उदाहरण को बदलकर प्रस्तुत किया जा सकता है। मान लीजिए कि एक फैक्टरी में सौ की बजाय सौ फैक्टरियों में दस हजार श्रमिक लगे हैं जो भिन्न–भिन्न उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करते हैं और उन वस्तुओं के क्रय में अपनी मजदूरी खर्च करते हैं। नए उत्पादक एक दूसरे के ग्राहक होंगे और इस प्रकार अपनी वस्तुओं के लिए मार्केट बना लेंगे। मांग की पूरकता मार्केट ढूंढने की जोखिम को घटाती है और निवेश की प्रेरणा को बढ़ाती है। दूसरे शब्दों में अल्पविकसित देशों में मार्केट का छोटे आकार तथा निवेश की कम प्रेरणा को पार करने के लिए मांग की अविभाज्यता परस्पर निर्भर उद्योगों में एक उच्च न्यूनतम मात्रा में निवेश को आवश्यक बना देती है।

6.3.3. बचतों की पूर्ति में अविभाज्यता:– रोजेन्स्टीन के सिद्धान्त में बचत की उच्च–आय–लोच तीसरी अविभाज्यता है। निवेश के एक उच्च न्यूनतम आकार के लिए बचतों की उच्च मात्रा की आवश्यकता होती है। दरिद्र अल्पविकसित देशों में इसे उपलब्ध कराना आसान नहीं क्योंकि वहां आय का स्तर बहुत कम होता है। इस कठिनाई को पार करने के लिए यह आवश्यक है कि जब निवेश में वृद्धि होने के कारण आय बढ़े तो बचत की औसत दर की अपेक्षा बचत की सीमान्त दर कभी अधिक नहीं रहे।

इन तीन अविभाज्यताओं तथा इनके द्वारा उत्पन्न बाह्य मितव्ययिताओं के दिए हुए होने पर अल्पविकसित देशों में विकास की बाधाओं को पार करने के लिए बड़ा प्रयास या न्यूनतम मात्रा का निवेश आवश्यक है। रोडान ने लिखा है विकास की सफलतापूर्ण नीति के लिए आवश्यक उत्साह तथा प्रयत्न में अन्ततः अविभाज्यता का तत्व होता है। अकेले तथा हल्के ढंग से धीरे धीरे चलने का आर्थिक वृद्धि पर पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ता। जब किसी अल्प विकसित अर्थव्यवस्था के भीतर एक न्यूनतम गति या मात्रा में निवेश होता है तभी विकास का वातावरण बनता है। इस प्रकार जब एक बार विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तो यह एक साथ ही संतुलित वृद्धि के सम्बन्धों के मार्ग पर क्रियाशील होती है। ये तीन संबंध है, प्रथम सामाजिक उपरि पूँजी तथा प्रत्यक्ष उत्पादक क्रियाओं में संतुलन। द्वितीय पूँजी वस्तु उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों के अनुलंब संतुलन। तृतीय बढ़ रही उपभोक्ता मांग में पूरकता के कारण विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में क्षैतिक संतुलन। इस प्रकार के संतुलित विकास के लिए विस्तृत प्रोग्रामिंग अपेक्षित होता है।

6.3.4 मनोवैज्ञानिक अविभाज्यताः–

6.3.4 सिद्धान्त के गुण

यह सिद्धान्त तार्किक एवं व्यवहारिक दृष्टि से काफी उचित प्रतीत होता है क्योंकि विषम चक्रों से निकलने का एक मात्र उपाय सुसंगठित एवं शक्तिशाली ढंग से प्रयास करना है। यह सिद्धान्त कुछ बातों में स्थैतिक सन्तुलन के परम्परागत सिद्धान्त से भी श्रेष्ठ है। रोडान का कहना कि विकास प्रक्रिया अनेक असतत छलांगों का परिणाम है, पूर्णतया सत्य प्रतीत होता है। उनकी उत्पादन फलन की अविभाज्यताओं की मान्यता भी आर्थिक जगत की एक वास्तविकता है। यह सिद्धान्त अन्य विकसित देशों में पायी जाने वाली बाजार अपूर्णताओं से सम्बन्धित निवेश का एक मार्गदर्शक सिद्धान्त है जो यह बताता है कि ऐसे देशों में कीमत– यन्त्र की बजाय निवेश की एक आवश्यक न्यूनतम मात्रा ही आर्थिक विकास को गति प्रदान कर सकती है।

6.3.5 सिद्धान्त की आलोचनाएं

सिद्धान्त के इन गुणों के बावजूद प्रो. मिन्ट, ऐडलर, हैगन, किन्डलबर्जर, एलिस, वाइनर, बाल्डविन तथा हिगिन्स आदि अर्थषास्त्रीयों द्वारा इसकी आलोचनाऐं की गयी हैं जो कि इस प्रकार है.

1. सिद्धान्त का अवास्तविक होना यह सिद्धान्त अवास्तविक है क्योंकि अल्पविकसित देशों में निम्न आय अल्प बचतें व पूँजीगत साधनों के अभाव के कारण बड़ी मात्रा में निवेश करना सम्भव नहीं होता।

2. मितव्यायिताओं की असम्भावना – यह सिद्धान्त उत्पादन के बड़े पैमाने की बाह्य मितव्ययिताओं पर आधारित एक सिद्धान्त है। लेकिन जैकब वाइनर के अनुसार ये बाहरी बचतें तो विदेशी व्यापार से भी प्राप्त हो सकती हैं और फिर इतनी अधिक मात्रा में निवेश की भी आवश्यकता नहीं होगी। रोडान ने स्वयं भी इस बात को स्वीकार किया है।

3. अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा – यह सिद्धान्त पूँजीगत परियोजनाओं एवं आर्थिक संरचना के क्षेत्र में विनियोग करने पर बल देता है लेकिन कृषि एवं प्राथमिक उद्योगों में विनियोग करने की अवलेहना करता है जो कि एक कृषि प्रधान अल्प विकसित देश के लिये उचित नहीं जान पड़ता।

4. **सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यता का अतार्किक दृष्टिकोण**– सामाजिक उपरि पूँजी की अविभाज्यतायें रोडान के सिद्धान्त का सबसे प्रबल तर्क है। लेकिन प्रो. मिंट का कहना है कि प्रत्येक अल्प विकसित देश में ये सामाजिक उपरि पूँजी सुविधायें कुछ न कुछ मात्रा में पायी जाती है इसलिये समस्या इन सुविधाओं के नये सिरे से विकास करने की नहीं बल्कि उनमें सुधार करने की होती है। अतः इस दृष्टि से प्रबल प्रयास के रूप में निवेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता और यदि निवेश कर भी दिया जाये तो यह जरूरी नहीं कि यह निवेश इन देशों के लिये अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सके।

5.**अल्प लागतों वाले विनियोजन से नगण्य मितव्ययितायें उपलब्ध होना**– प्रो. किन्डलबर्जर का कहना है कि उपभोक्ता उद्योगों में सम्भाव्य बाहरी बचतें सीमित मात्रा में ही प्राप्त की जा सकती हैं।अत्यधिक बेलोच मांग वाली वस्तुओं में निवेश करने से प्रदा (Output) नहीं बढ़ती बल्कि लागत घटने लगती है क्योंकि बाहरी बचतें केवल भारी उद्योगों में प्रदा (Output) के विस्तार होने से उत्पन्न हो सकती है। चूंकि लागत घटाने वाले निवेश में बचतें नगण्य होती हैं इसलिये इनमें निवेश करने और उनसे बचतें प्राप्त होने का तर्क गलत सिद्ध होता है।

6. अल्प विनियोजन द्वारा प्रदा में अपेक्षाकृत अधिक वृद्धि होना– प्रो. जॉन ऐडलर का मत है कि रोडान की इस थीसिस के विपरीत निवेश की साक्षेपतः कम मात्रा प्रदा में अधिक वृद्धि कर देती है। ऐडलर के तर्क की पुष्टि भारत व अन्य एशियाई तथा दक्षिण अमेरिका के कुछ देशों में ऐसा भी होता है जहां निम्न पूँजी उत्पाद अनुपात के बावजूद प्रदा का स्तर संतोषजनक रहा है।

7. स्फीतिकारी दबावों का उत्पन्न होना – सामाजिक ऊपरी सुविधाओं पर किया गया निवेश प्रत्यक्ष रूप से न तो उत्पादन करता है और न ही इनसे शीघ्रगामी प्रतिफल ही प्राप्त हो सकते हैं। इतना ही नहीं इन परियोजनाओं में पूँजी–उत्पाद अनुपात भी अधिक होता है, और इनकी गर्भावधि भी लम्बी होती है। जिसके फलस्वरूप इस अवधि के दौरान विनियोगों के अधिक होने और उत्पादन के कम होने के कारण स्फीतिकारी दबाव उत्पन्न होने लगते हैं।

8. इतिहास द्वारा पुष्टि न होना – प्रो. हेगन के मतानुसार यह सिद्धान्त पिछड़े देशों के तीव्र विकास का एक 'जोशीला नुस्खा' अवश्य है लेकिन भावनाप्रधान अधिक है। फिर इसकी पुष्टि इतिहास के किसी भी चरण द्वारा नहीं होती।

6.4 अभ्यास हेतु प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. 'प्रबल प्रयास' का आर्थिक विकास का सिद्धान्त किससे सम्बन्धित है ?

क- हर्ष मैन

ख. रोस्टोव

ग. रोडान

घ. नक्से

2. रोजस्टीन के अनुसार बचत एवं निवेश वृद्धि हेतु आवश्यक है

क. उपभोग वृद्धि

ख. आय का ऊंचा होना

ग. लाभ वृद्धि

घ. मांग वृद्धि

3. 'बिग पुष' सिद्धान्त की अल्पविकसित देशों के सम्बन्ध में निम्नलिखित में कौन सी मान्यता सही है।

क.पूँजी उत्पाद अनुपात अधिक है

ख. पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर है

ग. पूँजी–उत्पाद अनुपात कम है

घ. उपरोक्त में से कोई नहीं

4-किस अर्थशास्त्री का सम्बन्ध 'सन्तुलित विकास' के विचार धारा से नहीं है?

क. नेल्सन

ख. रोजेस्टी

ग. लीबन्स्टीन

घ. लेविस

6.5 सारांश

आर्थिक विकास केवल बड़ी छलांग या बड़े धक्के के द्वारा ही संभव है। इस दृष्टि से पूँजी स्टॉक उद्योगों मध्यम उद्योगों तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में लम्बवत सन्तुलन होना चाहिए। विभिन्न उपभोक्ता वस्तु उद्योगों में उनकी सापेक्षिक मांग के अनुसार 'समस्तर सन्तुलन होना चाहिए और पूँजीगत उद्योगों उपभोक्ता उद्योगों तथा सामाजिक उपरि सुविधाओं के बीच समस्तर सन्तुलन बना रहना चाहिये।

रोजेन्स्टीन रोडॉन के दृष्टिकोण की सबसे प्रमुख विशेषता तथा महत्व इस तथ्य में निहित है कि इन पिछड़े देशों की आर्थिक विकास की प्रक्रिया में बहुत बड़े पैमाने पर प्रयास तथा विनियोग के साथ आर्थिक विकास में राज्य की भूमिका पर बल दिया। यह भी बात सही है कि कुछ विनियोगों के न्यून आकार हैं, जिससे कम रहने पर वे आर्थिक रूप से लाभप्रद नहीं होंगे।

6.6 शब्दावली

प्रबल प्रयास– आवश्यक न्यूनतम मात्रा अर्थात् उच्च मात्रा में निवेश करना।

समय की अविभाज्यताः–सामाजिक उपरि पूंजी का निर्माण अन्य सीधे उत्पादक उद्योगों से पहले होना चाहिए।

स्थायित्व की अविभाज्यताः–बुनियादी ढांचे आम तौर पर लंबे समय तक चलते हैं। कम टिकाऊपन वाली ओवरहेड पूंजी या तो तकनीकी रूप से व्यवहार्य नहीं है या दक्षता में बहुत खराब है।

लंबी गर्भधारण अवधि की अविभाज्यताः–सामाजिक ओवरहेड पूंजी में निवेश, सभी मामलों में, अत्यधिक लंबी अवधि शामिल है अन्य प्रत्यक्ष उत्पादक चैनलों में निवेश की तुलना में उनके फलीभूत होने का समय।

सार्वजनिक उपयोगिताओं के एक अघुलनशील उद्योग मिश्रण की अविभाज्यताः– सामाजिक उपरि पूंजी को सामूहिक रूप से बढ़ना चाहिए। का एक अघुलनशील न्यूनतम उद्योग मिश्रण है विभिन्न सार्वजनिक उपयोगिताएँ जिन्हें एक ही झटके में बनाया जाना है।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. ख. रोस्टोव
2. घ. मांग वृद्धि
3. ख. पूँजी उत्पाद अनुपात स्थिर है
4. घ. लेविस

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

प्रो. एम0 एल0 झिगन– विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस दिल्ली 2010

प्रो. एस०एन० लाल आर्थिक विकास तथा आयोजन, शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद, 1999

प्रो. एस0पी0 सिह "आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन'' एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली

पी.एन. रोजेन्स्टीन–रोडन, 1943: पूर्वी और दक्षिण–पूर्वी यूरोप के औद्योगीकरण की समस्याएं, द इकोनॉमिक जर्नल खंड 53

6.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

Newes Ohthe Theory of "Big Push" in Economic Development of Latin America Ch- III (Eds) H-S- Ellis and W.W. Wallich 1961.

The Objectives of US Economic Assistance Programme 1957.

Stability and Progress: The Poorer Countries Problems in Satbillity and Progress in the World Economic D- Hague (Ed) 1958.

World Economic Growth & Retrospect and Prospect" R-E-S- August 1956.

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बड़े धक्के सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए । अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास हेतु किस प्रकार उपयुक्त है?

2. रोजेन्स्टीन रोडान के बड़े धक्के के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

खण्ड–2

इकाई–7

जान रोबिन्सन का संवृद्धि मॉडल

इकाई का संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उददेष्य
7.3 श्रीमती राबिन्सन का विकास प्रारूप
7.4 सिद्धान्त की पृष्ठ भूमि
7.5 श्रीमती राबिन्सन के सिद्धान्त की मान्यताए
7.6 आर्थिक समस्या
7.7 स्वर्ण युग
7.8 स्वर्ण युग के अन्य रूप
7.9 जान राबिन्सन के माडल की सीमायें
7.10 श्रीमती राबिन्सन के माडल का अर्थव्यवस्था में महत्व
7.11 सारांष
7.12 षब्दावली
7.13 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
7.14 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.15 उपयोगी सहायक ग्रन्थ
7.16 निबन्धात्मक प्रष्न

7.1 प्रस्तावना– इस इकाई के अन्तर्गत राबिन्सन के विकास मॉडल का विभिन्न परिस्थितियों में अध्ययन करेगें। श्रीमती जान राबिन्सन के द्वारा आर्थिक विकास में जनसंख्या वृद्धि पूंजी संचय की दर और उत्पादन वृद्धि का विष्लेषण करते हुये इसका सार प्रस्तुत किया जा रहा है। श्रीमती जोन राबिन्स ने सन् 1956 में प्रकाषित अपनी पुस्तक '' The Accumulation of Capital" में आधुनिक पूंजीवदी अर्थव्यवस्था के संम्बन्ध में एक विकास माडल का निर्माण किया था। श्रीमती राबिन्सन का यह माडल आर्थिक विकास के जनसंख्या वृद्धि के घटक को स्वीकार करते हुये पूंजी संचय की दर और उत्पादन वृद्धि पर, जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों का विष्लेषण प्रस्तुत करता है।

7.2 उददेष्यः–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी में निम्नलिखित पर समझ विकसित हो सकेगी।

1. आर्थिक विकास का क्या अर्थ है?
2. राबिन्सन का प्रारूप किस प्रकार की अर्थव्यवस्था से सम्बन्ध रखता है?
3. राबिन्सन के विकास प्रारूप के प्रमुख तथ्य क्या है?
4. स्वर्ण युग से क्या तात्पर्य है?
5. स्वर्ण युग के अन्य रूप क्या–क्या है?
6. राबिन्सन के माडल का महत्व समझ सकेगें।
7. राबिन्सन के माडल का अन्य माडलों से सम्बन्ध समझ सकेगें।

7.3 श्रीमती रॉबिन्सन का विकास

श्रीमती जोन राबिन्स ने सन् 1956 में प्रकाषित अपनी पुस्तक '' The Accumulation of Capital" में आधुनिक पूंजीवदी अर्थव्यवस्था के संम्बन्ध में एक विकास माडल का निर्माण किया था। श्रीमती राबिन्सन का यह माडल आर्थिक विकास के जनसंख्या वृद्धि के घटक को स्वीकार करते हुये पूंजी संचय की दर और उत्पादन वृद्धि पर जनसंख्या वृद्धि के प्रभावों का विष्लेषण प्रस्तुत करता है।

7.4 श्रीमती रॉबिन्सन के विकास प्रारूप का इतिहास

जोन राबिन्स के विकास प्रारूप का इतिहास – राबिन्सन का माडल हैरॉड मॉडल का विस्तार है। जॉन रॉबिन्सन का विकास का प्राम्प विभिन्न मॉडलो के विस्तार द्वारा प्रकाषित उनकी पुस्तक '' The Accumulation of Capital" में मिलता है। यह विकास के प्रारूप का महत्वपूर्ण मॉडल है। हम राबिन्सन मॉडल के अध्ययन से समझ सकेगे कि.... राबिन्सन के माडल निम्न दो तथ्यों पर आधारित हैः–

1. पूँजी निर्माण की दर आय के वितरण पर निर्भर करती है।
2. श्रम के प्रयोग की दर पूँजी की पूर्ति तथा श्रम की पूर्ति पर निर्भर करती है।

7.5 रॉबिन्सन के विकास प्रारूप की मान्यताऐं

राबिन्सन का माडल निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है।

1ण पूँजीवादी अबन्ध एवं बन्द अर्थव्यवस्था है।

2ण उत्पादन के केवल दो साधन पूँजी एवं श्रम

3ण पूँजी तथा श्रम स्थिर अनुपातों में प्रयोग होते हे जबकि तकनीकी प्रगति तटस्थ है।

4ण श्रम की कमी नहीं होती और उद्यमी जितना चाहें श्रम को रोजगार पर लगा सकते है अर्थात श्रम की असिमित पूर्वी है।

5ण श्रमिक वर्ग तथा उद्यमी वर्ग दो वर्गों का अस्तित्व है।

6ण श्रमिकों का बचत अतिरेक नही है।

7ण उद्यमी का समस्त बचत निवेष में बदल जाता है। स्थिर किमत स्तर की अवधारणा प्रयोग की गयी है।

8ण पूर्ण प्रतियोगिता होती है।

7.6 आर्थिक समस्याः–

अर्थषास्त्र में किसी भी तरह की समस्या वास्तविक जगत से सम्बन्धित होती है। जान राबिन्सन ने अपने मॉडल में स्वर्णयुग के अन्तर्गत जहा रोजगार पूर्ण रूप से होगा तथा पूँजी का पूर्णतः सदुपयोग होगा। राबिन्सन के षब्दों में– '' जब तकनीकी परिवर्तन तटस्थ हो और एक स्थिर गति से हो तब अर्थव्यवस्था **स्वर्ण युग** की स्थिति में होगी। अल्पविकसित अर्थव्यवस्थओं की समस्या स्थिरता की समस्या नहीं है बल्कि वह आर्थिक विकास की गति को तेज करने की समस्या है। रॉबिन्सन ने **स्वर्ण युग** की बात कही है स्वर्ण युग जब अर्थव्यवस्था पूर्णतः रोजगार की स्थिति में हो। जनसंख्या की वृद्धि दर संसाधनों की वृद्धि के बाराबर हो अर्थव्यवस्था में किसी भी प्रकार का कोई आपदा न हो, ऐसी स्थिति 'स्वर्ण युग' कहलायेगी।

7.7 स्वर्ण युग (Golden Age)

जब पूंजी की वृद्धि दर और जनसंख्या के वृद्धि दर बाराबर हो जाती है तो अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार कि स्थिति होती हैं। तथा संसधनों का पूर्ण रूप से दोहन होता है। या पूंजी तथा श्रम का पूर्ण नियोजन होता है जो अर्थ व्यवस्था की वृद्धि दर निर्धारित करती है। अर्थात पूजीं की वृद्धिमान दर जब श्रम

वृद्धिमान दर के बराबर हो जाये तो स्वर्ण युग की स्थिति होती है। स्वर्ण युग के विषय में श्रीमती राबिन्सन के अनुसार जब यांत्रिक प्रगति धीरे–धीरे होती रहती है तब बिना उत्पादन व्यवस्थाओं में परिवर्तन के अर्थव्यवस्था स्वतंत्र रूप से कार्य करती हे। जनसंख्या वृद्धि धीरे–धीरे होती है जबकि पूंजी संचय श्रम की आपूर्ति तथा उत्पादन क्षमता की तुलना में अधिक तेजी से होती है। लाभ की दर स्थिर रहती है। प्रति व्यक्ति उत्पादन के साथ वास्तविक मजदूरी में वृद्धि होती है। कुल वार्षिक उत्पादन की मात्रा श्रम ष्षक्ति तथा प्रति व्यक्ति उत्पादन में वृद्धि स्थिर अनुपात से बढती है जो राबिन्सन का स्वर्ण युग है।

7.8 स्वर्ण युग के अन्य रूप

श्रीमती रॉबिन्स द्वारा स्वर्ण युग के अतिरिक्त कुछ अन्य रूपों का वर्णन किया गया है जो निम्न है–

1. पंगु स्वर्ण युग
2. षीषा युग
3. प्रतिबन्धित स्वर्ण युग
4. रेंगता हुआ प्लेटिनम युग
5. उछलता कूदता प्लेटिनम युग
6. दोगला स्वर्ण युग
7. दोगला प्लेटिनम युग

7.9 श्रीमती जॉन रॉबिन्स के मॉडल की सीमाएंः–

श्रीमती रॉबिन्सन का मॉडल हैरॉड के वृद्धि मॉडल का विस्तार है। श्रीमती रॉबिन्सन की सम्भाव्य वृद्धि दर हैरड की प्राकृतिक वृद्धि दर है।

स्वर्ण युग में वास्तविक वृद्धि दर (G) तथा प्राकृतिक वृद्धि (Gn) एक–दूसरे के बराबर होती हैं, और अभीष्ट वृद्धि दर (Gw) उनके अनुरूप होती है। दोनो तटस्थ तकनीकी परिस्थितियों तथा स्थिर बचत–अनुपात को सीकार करते है। पर जॉन रॉबिन्सन का पूंजी संचय का सिद्धान्त मजदूरी तथा श्रम–उत्पादकता पर निर्भर है। इसके विपरीत हैराड का सिद्धान्त अचत–आय अनुपात तथा पूंजी उत्पादकता पर निर्भर है। रॉबिन्स का मॉडल पूंजी संचय में श्रम के महत्व पर बल देता है जबकि हैरॉड का मॉडल पूंजी के महत्व पर।

प्रो0 कुरिहारा के अनुसार–केन्स के बाद वृद्धि अर्थषास्त्र में श्रीमती रॉबिन्स का प्रमुख योगदान यह है कि उसने क्लासिकल मूल्य और वितरण सिद्धान्त तथा केन्ज के आधुनिक बचत–निवेश सिद्धान्त का एक सामंजस्यपूर्ण प्रणाली में एकीकरण कर दिया। परन्तु यदि श्रम–उत्पादकता मजदूरी दर लाभ दर और पूंजी–श्रम अनुपात व्यवहारिक नीति के लक्ष्य न माने जाये तो इसमें इतना सुधार नही हो सकता कि राजकोषीय मौद्रिक नीति प्राचलों का प्रवर्तन कर सकें जितना कि पूर्णतया योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था में उन्हें ऐसा समझा जाये।श

जॉन रॉबिन्स का मॉडल एक विकासशील अर्थव्यवस्था में जनसंख्या वृद्धि की समस्या को स्पष्ट रूप से सम्मिलित करता है और पूंजी संचय की दर तथा उत्पादन वृद्धि पर जनसंख्या के प्रभावो का विश्लेषण करता है। उनका मॉडल दो आधारभूत तथ्यों पर आधारित है–

1. पूँजी–निर्माण आय के वितरण पर निर्भर होती है।
2. श्रम के प्रयोग की दर पूंजी की पूर्ति और श्रम की पूर्ति पर निर्भर होती है।

7.10 मॉडल की कमियां (Weakness of the Model)

आर्थिक वृद्धि को निजी लाभ प्राप्तकर्ताओं पर छोड़ना असुरिक्षित है जो कि राबिन्सन के स्वतंत्र वृद्धि मॉडल की प्रमुख कमी है। रॉबिन्स का मॉडल बन्द अर्थव्यवस्था पर आधारित है जहाँ विदेषी व्यापार नही होता अर्थात आयात–निर्यात पूर्णतः बधित रहता है। जबकि विदेषी पूंजी तथा व्यपार विकास में सहायक है। यह मॉडल संस्थानिक साधनों की भी उपेक्षा करता है। इस मॉडल की सबसे बडी कमी कीमत स्तर का स्थिर मानना है। जबकि कीमते लगातार बढतें जाती है। यह माडल पूंजीश्रम स्थिर अनुपात जैसी अवास्तविक मान्यताओं पर अधारित है। क्योंकि उत्पादन में स्थिर गुणांक नहीं होता है ।

7.11 अभ्यास के प्रष्न

1. राबिन्सन ने अपना माडल कब प्रस्तुत किया।

क. 1956

ख. 1957

ग. 1955

घ. 1954

2. राबिन्सन माडल किस प्रकार की अर्थव्यवस्था के लिये उपयुक्त है–

क. विकसित

ख. विकासषील

ग. अल्प विकसित

घ. समाजवादी

3. राबिन्सन के अनुसार स्वर्णयुग का अर्थ है–

क. जनसंख्या वृद्धि दर तथा पूंजी निर्माण दर के बराबर

ख. जनसंख्या वृद्धि दर पूंजी वृद्धि दर के बाराबर

ग. पूंजी वृद्धि दर जनसंख्या वृद्धि दर से अधिक

घ. जनसंख्या वृद्धि दर पूंजी वृद्धि दर से अधिक

4. रॉबिन्स का विकास मॉडल किस मॉडल का विस्तार है?

क. हैराड के वृद्धि माडल

ख. सोलो माडल

ग. ल्योन्टिफ माडल

घ. न्यूमैन सिद्धान्त

7.12 सारांष–. यह माडल विकासषील अर्थव्यवस्था तथा उनकी समस्याओं को स्पष्ट रूप से सम्मिलित करता है। विषेष रूप से पूंजी संचय की दर तथा उत्पादन पर जनसंख्या के प्रभावों का, पूंजी निर्माण श्रम की आपूर्ति तथा प्रयोग की दर में समन्वय स्थापित करते हुये विष्लेषण करता है। इस प्रकार स्वर्ण युग की व्यख्या करता है। विकसित तथा विकासषील देषों की स्वर्णयुग संतुलन के मार्ग पर लौटने की संभावना पर विचार करता है।

7.13 षब्दावली–

तकनीकी प्रगति– रॉबिन्स के मॉडल में तकनीकी प्रगति तटस्थ है। तकनीकी प्रगति से तात्पर्य नवप्रवर्तन विकास ज्ञान में वृद्धि आदि अनेक परिवर्तन से है।

तटस्थ–तटस्थ से तात्पर्य एक समानता से है। अर्थात कोई भी परिवर्तन दिखाई न देना।

उद्यमी–उद्यमी से तात्पर्य साहसी से है जो विनियोग करता है। रॉबिन्स ने उद्यमी को महत्वपूर्ण माना है क्योंकि इनके मॉडल मे बचत केवल साहसी करते हैं, और विनियोग भी केवल साहसी ही करते हैं।

7.14 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1. क. 1956
2. ख. विकासषील
3. ख. जनसंख्या वृद्धि दर पूंजी वृद्धि दर के बाराबर
4. क. हैराड के वृद्धि माडल

7.15 सन्दर्भ सहित ग्रन्थ

कुलवन्त राय गुप्त2009–विकास का अर्थशास्त्र एवं नियोजन इतिहास & सिद्धान्त।

टी0आर0 जैन वी0 के0 ओरी–2006–07 ''डेवलेपमेन्ट इकोनोमिक्स'' वी0 के0 पब्लिकेषन।

सेन, अमर्त्य (1960), ग्रोथ इकोनॉमिक्स, पेंगुइन बुक्स।

रॉबिन्सन, जोन (1956) द एक्युम्यूलेशन ऑफ कैपिटल लंदनः मैकमिलन एंड कंपनी लिमिटेड।

रॉबिन्सन, जोन (1963) आर्थिक विकास के सिद्धांत में निबंध लंदनः मैकमिलन एंड कंपनी लिमिटेड

Development Studies, Vols 1 & 2, Ed. Robin Ghosh, K.R. Gupta a and Premjit Malti.

Kenneth K. Kurihava, the Keynesion theory of Economic Development (London-1961) P. 79-80.

7.16 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ पाठ्य सामग्री

क्यूवर्स, लूडो (1979)। "जोन रॉबिन्सन का आर्थिक विकास का सिद्धांत"। विज्ञान और समाज. 43 (3): 326–348. जेएसटीओआर 40402186।

गंडोल्फो, जी. (1967)। "जोन रॉबिन्सन के विकास मॉडल पर कुछ आलोचनात्मक टिप्पणियाँ"। रिविस्टा डि पोलिटिका इकोनॉमिका। 57.

टोबिन, जेम्स (1989)। "विकास और वितरणः एक नियोक्लासिकल कलडोर–रॉबिन्सन व्यायाम"। कैम्ब्रिज जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस। 13 (1): 37–45. जेएसटीओआर 23598147

7.17 निबन्धात्मक प्रष्न

1.श्रीमती जॉन रॉबिन्स के आर्थिक वृद्धि के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

2.'स्वर्ण युग' से आप क्या समझते है ? जॉन रॉबिन्स की इस धारणाा की व्याख्या कीजिए।

3.अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के संबंध में रॉबिन्स के मॉडल की आलोचनात्मक सीमक्षा कीजीए।

खण्ड–02

इकाई–08

तकनीकी द्वय मॉडल

इकाई का संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 तकनीकी द्वैतवाद
8.3.1 तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय
8.3.2 समीक्षात्मक मूल्यांकन
8.3.3 तकनीकी द्वैतवाद के दोष
8.4 अभ्यास हेतु प्रश्न
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.9 उपयोगी/सहायक ग्रन्थ, पाठ्य सामग्री
8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

द्वैत आर्थिक संरचना वर्तमान अल्पविकसित देशों की एक सामान्य विशेषता है जिसमें दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं का सह–अस्तित्व पाया जाता है। अल्पविकसित देशों में एक ओर आधुनिक अर्थव्यवस्था तथा दूसरी ओर परम्परागत अथवा पिछडी अर्थव्यवस्था की विशेषताएं होती हैं। इन दो परस्पर विरोधी अर्थव्यवस्थाओं के सह–अस्तित्व के कारण द्वैतवाद की समस्या उत्पन्न होती है। विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा द्वैतवाद की समस्या का अध्ययन करने के लिए अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया जिनमें हिग्गिन्स द्वारा प्रतिपादित तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्तश महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्रों में निम्नलिखित की समझ विकसित हो सकेगी–

1. तकनीकी द्वैतवाद क्या है?
2. तकनीकी द्वैतवाद की क्या विशिष्टताएं है?
3. हिग्गिन्स द्वारा प्रतिपादित तकनीकी द्वैतवाद के सिद्धान्त के प्रमुख दोष क्या हैं?
4. तकनीकी द्वैतवाद को व्यवहारिक जीवन मे समझ सकेगें।

8.4 तकनीकी द्वैतवाद (**Technological Dualism**)

बूके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में प्रोफेसर हिग्गिन्स ने तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादि किया है जो बूके की अपेक्षा अधिक यथार्थवादी माना जाता है। जिसकी चर्चा इस इकाई में किया जा रहा है।

8.4.1 तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय

तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा पंरपरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी तथा देहाती क्षेत्र में अल्प– रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिग्गिन्स का प्रौद्योगिकी द्वैतवाद का सिद्धान्त ऐकॉस (R-S- Eckaus) द्वारा विवेचित साधन अनुपातों की समस्या को शामिल करता है, और उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से संबंध रखता है, जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न सीमित साधन–सम्पन्नताओं तथा उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पाई जाती है।

वास्तव में अल्पविकसित देशों की एक विशिष्टिता साधन स्तर पर संरचनात्मक असंतुलन है। साधन स्तर पर असंतुलन या तो इस कारण उत्पन्न होता है कि एकल साधन विभिन्न प्रयोगों में विभिन्न प्रतिफल प्राप्त करता है, या इसलिए कि साधनों के बीच कीमत संबंध साधन प्राप्यताओं से मेल नहीं खाते। डॉ. ऐकॉस के अनुसार ऐसे असंतुलन से अल्पविकसित देशों में दो प्रकार से बेरोजगारी या अल्प–बेरोजगारी होती है। प्रथम कीमत प्रणाली में अपूर्णताओं या कु–कार्यकरण से दूसरे वर्तमान प्रौद्योगिकी या माँग की संरचना में बाधाओं से, जो अति जनंसख्या वाले पिछड़े हुए देशों में अतिरेक श्रम का कारण बनती है। अतः एक अल्पविकसित देश में संरचनात्मक बेरोजगारी का संबंध अतिरेक श्रम से होता है जो साधनों के कुवितरण माँग की संरचना और प्रौद्योगिकीय रूकावटों से उत्पन्न होता है।

बैंजामिन हिग्गिन्स ने अपने सिद्धान्त का निर्माण दो वस्तुओं के उत्पादन के दो साधनों और दो क्षेत्रों के आधार पर, उनके साधन सम्पन्नता तथा उत्पादन–फलनों से किया है। इन दो क्षेत्रों में से एक औद्योगिक क्षेत्र बागानों, खानों, तेल–क्षेत्रों, रिफाइनरियों या बड़े पैमाने के उद्योगों में प्रवृत्त रहता है यह पूँजी – गहन होता है। तकनीकी गुणांक इसे विशिष्टता प्रदान करते हैं। दूसरे शब्दों में साधनों की तकनीकी स्थानापन्नता नहीं होती और उन्हें स्थिर अनुपातों में मिलाया जाता है। दूसरा ग्रामीण क्षेत्र खाद्य वस्तुओं के उत्पादन, दस्तकारी या बहुत छोटे उद्योगों में प्रवृत्त रहता है। इसके उत्पादन के तकनीकी गुणांक परिवर्ती होते हैं ताकि यह तकनीकों के विस्तृत क्षेत्र और श्रम तथा पूँजी (जिसमें सुधारी हुई भूमि भी शामिल है) के वैकल्पिक संयोगों से एक ही वस्तु का उत्पादन कर सके।

दो क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों के दिए हए होने पर प्रोफेसर हिग्गिन्स ने उस प्रक्रिया का विश्लेषण किया है जिसके परिणामस्वरूप तकनीकी द्वैतवाद ने द्वैतीय अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी और अदृश्य बेरोजगारी बढ़ाई है। दो क्षेत्रों में से औद्योगिक क्षेत्र विदेशी पूँजी की सहायता से विकास तथा विस्तार करता है। इस प्रकार इस क्षेत्र में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप पूँजी – संचय की दर जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक हो जाती है। क्योंकि यह क्षेत्र पूँजी – गहन तकनीकों और स्थिर तकनीकी गुणांकों का प्रयोग करता है। इसलिए यह उसी दर से रोजगार के अवसर उत्पन्न नहीं कर सकता जिससे जनसंख्या बढ़ती है। बल्कि यह भी हो सकता है कि औद्योगीकरण उस क्षेत्र में कुल रोजगार के अनुपात में सापेक्ष कमी ला दे।श इस प्रकार अतिरेक श्रम के पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं कि वह ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार ढूंढ़े।

विकास प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पहले ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन के साधनों की न तो प्रचुरता होती है और न ही दुर्लभता। शुरू में तो यह सम्भव है कि अधिक भूमि को काश्त में लाकर अतिरिक्त श्रम शक्ति को खपा लिया जाए। इसके परिणामस्वरूप श्रम तथा पूँजी (सुधारी हुई भूमि) के अनुकूलतम संयोग बनते हैं क्योंकि उत्पादन बढ़ता है। उस क्षेत्र में श्रम का उपलब्ध पूँजी से अनुपात धीरे–धीरे बढ़ता जाता है और क्योंकि तकनीक गुंणाक उपलब्ध है इसलिए इस क्षेत्र में तकनीकें उत्तरोत्तर परिवर्ती बनती जाती हैं। उदाहरणार्थ कई एशियाई देशों में परिवर्ती शुष्क धान खेती के स्थान पर जलयुक्त धान खेती से स्थानापन्न

कर दी गई है। अन्ततः बहुत अधिक श्रम– गहन तकनीकों द्वारा समस्त उपलब्ध भूमि काश्त हो जाती है और श्रम की सीमान्त उत्पादकता गिरकर शून्य या शून्य से भी कम हो जाती है। इस प्रकार जनसंख्या की निरंतर वृद्धि होने पर अदृश्य बेरोजगारी प्रकट होने लगती है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत कृषकों के लिए कोई प्रेरणा नहीं होती कि वे अधिक पूँजी लगाएं अथवा श्रमबचत तकनीकें अपनाएं। इसके अतिरिक्त न तो प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने की कोई तकनीक उपलब्ध है और न ही श्रम की ओर से अपने आप उत्पादन बढ़ाने का कोई प्रोत्साहन होता है। परिणाम यह होता है कि ग्रामीण क्षेत्र में उत्पादन की तकनीकें श्रम–घण्टा उत्पादकता तथा सामाजार्थिक कल्याण एक निम्न स्तर पर रहते हैं।

दीर्घकाल में प्रौद्योगिकी प्रगति अदृश्य बेरोजगारी को दूर करने में सहायक नहीं होती बल्कि उसे बढ़ाती है। प्रोफेसर हिगिन्स का मत है कि पिछली दो शताब्दियों में देहाती क्षेत्र में बहुत थोड़ी या नहीं के बराबर प्रौद्योगिकीय प्रगति हुई है। इससे अदृश्य बेराजगारों की संख्या बढ़ी है। ट्रेड यूनियन क्रियाओं अथवा सरकार की नीति के परिणामस्वरूप मजदूरी की कृत्रिम ऊंची दरों ने इस स्थिति को ओर भी अधिक गम्भीर बना दिया है। क्योंकि उत्पादकता की सापेक्षता में ऊंची औद्योगिक मजदूरी दरें उद्यमियों को इस बात के लिए प्रेरित करती हैं कि वे श्रम–बचत तकनीकें अपनाएं जिसका परिणाम यह होता है कि अतिरेक श्रम को खपा सकने की औद्योगिक क्षेत्र की क्षमता और भी कम हो जाती है। इसलिए ये साधन अल्पविकसित देशों में औद्योगिकीय द्वैतवाद की प्रवृत्ति बनाए रखते हैं।

8.4.2 समीक्षात्मक मूल्यांकन (Critical Appraisal)

प्रोफेसर हिग्गिन्स ने आधुनिक तथा परम्परागत क्षेत्रों का ऐतिहासिक विकास– क्रम प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जिसके कारण पहले क्षेत्र में धीरे–धीरे बेराजगारी बढ़ती जाती है। द्वैतीय समाजों के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे–धीरे कैसे बढ़ती जाती है।

8.4.3 तकनीकी द्वैतवाद के दोष (Defects of Technological Dualism)

तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह कुछ दोषों से परिपूर्ण है इसके प्रमुख दोष निम्नवत् हैं –

1. औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर नहीं होते हैं। (Technological Coefficients are not fixed in industrial sector) – बिना किसी प्रमाण के यह मानना सही नहीं है कि औद्योगिक क्षेत्र में तकनीकी गुणांक स्थिर पाए जाते हैं क्योंकि जहां ग्रामीण क्षेत्र में परिवर्ती तकनीकी गुणांकों से उत्पादन हुआ है, वहां यह सन्देहास्पद है कि औद्योगिकीय क्षेत्र में उत्पादन वास्तव में स्थिर गुणांकों से होता रहा है।

2. श्रम खपाने वाली तकनीकों की अवहेलना (Neglect of the use of labour absorbing techniques) – हिग्गिन्स का यह कथन कि औद्योगिक क्षेत्र में प्रयोग के लिए अत्यन्त पूँजी गहन प्रक्रियाएं आयात की जाती हैं श्रम खपाने वाली अन्य तकनीकों के प्रयोग की पूर्णरूप से अवहेलना करता है। सब आयातित तकनीकें श्रम की बचत करने वाली नहीं होती। उदाहरणार्थ जापान का कृषि विकास पूँजी–गहन तकनीकों के कारण नहीं हुआ है बल्कि यह अच्छे बीजों, सुधरी हुई खेती के ढंगों, उर्वरकों के अधिक प्रयोग आदि के कारण हुआ है।

3. संस्थानिक साधनों की उपेक्षा (Neglect of institutional factors) – हिग्गिन्स ने ऐसे अनेक संस्थानिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों की उपेक्षा की है जो साधन अनुपातों को भी प्रभावित करते हैं।

4. साधन कीमतें, साधन सम्पन्नताओं पर निर्भर नहीं करती (Factor prices do not depend upon factor endowments) – यह सिद्धान्त इस ओर संकेत करता है कि किस कारण साधन सम्पन्नताओं एवं विभिन्न उत्पादन फलनों ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी को जन्म दिया है। यह साधन कीमतों के ढंग से महत्वपूर्ण रुप से सम्बद्ध है। परन्तु साधन कीमतें केवल साधन सम्पन्नताओं पर ही निर्भर नहीं करतीं।

5. अदृश्य बेरोजगारी की प्रकृति एवं आकार को स्पष्ट नहीं किया (Nature and size of disguised unemployment not clarified) – हिग्गिन्स ने ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी तथा औद्योगिक क्षेत्र में अतिरिक्त श्रम – पूर्ति की प्रकृति को स्पष्ट नहीं किया है और न ही उन्होंने तकनीकी द्वैतवाद से उत्पन्न होने वाली अदृश्य बेरोजगारी की वास्तविक सीमा की चर्चा की है।

8.5 अभ्यास हेतु प्रश्न

1. सामाजिक द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया?

क. गुन्नार मिर्डल

ख. एच०मिन्ट

ग. जे0एच0बूके

घ. इनमें से कोई नहीं

2. तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त किसके द्वारा प्रतिपादित किया गया?

क. बैन्जामिन हिगिन्स

ख. एच०मिन्ट

ग. जे0एच0बूके

घ. इनमें से कोई नहीं

3. तकनीकी द्वैतवाद के सम्बन्ध में कौन सा कथन सही है–

क. विकास प्रक्रिया प्रारम्भ होने से पहले ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन के साधनों की प्रचुरता नहीं होती है।

ख. प्रारम्भ में वेरोजगारी बढती है।

ग. औद्योगिक क्षेत्र विदेषी पूंजी के सहायता से विकास तथा विस्तार करता है।

घ. उपरोक्त सभी

4. तकनीकी द्वैतवाद का सिद्धान्त किस सिद्धान्त का विकल्प है–

क. समाजिक द्वैतवाद

ख. तकनीकी द्वैतवाद

ग. राजनैतिक द्वैतवाद

घ. आर्थिक द्वैतवाद

8.6 सारांश

बुके के सामाजिक द्वैतवाद के विकल्प के रूप में बैन्जामिन हिगिन्स ने तकनीकी अथवा प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। तकनीकी द्वैतवाद से अभिप्राय यह है कि एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था के विकसित तथा पंरपरागत क्षेत्रों में विभिन्न उत्पादन फलनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के द्वैतवाद ने औद्योगिक क्षेत्र में संरचनात्मक या तकनीकी बेरोजगारी तथा देहाती क्षेत्र में अल्प–रोजगार की समस्या को बढ़ाया है। हिगिन्स का तकनीकी द्वैतवाद का यह सिद्धान्त आर. एस. रेकॉस द्वारा विवेचित साधन अनुपातों की समस्या को शामिल करता है एवं उन सीमित उत्पादकीय रोजगार सुविधाओं से सम्बन्ध रखता है जो बाजार की अपूर्णताओं, विभिन्न साधन सम्पन्नताओं एवं उत्पादन फलनों के कारण अल्पविकसित अर्थव्यवस्थाओं के दो क्षेत्रों में पायी जाती है। प्रौद्योगिकीय द्वैतवाद बूके के सामाजिक द्वैतवाद

से श्रेष्ठ प्रतीत होता है। यह यथार्थिक है क्योंकि यह इस बात पर विचार करता है कि द्वैतीय समाजों के ग्रामीण क्षेत्र में अदृश्य बेरोजगारी धीरे–धीरे कैसे बढ़ती जाती है। तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त में अनेक गुण होने के उपरान्त भी यह अनेक दोषों से परिपूर्ण है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष के रुप में यह कहा जा सकता है कि बूके के सामाजिक द्वैतवाद एवं हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धान्त का आर्थिक विकास के सिद्धान्तों के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि दोनों के अपने–अपने गुण एवं दोष हैं। तकनीकी द्वैतवाद का विचार सामाजिक द्वैतवाद की तुलना में कुछ अधिक आधुनिक प्रतीत होता है। इसमें अदृश्य या छिपी बेरोजगारी की समस्या को समझाने का प्रयास किया गया है।

8.7 शब्दावली

पूँजी निर्माण (Capital Formation) – कुल आय में से पृथक किया गया वह धन जिसे उद्योगों कृषि सेवा आदि क्षेत्रों में उत्पादन बढाने हेतु लगाया जाता है।

श्रम की सीमांत उत्पादकता (Marginal Productivity of Labour) – श्रम की एक अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने पर कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि । प्रायः श्रम की सीमांत उत्पादकता श्रम की अंतिम इकाई से प्राप्त होने वाली उत्पादन की मात्रा होती है।

बन्द अर्थव्यवस्था (Closed Economy) एक ऐसी अर्थव्यवस्था जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में शामिल नहीं होती है।

अदृश्य बेरोजगारी (Disguised Unemployment)– यह बेरोजगारी प्रकट रूप में दिखाई नहीं देती है। इस दशा में श्रमिक काम में लगा हुआ प्रतीत होता है किन्तु उत्पादन में उसका योगदान नगण्य या शून्य होता है अर्थात् श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता शून्य होती है।

सीमान्त भौतिक उत्पादकता (Marginal Physical Productivity)– जब सीमान्त उत्पादकता को उत्पादन (वस्तुओं) की भौतिक मात्रा में होने वाली वृद्धि के रूप में व्यक्त किया जाता है तो उसे सीमान्त भौतिक उत्पादकता कहते हैं अर्थात् यह किसी साधन की अतिरिक्त इकाई का प्रयोग करने से कुल उत्पादन में होने वाली वृद्धि को व्यक्त करती है।

पैमाने के स्थिर प्रतिफल (Constant Returns to Scales)– जब उत्पादन के किसी एक साधन या अनेक साधनों को जिस अनुपात में बढ़ाया या घटाया जाता है यदि उत्पादन में भी उसी अनुपात में वृद्धि या कमी हो तो उसे पैमाने के स्थिर प्रतिफल की स्थिति कहते हैं।

बाह्य घटक (Eogenous Factor) – एक ऐसा घटक जो मॉडल के कार्य को प्रभावित तो करता है किन्तु मॉडल में दिये गये सम्बन्धों का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग. जे0एच0बूके
2. क. बैन्जामिन हिगिन्स
3. घ. उपरोक्त सभी
4. क. समाजिक द्वैतवाद

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

झिंगन एम. एल. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. दिल्ली 2003

सिंह योगेश कुमार एवं गोयल आलोक कुमार विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली 2008
सिन्हा वी. सी. आर्थिक संवृद्धि और विकास मयूर पेपर बैक्स नौएडा 2007
Agarwal R. C. : "Economics of Development and Planning" Lakshmi Narayan Agarwal Agra 2007
Taneja M.L. & Myer R.M.: "Economics of Development and Planning" Vishal Publishing Co-Delhi 2010

8.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

Bocke J.H. : "Economics and Economic Policy of Dual Societies"1953 "Three Forms of Disintegration in Dual Societies" Indonesia April 1954 and "Western Influence on the growth of Eastern Population" Economics Internazionale May 1954.
Higgins Benjamin : "The Dualistic Theory of Underdeveloped Areas" Economic Development and Cultural Change January 1956.
Higgins Benjamin : "Economic Development Principles Practice and Policies"
Meier G.M.: "Leading Issues in Economic Development" Oxford University Press Delhi 1989.
Lewis W. Arthur : "Theory of Economic Growth"
Meier and Baldwin: "Economic Development"
Kindleberger C. P. : "Economic Development"
Misra S. K. & Puri V.K.:"Economic Development and Planning"

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तकनीकी द्वैतवाद सिद्धांत की व्याख्या कीजिए। यह सिद्धांत अन्य सिद्धांतो से क्यों श्रेष्ठ है?
2. हिगिन्स के तकनीकी द्वैतवाद सिद्धांत की विवेचना कीजिए। इसकी क्या सीमाएं हैं?
3. तकनीकी द्वैतवाद को उदाहरण सहित स्पष्टीकरण किजिए ?

खण्ड–03

इकाई–01

निरपेक्ष एवं सापेक्ष गरीबी

इकाई की रूप रेखा

1.1प्रस्तावना
1.2 उददेष्य
1.3 गरीबी
1.4 गरीबी के प्रकार
1.4.1 सापेक्ष गरीबी
1.4.2 सापेक्ष गरीबी मापने की विधि
1.4.3 लारेंन्ज वक्र
1.4.4 गिनी गुणांक
1.5 निरपेक्ष गरीबी
1.5.1 निरपेक्ष गरीबी के माप
1.5.2 गरीबी रेखा
1.6 बहुआयामी गरीबी दृष्टिकोण (तेदुलकर तथा रंगराजन समीति))
1.7 गरीबी के दुष्परिणाम

1.8 गरीबी दूर करने के उपाय
1.9 बोध प्रष्न
1.10 सारांष
1.11 षब्दार्थ सूची
1.12 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें
1.13 बोध प्रष्नों के सम्भावित उत्तर
1.14 विषयनिष्ठ प्रष्न

1.1 प्रस्तावना

गरीबी एक विकट समस्या है इसे दूर करने हेतु वैष्विक स्तर पर लगातार प्रयास किये जा रहे है जिसमें विष्व बैंक संयुक्त राष्ट्र संघ तथा विभिन्न संस्थाए अपने–अपने स्तर से प्रयासरत है। गरीबी को परिभाषित करने का प्रयास लगातार किया जा रहा है जिससे गरीबी का आकलन ठीक ढंग से किया जा सके। इस इकाई में गरीबी के विभिन्न आयाम परिभाषा माप तथा उसके दुषपरिणाम पर विस्तृत चर्चा की जायेगी।

1.2 उददेष्य

इस इकाई को पढने के बाद छात्रों में निम्नलिखित की समझ विकसित हो सकेगी–

अ– छात्र गरीबी को परिभाषित कर सकेगें।

ब– छात्र गरीबी के बारे में जान सकेगें।

स– छात्र गरीबी के प्रकारों को जान सकेगें।

द– छात्र निरपेक्ष तथा सापेक्ष गरीबी में भेद कर सकेगें।

य– छात्र गरीबी के दु''परिणामको परिभाषित कर सकेगे।

1.3 गरीबी–

विष्व बैंक लोगो की एक न्यूनतम जीवन निर्वाह के स्तर को प्राप्त करने की असमर्थता ही गरीबी है।

गरीबी मूलतः वंचन से संबंधित है।

गरीबी से आषय जीवन की कुछ निर्दिष्ट आवष्यकताओं की पूर्ति से वंचित रहने से है। सामान्य शब्दों में व्यक्ति या समूह जो अपनी मूलभूत आवष्यकताओं (रोटी कपड़ा मकान) की पूर्ति नही कर पाता है उसे गरीबी कहते है।

गरीबी एक ठीक–ठाक जिन्दगी जीने के लिए चरणों (choice) तथा अवसरों (opportunity) के नकारने (deny) से सम्बन्धित है। वास्तव में यही मानव गरीबी की धारणा है। इसका मतलब यह है कि मानव विकास के लिए जो आधार भूत अवसर तथा कारण है, वे उपलब्ध नही है। एक लम्बा स्वास्थ सृजनात्मक जिन्दगी जीने का अधिकार उपलब्ध नही है तथा वह एक अच्छे जीवन निर्वाह की सुविधाओं का आनन्द नही उठा पा रहा है। वह स्वतत्रता इज्जत, आत्म–सम्मान आदि से वंचित है।

अमर्त्य सेन लोगो को इतना गरीब नही होने देना चाहिए कि उनसे घिन आने लगे या वे समाज को नुकसान पहुंचाने लगें।

इस नजरियें में गरीबों के कष्ट और दुखों का नही बल्कि समाज की असुविधाओं और लागतों का महत्व अधिक प्रतीत होता है। गरीबी की समस्या उसी सीमा तक चिन्तनीय है, जहाँ तक कि उसके कारण, जो गरीब नही है को भी समस्याएं भुगतनी पड़ती है। **अर्थात** गरीबी सुविधाओं का अभाव है उपकरण है, जो कुछ शर्तो एवं परिस्थितियों पर निर्भर करती है। जैसा कि व्यक्ति विवेकषील है, समाज प्रगतिषील है, प्राकृतिक विपदाए नही है आदि।

नर्क्स ने गरीबी के दुष्चक्र का सिद्वान्त भी दिया है।

नर्क्स के अनुसार गरीबी नक्षत्र मंडल के समान वृत्ताकार ढंग से धूमती हुई ऐसी शक्तियों से है जो एक दूसरे पर इस प्रकार क्रिया प्रतिक्रिया करती है कि एक निर्धन देष निर्धनता की अवस्था में बना रहता है।

अतः जीवन जीने के लिए न्यूनतम उपभोग आवष्यकताओं को प्राप्त करने की अयोग्यता को ही गरीबी कहते है।

1.4 गरीबी के प्रकार

मुख्यतः दो प्रकार की गरीबी होती है।

01–**सापेक्ष गरीबी (Relative poverty)**

02–निरपेक्ष गरीबी (Absolute poverty)

1.4.1 सापेक्ष गरीबी– सापेक्ष गरीबी यह स्पष्ट करती है कि विभिन्न आय वर्गो के बीच कितना विषमता है। सापेक्ष गरीबी यह व्यक्त करती है कि सामाज का एक वर्ग आय या उपभोग के स्तर की दृष्टि से सम्पूर्ण समाज या अर्थव्यवस्था के औसत आय या उपभोग नीचे है। सापेक्षिक गरीबी की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब किसी देष या क्षेत्र के कुछ लोगों की आय या जीवन का स्तर सामान्य लोगों से निम्न होता है। समाज के औसत व्यक्ति की तुलना में किसी व्यक्ति के उपभोग आय व सम्पत्ति के अभाव या कमी के सापेक्षिक गरीबी कहते है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से या तो सापेक्षिक गरीब होगा या सापेक्षिक अमीर होगा। सम्पूर्ण समाज को भी इसी दृष्टिकोण से देखा जा सकता है। अर्थात आय की विषमता सापेक्षिक गरीबी का मूल आधार के रूप में देखी जाती है।

1.4.2 सापेक्ष गरीबी की मापः– सापेक्ष गरीबी को मापने के लिए दो विधियों को प्रयोग में लाया जाता है।

01–लारेंज वक्र विधि

02–गिनी गुणांक

1.4.3 लारेन्ज वक्र–लारेन्ज वक्र को मैक्स ओ लारेन्ज ने 1905 में विकसित किया। लारेन्ज वक्र के प्रत्येक बिन्दु उन परिस्थितियों या व्यक्तिों को प्रदर्षित करते है जो एक निष्चित आय के प्रतिषत के नीचे है। यदि हम यह प्रदर्षित करें कि कुल आय का 10 प्रतिषत भाग मान लीजिए 20 प्रतिषत के पास है। इसी प्रकार 20प्रतिषत 30 प्रतिषत आय को धारित करने वाले परिवारो को ज्ञात कर सकते है। इनसे सम्बन्धित बिन्दु ज्ञात कर सकते है। इन बिन्दुओं से जाने वाली रेखा को लारेन्ज वक्र कहेंगे। लारेन्ज वक्र को खीचने के लिए हम X अक्ष पर परिवारों को संचयी प्रतिषत (community) रखते है जबकी Y अक्ष पर कुल आय का संचयी प्रतिषत लेते है लारेन्ज वक्र शून्य से शुरू होकर 100 पर समाप्त होगा। यदि समाज के 10प्रतिषत लोगों के पास कुल आय का 10 प्रतिषत हो 20 प्रतिषत के पास 20 प्रतिषत आय हो तो इन्हे प्रदर्षित करने वाली रेखा 45 डिग्री रेखा होगी। इस रेखा को हम पूर्ण समता रेखा या निरपेक्ष समता रेखा भी कहते है। यह एक मानक या काल्पनिक रेखा होगी। वास्तविक आंकाडों पर आधारित लारेंज वक्र इस समता रेखा से जितनी ही दूर होगी विशमता उतनी ही अधिक होगी जैसा रेखाचित्र में प्रदर्षित है।

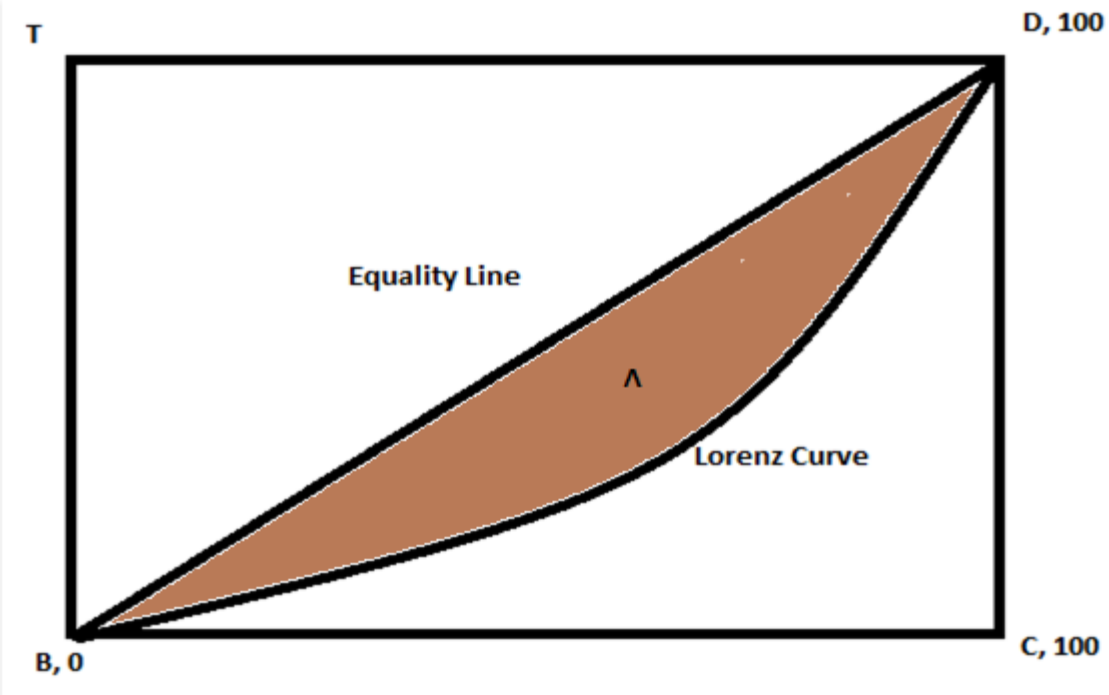

जनसंख्या का प्रतिशत

लारेन्ज वक्र जितनी ही निरपेक्ष समत रेखा के पास होगी आय की विषमता उतनी ही कम होगी। यदि सम्पूर्ण आय किसी एक ही व्यक्ति के पास हो तो पूर्ण असमान आय वितरण होगा और इसे प्रदर्षित करने वाली रेखा बी0टी0 होगी।

1.4.4 गिनी गुणांक–गिनी गुणांक को 1912 में इटैलियन सांख्यिक कोरेडो गिनी ने विकसित किया। गिनी गुणांक आय के वितरण की विषमता की माप की सबसे प्रचलित विधि है जो आय के प्रत्येक युग्म के बीच अन्तर की करती है। यह वास्तविक लारेंज वक्र तथा निरपेक्षा समता रेखा बीच क्षेत्रफल तथा निरपेक्ष समता रेखा की नीचे के सम्पूर्ण क्षेत्र के बीच अनुपात प्रदर्षित करता है।

ऊपर दिये गये चित्र में

गिनी गुणांक (G)= $\frac{\text{छायांकित क्षेत्र (A)}}{\text{समता रेखा के नीचे सम्पूर्ण क्षेत्रफल बी0सी0डी0}}$

यदि $G=0$ तो प्रत्येक व्यक्ति को एक ही आय मिल रही है यदि $G=1$ तो एक ही व्यक्ति पूरी आय प्राप्त कर रहा है। इसलिए गिनी गुणांक का अधिकतम मूल्य 1 के बराबर होगा (उस समय जबकि निरपेक्ष विषमता हो) तथा न्यूनतम मूल्य शून्य के बराबर होगा (जबकि निरपेक्ष समता हो)। सैद्वान्तिक रूप से कुछ बिरली स्थितियों में गिनी गुणांक का मूल्य से अधिक हो सकता है जबकि जनसंख्या की आय ऋणात्मक (–) हो पर व्यवहारिक रूप से ऐसा सम्भव नही है। गिनी गुणांक का सामान्यता प्रयोग जनसंख्या में आय या सम्पत्ति वितरण की विषमता की माप के लिए करते पर हम गिनी गुणांक का प्रयोग किसी प्रकार की विषमता आदर्ष स्थिति से विचलन की माप के लिए कर सकते है। जैसे क्षेत्रीय विषमता, किसी सामाजिक कल्याण सम्बन्धी प्रोग्राम के प्रभाव की माप (आदर्ष रूप में कितना होना चाहिए तथा वास्तविक स्थिति उससे कितनी दूर है), नस्लीय अलगाव आदि के लिए कर सकते है।

गिनी गुणांक में यदि 100 से गुणा कर दे तो तो हमें गिनी सूचकांक मिल जायेगा। उल्लेखनीय है कि लारेन्ज वक्र तथा गिनी गुणांक आय की विषमता की माप से सम्बन्धित है आय की विषमता को प्रति व्यक्ति आय

या कुजनेटस विषमता वक्र से मापा जा सकता है। इसे विभिन्न आय वर्गो में जनसंख्या के प्रतिषत बंटवारे के आधार पर भी मापा जा सकता है।

1.5 निरपेक्ष गरीबी–चूकि सापेक्षिक गरीबी से इस बात की जानकारी नहीं हो पाती है कि गरीब लोगों की संख्या क्या है। इस कमी को दूर के लिए हम निरपेक्ष गरीबी की बात करते है। निरपेक्ष गरीबी के अन्तर्गत हम एक निष्चित मापदण्ड के आधार पर तय करते हैं कि कितने लोग इस मापदण्ड के नीचे है, और उन्हें हम गरीब कहते हैं। इस निष्चित मापदण्ड के हम गरीबी रेखा कहते है। निरपेक्ष गरीबी की स्थिति में मनुष्य की बुनियादी आवष्यकताओं जैसे–भोजन स्वच्छ पेयजल स्वच्छता सुविधाओं स्वास्थ एंव षिक्षा इत्यादि का अभाव होता है। भारत में निरपेक्ष गरीबी का अनुमान लगाने के लिए गरीबी रेखा की अवधारणा का प्रयोग किया जाता है।

निर्धनता रेखा या गरीबी रेखा वह रेखा है जो उस प्रति व्यक्ति औसत मासिक व्यय को प्रकट करती है जिसके द्वारा लोग अपनी न्यूनतम आवष्यकताओं को संतुष्ट कर सकते है। जिन लोगों का प्रतिमाह उपभोग व्यय गरीबी रेखा से कम है उन्हे निर्धन माना जाता है। गरीबी ज्ञात करने की इस विधि को हम हेड काउंट विधि कहते है।

हेड कांउट विधि में कुल जनसंख्या में शामिल उन व्यक्तियों को गिना जाता है जो गरीबी रेखा से नीचे है। भारत में गरीबी मापन में हेड कांउट विधि का प्रयोग किया जाता है।

1.5.1 निरपेक्ष गरीबी के माप–

जैसा कि ऊपर यह स्पष्ट किया गया है कि निरपेक्ष गरीबी मापन में मुख्यतः हेड काउट विधि (Head count mathod) का प्रयोग किया जाता है।

प्रष्न–यह उठता है कि गरीबी रेखा का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है– गरीबी वास्तव में न्यूनतम आवष्यक पोषण स्तरश के वंचन के रूप में परिभाषित की जाती है। इसलिए गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए हम यह निर्धारित करते है कि एक व्यक्ति के जीवन निर्वाह के लिए खाद्य ऊर्जा पोषणीय स्तर क्या होगा जिसे हम प्रतिदिन न्यूनतम कैलोरी आवष्यकता के रूप में व्यक्त करते है। स्पष्ट है इस प्रतिदिन न्यूनतम कैलोरी स्तर की आवष्यकता के लिए खाद्यान्न की मात्रा निर्धारित करते है। 1978 में योजना आयोग द्वारा यह निर्धारित किया कि ग्रामीण क्षेत्र में 2400 कैलोरी प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी की मात्रा निष्चित की गयी। इस कैलोरी को प्राप्त करने के लिए हम खाद्यान्न की मात्रा निर्धारित करते है तथा उसे मूल्यस्तर पर व्यक्त करके न्यूनतम आवष्यक उपभोग व्यय के स्तर को प्राप्त करते है। इसे ही गरीबी रेखा कहते है। जिस व्यक्ति का दैनिक उपभोग व्यय इस निर्धारित न्यूनतम उपभोग व्यय स्तर से नीचे होगा उसे हम गरीब कहेंगे। इस प्रकार आवष्यक न्यूनतम उपभोग व्यय के आधार पर खींची गयी रेखा एक मानक रेखा जिससे नीचे रहने वाला व्यक्ति गरीब कहलायेगा। क्योंकि उसके पास न्यूनतम उपभोग व्यय को पूरा करने के लिए पर्याप्त या वांछित आय नही है। यह वह रेखा है जो जनसंख्या के उस भाग को अलग कर देती है जो गरीब है। यह रेखा एक स्थिर रेखा नही होगी बल्कि स्थितियों आवष्यकताओं तथा न्यूनतम उपभोग व्यय के आकार के आधार पर बदलती जायेगी । इस रूप में परिभाषित गरीबी को यू0एन0डी0पी0 ने आय गरीबी कहा।

उल्लेखनीय है कि वांछित कैलोरी के साथ भी यदि मूल्य स्तर में वृद्वि हो तो उतनी ही कैलोरी की प्राप्ति के लिए वांछित उपभोग व्यय बढ़ेगा और गरीबी रेखा ऊपर उठेगी। पर जैसे–जैसे अर्थव्यवस्था विकसित होगी वंचन का दायरा बढना अपेक्षित होगा। मानव गरीबी की ओर बढ़ेगा और न्यूनतम उपभोग व्यय केवल न्यूनतम आवष्यक कैलोरी की पूर्ति तक सीमित नही होगा बल्कि वह अन्य आवष्यकताओं की आपूर्ति, जो सामान्य कार्य क्षमता में वृद्वि लाने वाली आवष्यकताओं को भी दृष्टि में रखेगा। जैसा हम गरीबी के बहुआयमी दृष्टिकोण में पाते है, जैसा तेन्दुलकर कमेटी की कार्य विधि में भी देखने को मिलता है।

1.5.2 गरीबी रेखा–गरीबी रेखा से आशय उस रेखा से है जिस रेखा के ऊपर आने वाले समस्त व्यक्ति अपने औसत मासिक व्यय से अपनी न्यूनतम आवष्यकताओं को सन्तुष्ट कर सके तथा जो लोग गरीबी रेखा से कम आय धारक है अर्थात गरीबी रेखा से नीचे है।

1.6 बहुआयमीय गरीबी सूचकांक (Multimentional poverty index) बहुआयमी गरीबी सूचकांक की अवधारणा को संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अनुसार निर्धनता एक बहुआयमी संकल्पना है। बहुआयमी गरीबी सूचकांक में मानव विकास सूचकांक को प्रतिबिंबित करने वाले तीन आयाम लिये गये है।

(01) स्वास्थ (02) षिक्षा (03) जीवन स्तर

गरीबी का बहुआयमी दृष्टिकोण तथा तेन्दुलकर समिति तथा रंगराजन समितिः– तेंदुलकर समिति तथा रंगराज समिति इन दोनों समितियों ने गरीबी के अनुमान के सम्बन्ध में परम्परागत रूप से हटकर बहुआयमी रूप में लेती है। अर्थात दोनो ही गरीबी के अनुमान के सम्बन्ध में कार्यविधि या मेथडलाजी विकसित करने से सम्बन्धित है।

तेन्दुलकर समिति– तेन्दुलकर कमेटी (समिति) कार्यविधि (एन0एस0एस0ओं) द्वारा संकलित पारिवारिक उपभोग व्यय सम्बन्धी आंकडो पर आधारित है। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर 2009 में सौंप दी। गरीबी के बहुआयमी दृष्टिकोण के अन्तर्गत हम अनेक चरों को लेते है जो न केवल जीवन के अस्तित्व को प्रभावित करते है या जो केवल जीवन निर्वाह की आवष्यकताओं की सन्तुष्टि से सम्बन्धित होते है, बल्कि उन चरों को लेते है जो जीवन की गुणवत्ता (Quality of life) को प्रभावित करते है।

रंगराजन समिति– रंगराजन समिति ने अपनी रिर्पोट जून 2014 में आयोग को सौंप दी। रिर्पोट मे दिए हुए गरीबी सम्बन्धी अनुमान तथा रंगराजन कमेटी विष्लेषण के आधार पर कमेटी ने अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए 1072 तथा शहरी क्षेत्र के लिए 1407 रू0 प्रतिव्यक्ति मासिक उपभोग व्यय गरीबी रेखा के रूप में परिभाषित किया।

1.7 गरीबी के दृष्परिणाम (Consequnces of porverty) गरीबी के निम्नलिखित दुष्परिणाम देखने को मिलते है इनमे से कुछ बिन्दुओं को नीचे दिया जा रहा है–

1. निम्न जीवन स्तर
2. आर्थिक संवृद्वि की दर निम्न होना
3. कुपोषण भुखमरी एवं खराब स्वास्थ की समस्याएँ
4. गरीबों एवं अमीरों के मध्य बढ़ती खाई
5. जनसंख्या में वृद्वि
6. अषिक्षा की समस्या में वृद्वि
7. समावेषी विकास में बाधा
8. बालश्रम में लगातार वृद्वि
9. अस्वच्छता में वृद्वि
10. उत्पादन के साधनों पर लगातार दबाव बढ़ता जाता है।

1.8 गरीबी निर्धनता को दूर करने के उपाय (Measures to remove poverty) निर्धनता को दूर करने हेतु निम्नलिखित उपाय कारगर सिद्ध हो सकते है। यदि क्रियान्यवन सही ढंग से किया जाये।

1. जी0पी0डी0 में तीव्र वृद्वि
2. बढ़ती जनसंख्या पर रोक लगाना
3. प्राथमिक क्षेत्र का विकास
4. रोजगार में वृद्वि करना
5. मुद्रा स्फीति की दर में स्थायित्व लाना
6. समावेषी विकास पर जोर देना

7. तकनीकी एवं व्यवसायिक षिक्षा करना
8. स्वरोजगार को बढ़ावा देना
9. समान आय वितरण
10. बचत एवं पूंजी निर्माण की दर में वृद्वि
11. कर प्रणाली में सुधार
12. कानूनी उपाय पर कार्य करना जैसे–न्यूनतम मजदूरी अधिनियम

1.9 बोध प्रष्न

प्रष्न 1. गरीबी के संबंध में निम्नलिखित में कौन असंगत है।
क. तेदुलकर समिति गरीबी रेखा निर्धारण से सम्बन्धित है।
ख. रंगराजन समिति ने अपनी रिपोर्ट 2018 में सौपी
ग. रंगराजन समिति द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों के लिये 1072 रू निर्धारित किया।
घ. गिनी गुणांक 1912 में विकसित हुआ।

प्रष्न 2. गिनी गुणांक का मान है–
क. 0 से 100 के मध्य
ख. 1 से 10 के मध्य
ग. 0 से 1 के मध्य
घ. 1 से 100 के मध्य

प्रष्न 3. लारेंज वक्र में निरपेक्ष समता रेखा होती है–
क. 90 अंष
ख. 60 अंष
ग. 45 अंष
घ. 30 अंष

प्रष्न 4. बहुआयामी गरीबी सूचकांक में कौन सम्मिलित नही होता है–
क.षिक्षा
ख. स्वास्थ
ग. जीवन स्तर
घ. मृत्यु दर

1.10 सारांष–

विष्व में गरीबी का आकार तथा प्रकार देष स्थान विषय के अनुसार भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में अलग–अलग विद्वानों द्वारा अपने–अपने ढंग से परिभाषित किया गया है, जिनमें विष्व बैंक द्वारा दी गयी परिभाषा सर्वमान्य है। इनके द्वारा प्रयोग की गयी अवधारणा भी सभी देषों द्वारा स्वीकार की जाती है। निरपेक्ष गरीबी तथा सापेक्ष गरीबी दुनिया के प्रत्येक देषों में पायी जाती है। विष्व का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी से या तो सापेक्षिक गरीब या सापेक्षिक अमीर है। गरीबी को दूर करने हेतु षिक्षा स्वास्थ्य तथा कौषल युक्त तकनीकि का होना अतिआवष्यक है। इसके लिये सरकार तथा गैर सरकारी संस्थानों को निरन्तर प्रयासरत रहना चाहिए।

1.11 षब्दार्थ सूची

जी0डी0पी0– सकल घरेलू, उत्पाद

बालश्रम– परिपक्वता से कम उम्र में कार्य में लग जाना

कुपोषण– पौष्टिक आहार न प्राप्त होने के कारण बालक में तत्वों की कमी का होना

मासिक उपभोग व्यय– एक महीने के अन्दर किया गया व्यय

अखिल भारतीय– पूरे भारत के लिये

गरीबी रेखा – मानक रेखा जिसके आधार पर निरपेक्ष गरीबी का मापन किया जाता है।

1.12 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें–

1. प्रो. एम. एल. झिगन (2010) विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन बिन्द्रा पब्लिशिग हाउस दिल्ली।
2. प्रो. एस. एन. लाल (2010) आर्थिक विकास तथा आयोजन शिव पब्लिशिंग हाउस इलाहाबाद।
3. प्रो. एस. पी. सिह (2010) आर्थिक विकास का सिद्धान्त एवं आयोजन एस चॉद एण्ड पब्लिकेशन दिल्ली।

1.13 बोध प्रष्नों के सम्भावित उत्तर

1. ख. रंगराजन समिति ने अपनी रिपोर्ट 2018 में सौपी
2. ग. 0 से 1 के मध्य
3. ग. 45 अंष
4. घ. मृत्यु दर।

1.14 विषयनिष्ठ प्रष्न

1. गरीबी से क्या आषय है। सापेक्ष गरीबी तथा निरपेक्ष गरीबी को स्पष्ट करते हुए भारत में गरीबी मापने के उपाय का वर्णन किजिए।
2. गरीबी रेखा से क्या आषय है।
3. भारत में गरीबी की गणना पर प्रकाष डालिये।
4. गरीबी के दुषपिरणामों पर टिप्पणी लिखिए।

खण्ड–3

इकाई–02

गरीबी निवारण हेतु सरकार की योजनाएँ

इकाई की रुपरेखा–

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 गरीबी निवारण हेतु योजनाओ का आशय

2.4 गरीबी निवारण हेतु योजनाओ की आवश्यकता क्यों–

2.5 गरीबी निवारण हेतु सरकार की योजनाएँ:पंचवर्षीय योजनाएँ

2.6 भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

2.7 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की अप्रभावीता के प्रमुख कारण

2.8 बोध प्रश्न

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

भारत में गरीबी निवारण के लिए सरकार की योजनाएँ एक महत्वपूर्ण विषय हैं। गरीबी को कम करने के लिए सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में कई योजनाएँ शुरू की हैं, जिनका मुख्य उद्देश्य गरीबी को हटाना और समाज को अधिक उत्तेजित करना है। इन योजनाओं में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आर्थिक सहायता, ग्रामीण विकास, और अन्य क्षेत्रों में समावेश शामिल हैं। इस प्रस्तावना में, हम इन योजनाओं का विस्तार से वर्णन करेंगे, उनके लक्ष्यों और प्रभाव को समझेंगे, और उनके संभावित लाभार्थियों के बारे में चर्चा करेंगे। इसके अलावा, हम गरीबी निवारण की योजनाओं के विपरीत पक्षों और चुनौतियों पर भी ध्यान देंगे।

2.2 उद्देश्य

गरीबी निवारण हेतु सरकार की योजनाएँ का मुख्य उद्देश्य है गरीबी को कम करना और समाज में समानता और समरसता लाना। इन योजनाओं के माध्यम से सरकार उन व्यक्तियों और वर्गों की सहायता करती है जो गरीबी की चपेट में हैं और जिन्हें स्वतंत्र रुप से अपनी जीविका कमाने की क्षमता नहीं है। ये योजनाएँ गरीबी से प्रभावित क्षेत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आर्थिक सहायता, ग्रामीण विकास और अन्य क्षेत्रों में समावेश शामिल करती हैं।

इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है

1. गरीबी को कम करनारू ये योजनाएँ गरीबी को कम करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में समावेश शामिल करती हैं, जैसे शिक्षा, उद्यमिता, रोजगार, और स्वास्थ्य।

2. सामाजिक समानता का संज्ञान और विकासरू ये योजनाएँ समाज में सामाजिक समानता और समरसता को प्रोत्साहित करती हैं। इनका लक्ष्य है सभी वर्गों के लोगों को बराबर अवसर प्रदान करना।

3. रोजगार के अवसररू गरीबी निवारण की योजनाएँ रोजगार के अवसर प्रदान करती हैं ताकि लोग आत्मनिर्भर बन सकें।

4. ग्रामीण विकासरू ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी को कम करने के लिए योजनाएँ विकसित की जाती हैं, जैसे ग्रामीण क्षेत्रों में जल, बिजली, सड़क, और स्वास्थ्य सुविधाएं।

5. आर्थिक सहायतारू आर्थिक सहायता के माध्यम से गरीबों को आर्थिक संघर्ष से बाहर निकाला जाता है और उन्हें आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए सहायता प्रदान की जाती है।

ये योजनाएँ सरकारी कार्यक्रमों के रुप में आम जनता को लाभ प्रदान करती हैं और समाज में समानता और समरसता बढ़ाने में मदद करती हैं। इनके माध्यम से सरकार लोगों को अधिक संबल बनाने के लिए नेतृत्व करती है और देश की उन्नति के लिए आवश्यक नेतृत्व और दिशा प्रदान करती है।

2.3 गरीबी निवारण हेतु योजनाओ का आशय

गरीबी निवारण हेतु योजनाओं का आशय उस सामाजिक संघर्ष को समाप्त करने के लिए है जो गरीबी के कारणों को दूर कर सकते हैं और समाज में समानता को स्थापित कर सकते हैं। ये योजनाएं विभिन्न सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों के– प में व्यवस्थित की जाती हैं, जो गरीब लोगों को आर्थिक, सामाजिक, और शैक्षिक सहायता प्रदान करती हैं। इन योजनाओं के माध्यम से सरकार गरीबों को आर्थिक

सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, और रोजगार के अवसर प्रदान करती है, ताकि वे समाज के समान अधिकारों का उपयोग कर सकें।

गरीबी निवारण हेतु योजनाओं का मुख्य उद्देश्य गरीब और वंचित लोगों की स्थिति में सुधार करना है। इन योजनाओं के अंतर्गत, सरकार गरीब लोगों को आर्थिक सहायता, बेरोजगारी का समाधान, स्वास्थ्य सेवाएं, और शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करती है। ये योजनाएं गरीबों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाने में मदद करती हैं और उन्हें स्वावलंबी बनाने की क्षमता प्रदान करती हैं।

गरीबी निवारण हेतु योजनाओं का अभिप्राय गरीबी को कम करना और समाज को समृद्धि में सामिल करना है। इन योजनाओं के जरिए, सरकार निर्धारित किए गए लक्ष्यों को हासिल करने के लिए विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करती है। ये योजनाएं विकासशीलता, सामाजिक समानता, और आर्थिक समृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए कई उपायों का उपयोग करती हैं, जैसे कि आर्थिक सहायता, शिक्षा, और रोजगार के अवसर प्रदान करना।गरीबी निवारण हेतु योजनाओं का आधार उन विभिन्न समस्याओं पर होता है जो गरीबी के कारणों से उत्पन्न होती हैं। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य गरीब लोगों को सक्षम और सशक्त बनाना है ताकि वे अपने जीवन को समृद्ध बना सकें और समाज के समानाधिकारों का उपयोग कर सकें।

गरीबी निवारण हेतु योजनाओं का आधार उन विभिन्न समस्याओं पर होता है जो गरीबी के कारणों से उत्पन्न होती हैं। इन योजनाओं का मुख्य उद्देश्य गरीब लोगों को सक्षम और सशक्त बनाना है ताकि वे अपने जीवन को समृद्ध बना सकें और समाज के समानाधिकारों का उपयोग कर सकें।

गरीबी को निवारण करने के लिए योजनाओं का महत्वपूर्ण काम होता है। इन योजनाओं के माध्यम से सरकार समाज के विभिन्न वर्गों को आर्थिक सहायता, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, और रोजगार के अवसर प्रदान करती है। ये योजनाएं विकासशीलता, सामाजिक समानता, और आर्थिक समृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए कई उपायों का उपयोग करती हैं, जैसे कि आर्थिक सहायता, शिक्षा, और रोजगार के अवसर प्रदान करना।इन योजनाओं के अंतर्गत, गरीब लोगों को आर्थिक सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, और रोजगार के अवसर प्रदान किए जाते हैं। इससे गरीबी के स्तर में कमी होती है और समाज में समानता और उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता है। ये योजनाएं समाज के सबसे कमजोर वर्ग को उन्नति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं।

2.4 गरीबी निवारण हेतु योजनाओ की आवश्यकता क्यों–

गरीबी निवारण हेतु योजनाओं की आवश्यकता विभिन्न कारणों से होती है। यहाँ हम कुछ मुख्य कारणों को विस्तार से विचार करेंगे–

1. समाज में समानता की स्थापनारू गरीबी निवारण हेतु योजनाओं की मुख्य उद्देश्य समाज में समानता और समरसता की स्थापना है। इन योजनाओं के माध्यम से सरकार सभी वर्गों के लोगों को समान अवसर प्रदान करने का प्रयास करती है, जिससे समाज में समानता की भावना बढ़ती है।

2. रोजगार के अवसररू गरीबी निवारण हेतु योजनाओं के अंतर्गत रोजगार के अवसर प्रदान किए जाते हैं। रोजगार के अभाव में गरीब लोग अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार करने में असमर्थ होते हैं, इसलिए सरकार को इस समस्या का समाधान करने के लिए योजनाएं बनानी चाहिए।

3. ग्रामीण विकासरू ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी कम करने के लिए विभिन्न योजनाएं विकसित की जाती हैं। इनमें ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं का विकास, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का प्रदान, और रोजगार के अवसर शामिल होते हैं।

4. आर्थिक सहायतारू गरीबी निवारण हेतु योजनाएं आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं। इनमें गरीबों को आर्थिक संघर्ष से बाहर निकालने और उन्हें आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए उन्हें विभिन्न आर्थिक योजनाओं का लाभ प्रदान किया जाता है।

5. शिक्षा और स्वास्थ्य के अवसररू गरीबी निवारण हेतु योजनाएं शिक्षा और स्वास्थ्य के अवसर प्रदान करती हैं। इनमें गरीब लोगों के लिए शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता, निरूशुल्क शिक्षा सुविधाएं, और स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधा शामिल होती है।

इन कारणों से गरीबी निवारण हेतु योजनाओं की आवश्यकता है, जो समाज में समानता, विकास और समरसता की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

2.5 गरीबी निवारण हेतु सरकार की योजनाएँःपंचवर्षीय योजनाएँ

भारत में गरीबी उन्मूलन के लिए ग्यारह पंचवर्षीय योजनाएँ शुरू की गईं। वर्ष 1951 में शुरू हुई इन पंचवर्षीय योजनाओं की सूची नीचे दी गई है

1. **प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951–1956)–** यह योजना मुख्य– प से कृषि और सिंचाई पर केंद्रित थी और इसका उद्देश्य सर्वांगीण संतुलित विकास प्राप्त करना था।
2. **दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956–1961)–** इसमेंबुनियादी और भारी उद्योगों के विकास, रोजगार के अवसरों में विस्तार औरराष्ट्रीय आय में 25 प्रतिशत की वृद्धि पर ध्यान केंद्रित किया गया।
3. **तीसरी पंचवर्षीय योजना (1961–1966)–** चीनीआक्रमण (1962), भारत–पाक युद्ध (1965) और भयंकर सूखे के कारण तीसरीपंचवर्षीय योजना पूरी तरह विफल हो गई। इसे तीन वार्षिक योजनाओं द्वाराप्रतिस्थापित किया गया जो 1966 से 1969 तक जारी रहीं।
4. **चौथी पंचवर्षीय योजना (1966–1974)–** इसकाउद्देश्य राष्ट्रीय आय में 5.5 प्रतिशत की वृद्धि करना, आर्थिक स्थिरताबनाना, आय वितरण में असमानताओं को कम करना और समानता के साथ सामाजिक न्यायप्राप्त करना था।
5. **पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–1979)–** यह योजना मुख्य रुप से गरीबी हटाने (गरीबी हटाओ) पर केंद्रित थी और इसकाउद्देश्य गरीब जनता के बड़े हिस्से को गरीबी रेखा से ऊपर लाना था। इसनेरुपये की न्यूनतम आय का भी आश्वासन दिया। 1972–73 की कीमतों पर प्रतिव्यक्ति प्रति माह 40 की गणना की गई। जनता सरकार के सत्ता में आने पर योजना (1979) के बजाय 1978 में समाप्त कर दी गई।
6. **छठी पंचवर्षीय योजना (1980–1985)–** छठीपंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी हटाना था, जिसमें आर्थिक विकास, बेरोजगारी उन्मूलन, प्रौद्योगिकी में आत्मनिर्भरता और कमजोर वर्गों की जीवनशैली को ऊपर उठाने पर प्रमुख ध्यान दिया गया था। समाज का.
7. **सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985–90)–**सातवीं पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य गरीबी की घटनाओं में उल्लेखनीय कमी के साथ गरीबों के जीवन स्तर में सुधार करना था।

8. **आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97)–** इस योजना का लक्ष्य रोजगार सृजन करना था लेकिन बाद में यह अपने अधिकांश लक्ष्यों को प्राप्त करने में विफल रही।
9. **नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997–2002)–** नौवीं पंचवर्षीय योजना कृषि, रोजगार, गरीबी और बुनियादी ढांचे के क्षेत्रों पर केंद्रित थी।
10. **दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002–2007)–** दसवींपंचवर्षीय योजना का लक्ष्य वर्ष 2007 तक गरीबी अनुपात को 26 प्रतिशत सेघटाकर 21 प्रतिशत करना और बच्चों को 2007 तक पांच साल की स्कूली शिक्षापूरी करने में मदद करना था। .
11. **ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2007–2012)–** ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना का लक्ष्य गरीबी को 10 प्रतिशत अंक कम करना, 7 करोड़ नएरोजगार के अवसर पैदा करना और सभी गांवों में बिजली कनेक्शन सुनिश्चित करनाहै।

2.6 भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम

1. एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी)–

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी) भारत सरकार द्वारा 1978 में शुरू किया गया था और 1980 में लागू किया गया और 1999 तक जारी रहा। उसके बाद, 5 अन्य योजनाओं के साथ, आईआरडीपी को स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के रुप में पुनः ब्रांडेड किया गया। इसका उद्देश्य ग्रामीण गरीबों का स्वरोजगार करना है। एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आईआरडीपी) को 1980 में लागू किया गया था ताकि अधिकाधिक व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्रदान किए जा सकें. यह कार्यक्रम उन्हें आवश्यक सब्सिडी प्रदान करता है और उनके लिविंग स्टैंडर्डको बेहतर बनाने में भी मदद करता है.

आईआरडीपी के माध्यम से वंचित व्यक्तियों को काम करने और उनके कौशल को बढ़ाने के अवसर दिए जाते हैं. इस प्रोग्राम को फाइनेंशियल रुप से संघर्ष करने वाले लोगों को महत्वपूर्ण सब्सिडी और नौकरी के अवसर प्रदान करके गरीबी से संबंधित चिंताओं को दूर करने के सबसे प्रभावी तरीकों में से एक केरूप में व्यापक रुप से मान्यता दी जाती है. कुल मिलाकर, आईआरडीपी को आर्थिक स्थिरता प्राप्त करने और अपने जीवन की गुणवत्ता में सुधार करने में मदद करने के लिए आवश्यक संसाधन और सहायताप्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है।

आईआरडीपी के उद्देश्य –

आईआरडीपी की विशेषताएं इस प्रकार हैं.

1. सतत नौकरी के अवसर प्रदान करके ग्रामीण समुदाय के जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए.
2. कृषि और लघु उद्योगों के आउटपुट को बढ़ाना.

इन उद्देश्यों को ग्रामीण जनसंख्या को प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयकक्षेत्रों से उत्पादक संसाधन प्रदान करके पूरा किया जाता है. यह सहायताआईआरडीपी और अन्य फाइनेंशियल संस्थानों से सरकारी सब्सिडी या लोन के रुप में आती है.

2. प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना (पीएमएवाई)–

प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना (पीएमएवाई) भारत सरकार द्वारा 1985 में शुरू कियागया था।प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना (पीएमएवाई) भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण योजना है जो ग्रामीण क्षेत्रों में आवास

की समस्या को हल करने के लिए शुरू की गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य गरीब और ग्रामीण लोगों को घर प्रदान करना है ताकि वे स्वयं के लिए एक अधिक सुरक्षित और आरामदायक आवास प्राप्त कर सकें। इस योजना के अंतर्गत, ग्रामीण क्षेत्रों में नये मकानों की निर्माण, पुनर्निर्माण, या परिवर्तन के लिए आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।पीएमएवाई के तहत, केंद्र सरकार और राज्य सरकारों के साथ सहयोग के माध्यम से नये आवासीय योजनाओं को लागू किया जाता है। इसका ध्यान रखा जाता है कि योजना के अंतर्गत निर्माण होने वाले घरों में आधारिक सुविधाएं जैसे कि बिजली, पानी, सड़क, और स्वच्छता की व्यवस्था हो।

योजना के अंतर्गत, ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और वंचित लोगों को मकानों की व्यवस्था करने का अवसर दिया जाता है। यह मकान अधिकार और सामूहिक संपत्ति के माध्यम से गरीब लोगों को समाज में शामिल होने का एक माध्यम भी है।

प्रधानमंत्री आवास योजना तब समर्थन प्रदान करती है जब कोई व्यक्ति अपने लिए स्वतंत्र मकान नहीं खरीद सकता है, या उसके पास घर बनाने के लिए पर्याप्त धन नहीं होता है। इसके माध्यम से, गरीब और वंचित लोगों को सस्ते मकानों का एक स्थायी स्रोत प्राप्त होता है।

पीएमएवाई योजना ग्रामीण क्षेत्रों में नई ऊर्जा और उत्साह भर देती है, और लोगों को आत्म–सम्मान का अनुभव कराती है। यह उन गरीब लोगों के लिए एक बड़ी सामाजिक और आर्थिक राहत प्रदान करती है जो वास्तविक आवास के अभाव में पीड़ित हैं। इसके माध्यम से, ग्रामीण क्षेत्रों में नये विकास की प्रक्रिया को गति मिलती है और वहां की जीवनस्तर में सुधार होता है।

2.जवाहर रोजगार योजना–

इसे 1 अप्रैल, 1989 को राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एनआरईपी) और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आरएलईजीपी)के एकीकरण द्वाराग्रामीणक्षेत्र में बेरोजगार और अल्प–रोजगार वाली जनता के लिए रोजगार के विकल्पबनाने और जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए लॉन्च किया गया था।सामुदायिक और सामाजिक संपत्ति और ग्रामीण आर्थिक बुनियादी ढांचे का निर्माणकरके। कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण भागों में बेरोजगार और अल्प–रोजगारवाले लोगों के लिए पूरक लाभदायक रोजगार था, ताकि ग्रामीण भागों में गरीब लोगों को उनके निरंतर लाभ के लिए समर्थन देने वाली ग्रामीण वित्तीय संरचना और संपत्तियों को मजबूत करके निरंतर रोजगार पैदा किया जा सके। इस योजना में ग्रामीण इलाकों में महिलाओं के लिए तीस प्रतिशत रोजगार विकल्प आरक्षित रखे गए हैं।

3. जवाहर ग्राम समृद्धि योजना–

1 अप्रैल 1999 को जवाहर रोजगार योजना को फिर से जवाहर ग्राम समृद्धि योजनाके रुप में संशोधित किया गया। 25 सितंबर 2001 को इस योजना को संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना में संशोधित किया गया । इसका उद्देश्य मांग–संचालित सामुदायिक ग्राम बुनियादी ढांचा तैयार करना है जो ग्रामीण हिस्सों में गरीब लोगों को ग्रामीण स्तर पर निरंतर रोजगार के अवसर और टिकाऊ संपत्ति बढ़ाने में सक्षम बनाएगा। इसमें ग्रामीण भागों में बेरोजगारों के लिए अतिरिक्त रोजगार के विकल्प का निर्माण भी शामिल है। गरीबी रेखा से नीचे (बीपीएल) परिवारों को मजदूरी रोजगारप्रदान किया जा सकता है।

4.रोजगार आश्वासन योजना–

इसे 2 अक्टूबर 1993 को लॉन्च किया गया था। इसमें सूखाग्रस्त हिस्से, रेगिस्तानी हिस्से, आदिवासी हिस्से और पहाड़ी क्षेत्र शामिल हैं। वर्ष 1994–95 के दौरान यह योजना देश के 409 ब्लॉकों में लागू की गई और अप्रैल 1997 तक इस योजना को सभी ब्लॉकों तक विस्तारित कर दिया गया। इस योजना का प्राथमिक उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के सभी सक्षम वयस्क गरीब व्यक्तियों के लिए, जिन्हें उस समय काम की आवश्यकता होती है, जब कम कृषि मौसम के दौरान मैनुअल काम में भारी कमी होती है, तो पूरक मजदूरी रोजगार विकल्प उत्पन्न करना था, और इसका माध्यमिक उद्देश्य यह योजनाग्रामीण भारत के लिए रोजगार और विकास के लिए वित्तीय बुनियादी ढांचे और सामुदायिक संपत्तियों का निर्माण करना है।

5. काम के बदले अनाज कार्यक्रम–

इसे वर्ष 1977–78 मेंमजदूरी के विकल्प के रुप में खाद्यान्न प्रदान करके शुरू किया गया था । इसके बाद 2001 में देश के सबसे पिछड़े 150 जिलोंमें जीवनयापन के लिए अतिरिक्त रोजगार पैदा करने के लिए लागू किए गए परिवर्तनों के साथ इसे पुनर्गठित किया गया। इसका उद्देश्य देश के 150 सबसे पिछड़े जिलों में संपूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना के तहत उपलब्ध संसाधनों केअलावा पूरक संसाधन उपलब्ध कराना है। यह कार्यक्रम अतिरिक्त वेतन रोजगार के अवसरों का सृजन कर सकता है और इन पिछड़े जिलों में आवश्यकता–आधारित सामाजिक, वित्तीय और सांप्रदायिक संपत्ति उत्पन्न करके खाद्य सुरक्षा उपलब्ध करा सकता है।

6. सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना–

इसे वर्ष 2001 में ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा जवाहर ग्राम समृद्धि योजना और रोजगार आश्वासन योजना को मिलाकर लॉन्च किया गया था।योजना का मुख्य उद्देश्य पूरक वेतन रोजगार विकल्प प्रदान करना, सभी भागोंमें खाद्य सुरक्षा और बेहतर पोषण चरण प्रदान करना, टिकाऊ सामुदायिक सामाजिक और मौद्रिक संपत्ति उत्पन्न करना और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबों के लिए बुनियादी ढांचे का विस्तार करना था।

7. प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना–

पहले इंदिरा आवास योजना के– प में जाना जाता था, प्रधानमंत्री ग्रामीण आवास योजना वर्ष 2015 में शुरू की गई थी, जो भारत में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले ग्रामीण गरीबों के लिए मुफ्त घरों का निर्माण प्रदान करने के लिए बनाई गई है।

इसका उद्देश्य क्रेडिट–लिंक्ड सब्सिडी प्रक्रिया के माध्यम से किफायती आवास विकल्पों की उन्नति, संसाधन के– प में भूमि–आवास का उपयोग करके निजी क्षेत्र की भागीदारी के साथ झुग्गीवासियों की बहाली, और सरकारी और निजी सब्सिडी के सहयोग से उचित आवास है।

8.राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम (एनएसएपी)–

इसे 15 अगस्त 1995 कोसुरक्षित सामाजिक सुरक्षा और कल्याण कार्यक्रम के उद्देश्य से विधवाओं, वृद्ध व्यक्तियों, विकलांग व्यक्तियों को सहायता प्रदान करनेऔर बीपीएल परिवारों से संबंधित प्राथमिक कमाने वाले की मृत्यु पर शोकग्रस्त परिवारों को सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से शुरू किया गया था। राज्यके नीति निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 41 और अनुच्छेद 42 जो भारत केसंविधान के भाग प्ट में उल्लिखित हैं। इसके भी तीन घटक थे, अर्थात,

ए. राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन योजना (एनओएपीएस)–

इसे वर्ष 1995 मेंउसव्यक्ति को पेंशन प्रदान करने के लिए शुरू किया ग या था जो निराश्रित है, जिसके पास आय या मौद्रिक सहायता का बहुत कम या कोई स्रोत नहीं है।मुख्य उद्देश्य पात्र लाभार्थियों के लिए सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध करानाहै। इसमें 60 वर्ष या उससे अधिक उम्र के वरिष्ठ नागरिकों को मासिक पेंशनमिलती है और यह एक गैर–अंशदान वाला व्यक्ति है, जिसमें लाभार्थी को पेंशन प्राप्त करने के लिए किसी भी राशि का योगदान नहीं करना पड़ता है।

बी. राष्ट्रीय पारिवारिक लाभ योजना (एनएफबीएस)–

इसे गरीबी रेखा से नीचे के परिवार को एकमुश्त राशि देने के लिए वर्ष 1995 में शुरू किया गया था, जो मुख्य वेतन अर्जक की मृत्यु के बाद परिवार का मुखिया बन जाता है। यह परिवार को रु. 10,000ध्– की एकमुश्त राशि प्रदान करता है और यह 18–64 वर्ष के आयु वर्ग पर लागू है।

सी. राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना (एनएमबीएस)–

राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना मेंगरीब परिवारों की महिलाओं को प्रसव पूर्व और प्रसवोत्तर देखभाल के लिए वित्तीय अनुदान प्रदान किया जाता है। यह 19 वर्ष और उससे अधिक आयु की महिलाओं के लिए पहले दो जीवित जन्मों तक है। यह नकद आधारित मातृत्व सहायता योजना है।

9. ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम (आरईजीपी)–

त्म्ळच् की शुरुआत भारत सरकार द्वारा छोटे शहरों और ग्रामीण क्षेत्रों मेंस्वरोजगार के अवसर पैदा करने के लिए की गई थी। खादी और ग्रामोद्योग आयोग नेइस कार्यक्रम को लागू किया। इस कार्यक्रम से किसी व्यक्ति को बैंक ऋण केरूप में लघु उद्योग स्थापित करने के लिए वित्तीय सहायता मिल सकती है।

10. प्रधानमंत्री रोजगार योजना (च्डत्ल्)–

ठस योजना के तहत ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के शिक्षित बेरोजगार लोग जो कम आयवाले परिवारों से हैं, उन्हें सरकार द्वारा वित्तीय सहायता दी गई। दी गई वित्तीय मदद से ये लोग रोजगार पैदा करने वाला कोई भी उद्यम स्थापित कर सकतेहैं। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992–97) के दौरान प्रधानमंत्री रोजगार योजना द्वारा 7 लाख सूक्ष्म उद्यम स्थापित कर रोजगार सृजन का प्रयास किया गया।इस योजना की मदद से वर्ष 2003–04 तक 30 लाख लोगों को रोजगार मिला।

सरकार ने उपरोक्त दोनों योजनाओं का विलय कर दियाय यानी, आरईजीपी और पी.एम.आर.वाई. और एक नया कार्यक्रम पेश किया गया जिसे प्रधान मंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम (पीएमईजीपी) के नाम से जाना जाता है। यह योजना 1 अप्रैल 2008 से लागू हुई।

इस योजना के दो मुख्य उद्देश्य हैं–

1. नये स्वरोजगार उद्यम स्थापित कर ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर पैदा करना।
2. बेरोजगार युवाओं और बिखरे हुए पारंपरिक कारीगरों को एक साथ लाना और उन्हें उनके स्थान पर स्वरोजगार के अवसर प्रदान करना।

11. स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना (एसजेएसआरवाई)–

एसजेएसआरवाई का प्राथमिक उद्देश्य शहरी क्षेत्रों में स्वरोजगार और मजदूरी रोजगार दोनों के लिए रोजगार के अवसर पैदा करना है। स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना लोगों को स्व–रोजगार

उद्यम स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करके या मजदूरी रोजगार के प्रावधान के माध्यम से लाभकारी रोजगार प्रदान करना चाहती है। यह योजना केंद्र प्रायोजित है और केंद्र और राज्यों के बीच 75–25 के आधार पर वित्त पोषित है।

12. स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (एसजीएसवाई)–

पहले परिवारों और व्यक्तियों को स्व–रोजगार कार्यक्रमों के माध्यम से वित्तीय सहायता मिलती थी। हालाँकि, 1990 के दशक से सरकार ने एसजीएसवाई के माध्यम से सहायता प्रदान करना शुरू कर दिया। स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना का मूल उद्देश्य सूक्ष्म उद्यमों को बढ़ावा देना और सहायता प्राप्त गरीब परिवारों, जिन्हें स्वरोजगारभी कहा जाता है, को गरीबी रेखा से ऊपर लाना है। यह योजना स्वरोजगारियों को स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी) में संगठित करके गरीबी रेखा से ऊपर लाने का प्रयास करती है।

एसएचजी के माध्यम से, उन्हें बनाने वाले लोगों को पैसा बचाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और उसे आपस में ऋण के रुप में उधार दिया जाता है। बाद में सरकार बैंकों की मदद से इन समूहों को आंशिक वित्तीय सहायता प्रदान करती है। सहायता प्राप्त करने के बाद ये समूह निर्णय लेते हैं कि स्व–रोजगार गतिविधियों के लिए किसे ऋण मिलेगा।

13. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा)

मनरेगा के उद्देश्य –

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1. ग्रामीण अकुशल श्रमिकों को 100 दिनों का गारंटीकृत मजदूरी रोजगार प्रदान करें
2. आर्थिक सुरक्षा बढ़ाएँ
3. ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर श्रमिकों का प्रवास कम करना

श्रोजगार सृजन के लिए जमीनी स्तर पर संचालित दृष्टिकोण अपनाकर मनरेगा खुद को पहलेकी कल्याणकारी योजनाओं से अलग करता है। अधिनियम के तहत कार्यक्रम मांग–संचालित हैं और मामले में अपील के लिए कानूनी प्रावधान प्रदान करतेहैं, काम प्रदान नहीं किया जाता है या भुगतान में देरी होती है। यह योजनाकेंद्र सरकार द्वारा वित्त पोषित है जो अकुशल श्रम की पूरी लागत और इसकानून के तहत किए गए कार्यों के लिए सामग्री की लागत का 75ः वहन करती है। केंद्र और राज्य सरकारें ब्म्ळब (केंद्रीय रोजगार गारंटी परिषद) और ैम्ळब (राज्य रोजगार गारंटी परिषद) द्वारा तैयार वार्षिक रिपोर्ट के माध्यम से इसअधिनियम के तहत किए गए कार्यों का ऑडिट करती हैं। इन रिपोर्टों को मौजूदासरकार द्वारा विधानमंडल में प्रस्तुत किया जाना है।

योजना की कुछ मुख्य विशेषताएं हैं–

1991 में, पीवी नरशिमा राव सरकार ने निम्नलिखित लक्ष्यों के साथ ग्रामीणक्षेत्रों में रोजगार पैदा करने के लिए एक पायलट योजना प्रस्तावित की–

1. मंदी के मौसम के दौरान कृषि श्रमिकों के लिए रोजगार सृजन।
2. बुनियादी ढांचे का विकास
3. उन्नत खाद्य सुरक्षा

इस योजना को रोजगार आश्वासन योजना कहा जाता था जो बाद में 2000 के दशक की शुरुआत में काम के बदले भोजन कार्यक्रम के साथ विलय के बाद मनरेगा में विकसित हुई।

यह अधिनियम अगस्त 2005 में संसद में पारित किया गया था। मनरेगा का मूल उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को एक वित्तीय वर्ष में 100 दिनों के वेतन रोजगार की गारंटी देकर

उनकी आजीविका सुरक्षा को बढ़ाना है। मजदूरी रोजगार उस ग्रामीण परिवार को दिया जाता है जिसके वयस्क सदस्य अकुशल शारीरिक कार्य करने के लिए स्वेच्छा से काम करते हैं। इसलिए, प्रत्येक व्यक्ति (गरीब) जो न्यूनतम मजदूरी पर काम करने का इच्छुक है, उन क्षेत्रों में काम के लिए रिपोर्ट कर सकता है जहां मनरेगा लागू है। वर्ष 2019–20 में 57.4 मिलियन लोगों ने मनरेगा के तहत काम मांगा था।

- यह सार्वजनिक कार्यों के प्रबंधन और पंचायती राज संस्थानों को मजबूत करने के लिए ग्राम पंचायतों को महत्वपूर्ण मात्रा में नियंत्रण देता है। ग्राम सभाएं मध्यवर्ती और जिला पंचायतों की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं।
- यह अपने परिचालन दिशा निर्देशों में जवाब देही को शामिल करता है और सभी स्तरों पर अनुपालन और पारदर्शिता सुनिश्चित करता है।

योजना लागू होने के बाद से पिछले 10 वर्षों में नौकरियों की संख्या में 240 की वृद्धि हुई है। यह योजना ग्रामीण भारत में आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ाने औरश्रम के शोषण को दूर करने में मदद करने में सफल रही है। इस योजना से मजदूरीकी अस्थिरता और श्रम में लैंगिक वेतन अंतर भी कम हुआ है। इसकी पुष्टि मनरेगा की आधिकारिक साइट पर उपलब्ध निम्नलिखित आंकड़ों से की जा सकती है–

1. 14.88 करोड़ मनरेगा जॉब कार्ड जारी किए गए हैं (सक्रिय जॉब कार्ड 9.3 करोड़)
2. मनरेगा (2020–21) के तहत 28.83 करोड़ श्रमिकों को रोजगार मिला, जिनमें से सक्रिय श्रमिक 14.49 करोड़ हैं।

14.अंत्योदया अन्न योजना (आएआईएपी)–

अंत्योदया अन्न योजना एक महत्वपूर्ण भारतीय सरकारी योजना है जो गरीबी के खिलाफ लड़ाई में अहम भूमिका निभाती है। इसका प्रमुख उद्देश्य है कि सरकार गरीब लोगों को सस्ता और उचित आहार प्रदान करे। इस योजना के अंतर्गत, गरीब और बेसहारा लोगों को सस्ता अनाज उपलब्ध कराया जाता है, ताकि उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके और उन्हें खाद्य सुरक्षा मिले।

यह योजना 2013 में शुरू की गई थी और विभिन्न राज्यों में लागू की गई है। इसका प्रमुख उद्देश्य था कि गरीब लोगों को सस्ता अनाज उपलब्ध कराकर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार किया जाए और उन्हें खाद्य सुरक्षा प्रदान की जाए। इस योजना के तहत, आधे से अधिक देशवासियों को ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सस्ता अनाज प्रदान किया जाता है।

योजना के अंतर्गत, गरीब और बेसहारा लोगों को नीचे दी गई कड़ीयों के माध्यम से सस्ता अनाज प्रदान किया जाता है–

1. **राज्य सरकारों के द्वारा अनाज के खुले बाजार–** इसमें, राज्य सरकारों द्वारा सस्ते अनाज के खुले बाजार स्थापित किए जाते हैं, जिनमें गरीब लोगों को अनाज को सस्ते दामों पर प्राप्त करने की सुविधा मिलती है।
2. **वाणिज्यिक निगमों के माध्यम से आपूर्ति–** इसके अलावा, गरीबी रेखा के नीचे आने वाले लोगों को वाणिज्यिक निगमों के माध्यम से भी सस्ता अनाज प्रदान किया जाता है।

3. **सामूहिक आदान–प्रदान–**अंत्योदया अन्न योजना के तहत, सरकार सस्ता अनाज गरीब और बेसहारा लोगों के लिए सामूहिक आदान–प्रदान करती है।

4. **राशि के माध्यम से सहायता–** इस योजना में, गरीबी रेखा के नीचे आने वाले लोगों को निशुल्क या अत्यंत कम दाम में अनाज प्रदान किया जाता है।

5. **सभी जातियों के लिए उपलब्ध –** अंत्योदया अन्न योजना में सभी जातियों के लोगों को उपलब्ध है, चाहे वह ग्रामीण हों या शहरी।

6. **आदर्श सिर्फ एक रुपये–** इस योजना में, गरीबी रेखा के नीचे आने वाले लोगों को एक रुपये के कीमत पर अनाज प्रदान किया जाता है।

अंत्योदया अन्न योजना भारत सरकार की एक महत्वपूर्ण पहल है जो गरीबी के खिलाफ लड़ाई में महत्वपूर्ण योगदान करती है। इसका उद्देश्य है कि हर गरीब और बेसहारा व्यक्ति को उचित और सस्ता खाद्य प्राप्त हो, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके। यह योजना समाज में समानता को बढ़ाने और गरीबी को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

15.प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (पीएम–किसान)–

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (पीएम–किसान) एक प्रमुख कृषि समृद्धि योजना है जो भारत सरकार द्वारा शुरू की गई है। इसका मुख्य उद्देश्य किसानों को आर्थिक सहायता प्रदान करना है और उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करना है। इस योजना के तहत, भारत के किसानों को वार्षिक रु6,000 की आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है, जो तीन बराबरी के किस्तों में रु2,000 के रुप में दी जाती है।

पीएम–किसान योजना का शुभारंभ 24 फरवरी 2019 को किया गया था, और यह योजना सभी भारतीय किसानों के लिए है, खेती के क्षेत्र में निवास करने वाले सभी किसानों को इसका लाभ मिलता है।

इस योजना के तहत, सरकार किसानों को वार्षिक आर्थिक सहायता प्रदान करती है, जो उनके खेती से आय होने के साथ–साथ उनकी संपत्ति को भी बढ़ाती है। यह सहायता उन किसानों को मिलती है जो अपने खेतों में खुद का खेती करते हैं और उनके पास 2 हेक्टेयर या उससे कम जमीन होती है।

प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि के लिए पात्रता मानदंड निम्नलिखित हैं–

1. **किसान का पंजीयन–** किसान को पहले किसान सम्मान निधि योजना के तहत पंजीयन कराना होगा।
2. **आधार संख्या–** किसान का आधार संख्या लिंक होना आवश्यक है।
3. **खेत मालिकी प्रमाण पत्र–** किसान के पास खेत मालिकी प्रमाण पत्र होना चाहिए।
4. पीएम–किसान योजना के तहत किसानों को वार्षिक आर्थिक सहायता की राशि तीन बार भुगतान की जाती है, जो वित्तीय वर्ष में अप्रैल, अगस्त, और दिसंबर महीने में होती है। यह सहायता किसान के बैंक खाते में सीधे जमा की जाती है।

पीएम–किसान योजना के लाभ–

1. आर्थिक सहायतारू किसानों को नियमित आर्थिक सहायता मिलती है जो उनकी आर्थिक स्थिति को मजबूत करती है।

2. बढ़ती संपत्तिरू यह योजना किसानों की संपत्ति को भी बढ़ाती है और उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करती है।

3. **किसानों के लिए सम्मान–** इस योजना से किसानों को सरकार द्वारा सम्मानित महसूस होता है।

पीएम–किसान योजना भारतीय कृषि सेक्टर को मजबूत करने और किसानों को आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। यह योजना किसानों को उनके खेती के लिए स्थिरता और सुरक्षा प्रदान करने में मदद करती है और उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने में मदद करती है।

गरीबी उन्मूलन में सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भूमिका–

सार्वजनिक वितरण प्रणाली (पीडीएस) जो भोजन और खाद्यान्न वितरण के प्रबंधन की एकप्रणाली के रुप में विकसित हुई, गरीबी उन्मूलन में एक प्रमुख भूमिका निभाती है। यह कार्यक्रम भारत की केंद्र सरकार और राज्य सरकार द्वारा संयुक्त रुप से संचालित किया जाता है। जिम्मेदारियों में शामिल हैं–

1. राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों को चावल, गेहूं, मिट्टी का तेल और चीनी जैसी वस्तुओं का आवंटन।
2. गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए राशन कार्ड जारी करना।
3. गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले परिवारों की पहचान।
4. भोजन की कमी का प्रबंधन एवं खाद्यान्न वितरण।

पीडीएसको बाद में जून 1997 में लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस) केरूप में फिर से लॉन्च किया गया और इसे भारत सरकार के उपभोक्ता मामलों केमंत्रालय द्वारा नियंत्रित किया जाता है। टीपीडीएस खाद्यान्न की उचित व्यवस्था और वितरण के लिए गरीबों की पहचान और कार्यान्वयन में प्रमुख भूमिका निभाता है। इसलिए, भारत सरकार के तहत लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली (टीपीडीएस) पीडीएस के समान ही भूमिका निभाती है लेकिन गरीबी रेखासे नीचे के लोगों पर विशेष ध्यान केंद्रित करती है।

भारत में गरीबी उन्मूलन में रोजगार सृजन क्यों महत्वपूर्ण है?

भारत में बेरोजगारी की समस्या को भारत में गरीबी का एक प्रमुख कारण माना जाता है। किसी देश की गरीबी दर को उच्च आर्थिक विकास और बेरोजगारी की समस्या कोकम करके कम किया जा सकता है। भारत सरकार के तहत विभिन्न गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम स्थापित किए गए हैं जिनका उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों को हर साल मांग पर रोजगार और विशिष्ट गारंटीकृत मजदूरी रोजगार प्रदान करके गरीबी उन्मूलन करना है।

गरीबी उन्मूलन में रोजगार सृजन निम्नलिखित कारणों से महत्वपूर्ण है–

1. इससेगरीब परिवारों की आय का स्तर बढ़ेगा और देश में गरीबी की दर को कम करनेमें मदद मिलेगी। इसलिए, बेरोजगारी और गरीबी के बीच एक महत्वपूर्ण संबंधहै।
2. यह ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार कार्यक्रमों के सृजन के माध्यम से ग्रामीण–शहरी प्रवास को कम करेगा।

3. रोजगारकार्यक्रमों के सृजन के माध्यम से आय स्तर में वृद्धि से गरीबों को शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाओं और स्वच्छता सहित बुनियादी सुविधाओं तक पहुंचनेमें मदद मिलेगी।

2.7 गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की अप्रभावीता के प्रमुख कारण

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की अप्रभावीता के कई कारण हैं। ये कारण विभिन्नस्तरों पर हो सकते हैं, जैसे की योजना तैयारी, कार्यान्वयन, और निगरानी मेंचुक। निम्नलिखित हैं कुछ मुख्य कारण–

1. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब परिवारों की सही संख्या कीसही पहचान और लक्ष्यीकरण नहीं कर सकता है। परिणामस्वरूप, कुछ ऐसे परिवार जोइन कार्यक्रमों के तहत पंजीकृत नहीं हैं, पात्र लोगों के बजाय सुविधाओं कालाभ उठाते हैं
2. समान सरकारी योजनाओं का ओवरलैप होना अप्रभावीता का एक प्रमुख कारण है क्योंकि इससे गरीब लोगों और अधिकारियों के बीच भ्रम पैदा होता है और योजना का लाभगरीबों तक नहीं पहुंच पाता है।
3. देशमें अधिक जनसंख्या के कारण योजनाओं का लाभ बड़ी संख्या में लोगों तकपहुंचाने का बोझ बढ़ जाता है और इससे कार्यक्रमों की प्रभावशीलता कम होजाती है।
4. योजनाओं के कार्यान्वयन के विभिन्न स्तरों पर भ्रष्टाचार एक और बड़ा कारण है।
5. ट.अक्सर गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की योजनाओं की तैयारी में विचारशीलता की कमी होती है। योजनाओं के अप्रभावित होने का कारणयह होता है कि योजनाएं गरीबी के असली कारणों को समझने और समाधान करने की बजाय केवल सार्वजनिक वित्त के आधार पर बनाई जाती हैं।
6. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की अप्रभाविता को समाधान करने के लिए, योजनाओं को समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए, संवेदनशीलता और संविधानिक संरचना की मजबूती का ध्यान दिया जाना चाहिए, और समाज के सभी वर्गों के लिए उपयुक्त नीतियों को लागू किया जाना चाहिए।

2.8 बोध प्रश्न

1. गरीबी उन्मूलन पर पंचवर्षीय योजनाओं की दृष्टिकोण पर चर्चा कीजिए–

.....
.....
.....
.....

2. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लक्ष्य क्या है? इसे किस प्रकार क्रियान्वित किया गया है ।

.....
.....
.....
.....

3. ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के मुख्य लक्ष्य की चर्चा कीजिए–

.....
.....
.....

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भारत सरकार की वार्षिक रिपोर्ट 1985–87 ग्रामीण विकास विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार ।
2. अरोड़ा आर.सी.1986 भारत में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम कुछ तथ्य, ग्रामीण विकास केंद्र चंडीगढ़ ।
3. दांडेकर एवं एन के रथ,1971 भारत में गरीबी, संगम, दिल्ली ।
4. पोधी, किशोर चंद्र 1982,आधुनिक भारत में ग्रामीण विकास,बी. आर. पब्लिशर्स, नई दिल्ली ।
5. प्रसाद, कामता.1985 गरीबी उन्मूलन की योजना,एगरीकोल– नई दिल्ली ।
6. श्रीवास्तव, ए. के,1986,भारत में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम– नीति एवं प्रशासन, दीप एंड दीप– नई दिल्ली ।

खण्ड–03

इकाई–03

खाद्य सुरक्षा

इकाई का संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देष्य

3.3 खाद्य सुरक्षा का अर्थ

3.4 खाद्य सुरक्षा क्यों

3.5 खाद्य सुरक्षा की जरूरत किसे

3.6 भारत में खाद्य असुरक्षा

3.7 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम–2013

3.8 खाद्य सुरक्षा के रास्ते मे कठिनाईयां

3.9 खाद्य सुरक्षा हेतु उपाय

3.10 बोध प्रष्न

3.11 सारांष

3.12 षब्दार्थ सूची

3.13 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

3.14 बोध प्रष्नों के सम्भावित उत्तर

3.15 विषयनिष्ठ प्रष्न

3.1 प्रस्तावनाः– खाद्य सुरक्षा का अर्थ केवल खाद्यान्न की सुरक्षा ही नही अपितु सर्वसुलभ बनाना है। अर्थात खाद्य सुरक्षा नागरिकों को प्रदान की जाने वाली न्युनतम पोषण है जो विभिन्न माध्यमों से उपलब्ध करायी जाती है। खाद्य सुरक्षा की जब भी हम बात करते है तो हम दो पहलुओं की बात करते है। प्रथम खाद्यान उपलब्धता और द्वितीय खाद्यान वितरण। खाद्य सुरक्षा कल्याण के एक ऐसे अस्त्र के रूप में प्रयोग किया जा सकता है जहाँ भुखमरी और गरीबी के कारण लोगो को अपने सामान्य जीवन को व्यतीत करने हेतु न्यूनतम आवष्यक पोषण भी प्राप्त नही होता है। इसके अन्तर्गत खाद्य सुरक्षा मुद्दा की गम्भीरता राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 तथा इसकी विषेषताओं, समस्याओं तथा अन्य पहलुओं पर भी प्रकाष डाला गया है।

3.2 उद्देष्य :– इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र खाद्य सुरक्षा के बारे में जान सकेंगे।

1- सरकारी योजनाओं के बारे में जान सकेंगे।

2- खाद्य सुरक्षा किसके लिए आवश्यक है।

3- खाद्य सुरक्षा कैसे प्रदान की जाती है, से अवगत हो सकेगें।

4- खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए सरकार द्वारा किये गये प्रयास के बारे में जान सकेंगे।

5. खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के महत्व को समझ सकेंगे तथा समझा सकेगें।

3.3 खाद्य सुरक्षा का अर्थः– खाद्य सुरक्षा को समझने के लिए सबसे महत्वपूर्ण उसके अर्थ को अच्छे ढंग से जान लेना आवश्यक है। इसकी आवष्यकता मनुष्य को उसकी डिग्निटी को बचाने के लिए यह आवष्यक है कि उसे पोषण युक्त खाद्यान मिले। अर्थात एक स्वस्थ एवं क्रियाषील जीवन बचाने के लिए

आवष्यक भोजन भौतिक और आर्थिक रूप से समस्त जनसंख्या के लिए दीर्घकाल के लिए सुनिष्चित करना। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि स्वस्थ एवं क्रियाषील जीवन के लिए आवश्यक भोजन अर्थात स्वस्थ होने के लिए भोजन केवल मात्रा में ही नही अपितु गुणात्मक रूप से भी अच्छा होना चाहिए। सभी प्रकार के पोषक तत्व उपसिथत होना जिससे षारीरिक और मानसिक विकास हो सके और व्यक्ति पूर्णरूप से क्रियाषील हो कर स्वस्थ जीवन में आगे बढ़े तथा विकास में योगदान दे सके। अमर्त्य सेन ने भूखमरी के लिए केवल अकाल को कारण मानना गलत बताया इसके अनुसार यदि खाद्यानों का वितरण सही ढ़ग से और सही (Needy) व्यक्ति तक पहुंचना आवश्यक है। यदि वितरण की सही नीतियां लागू की जाएं तो भूखमरी से बचा जा सकता है और इसके लिए आवश्यक है खाद्य सुरक्षा उपलब्धता। इस प्रकार खाद्य सुरक्षा सार्वजनिक वितरण प्रणाली शासकीय सतर्कता और खाद्य सुरक्षा के खतरे की स्थिति में सरकार द्वारा की गयी कार्यवाही पर निर्भर है। खाद्य सुरक्षा का अर्थ 1970 के दशक से पूर्व बहुत संकुचित था। अर्थात खाद्यान की पर्याप्त उपलब्धता ही खाद्य सुरक्षा का पर्याय मानी जाती थी। लेकिन डा सेन के द्वारा की गयी विष्लेषणात्मक स्टडी में इसे एक नया आयाम दिया। विष्व खाद्य षिखर सम्मेलन 1995 में– वैयक्तिक, पारिवारिक, क्षेत्रीय राष्ट्रीय तथा वैष्विक स्तर पर खाद्य सुरक्षा का अस्तित्व सभी भी है जब सक्रिय और स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए आहार संबंधी जरूरतों और खाद्य पदार्थो का पूरा करने के लिए ख्पर्याप्त सुरक्षित एवं पौष्टिक खाद्य तक सभी लोगो की भौतिक एवं अर्थिक पहुंच सदैव हो। निर्धनता उन्मूलन किया जाना खाद्य पहुंच के लिए आवष्यक माना गया। खाद्य सुरक्षा तभी समझा जायेगा जब जब पर्याप्त मात्रा में खाद्यान की उपलब्धता हो तथा जनसंख्या के पास अपनी आवष्यकता (खाद्य) को पूरा करने की पर्याप्त क्रय षक्ति हो तथा विकट से विकट स्थिति में लोगों के पास खाद्य सुरक्षा पूर्ण पौष्टिकता के साथ उपलब्ध हो।

3.4 खाद्य सुरक्षा क्यों:–जब बंगाल में सन् 1943 में अकाल पड़ा तो वहां सार्वाधिक प्रभावित होने वाले लोगो में खेतिहर मजदूर, मछुआरे, परिवहनकर्मी, अनियमित श्रमिक, इत्यादि लोग थे क्योंकि खाद्यानों के कीमतों में बेतहासा वृद्धि हुई और खाद्य इनकी पहुंच से दूर हो गया तथा अधिकतर मृत्यु को प्राप्त हो गये। अर्थात समाज का गरीब, शोषित मजबूर व्यक्ति तो बहुतायत खाद्य असुरक्षा से ग्रसित रहता ही है परन्तु विकट स्थितियां जैसे–भूकम्प, सूखा, बाढ़, सूनामी, अकाल इत्यादि के समय निर्धनता रेखा के उपर जीवन यापन करने वाले लोग भी खाद्य सुरक्षा से प्रभावित हो सकते हैं और इसी का परिणाम था कि बंगाल में 30 लाख से अधिक लोग खाद्य सुरक्षा ससमय प्राप्त न होने से अकाल के समय अपनी जीवन को खो बैठे। हाल ही के दिनों में जब पूरी दुनिया कोरोना के भीषण विभीषिका में जल उठी थी तो खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए सरकारों ने बहुत प्रयास किये परन्तु उचित वितरण और नीतियों को ससमय लागू न होने से बहुत से संस्थानों में लोगो के भूखे मरने की खबरें प्रकाष में आयी थीं। हालांकि बंगाल जैसी घटना से सरकारों ने सबक लेते हुए विभिन्न माध्यमों से खाद्य सुरक्षा की उपलब्धता सुनिष्चित करने का प्रयास किया। जैसे वन नेंषन वन कार्ड के जरिये आप देष के किसी भी कोने में खाद्य सुरक्षा से आच्छादित हों सकते हैं।

अतः किसी भी देष में खाद्य सुरक्षा इसलिए आवष्यक होता है ताकि सदैव खाद्य की उपलब्धता सुनिष्चित की जा सके।

3.5 खाद्य सुरक्षा की जरूरत किसे:–भारत या भारत जैसे विष्व के तमाम देषों में भूमिहीन पारम्परिक सेवा प्रदाता, दैनिक कामगार, निराश्रित लोग तथा भिखारी व जंगलों मे जीवन व्यतीत करने वाली मानव जातियों की संख्या अत्यधिक है जो अपने दैनिक खाद्य आपूर्ति के लिए जी तोड़ मेहनत करते है। फिर भी दैनिक रूप से पौष्टिक और संतुलित आहार इनके परिवार को उपलब्ध नही हो पाता है। जिससे यह अपने

साथ–साथ अपने परिवार का भरण पोषण कर सके। इस प्रकार के लोगो की संख्या पूरे देष में है परन्तु उत्तर प्रदेष, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पष्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेष, महाराष्ट्र में इनकी सर्वाधिक संख्या है। जो खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से असुरक्षित है।

3.6 भारत में खाद्य असुरक्षाः–विगत 55 वर्षों से अर्थात हरित क्रान्ति के बाद से भारत खाद्यान के मामले में आत्मनिर्भरता की तरफ कदम बढ़ा दिया था और आज खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर है। नीति निर्माताओं द्वारा उपयुक्त और ससमय नीतियों के निर्माण तथा क्रियान्वयन द्वारा खाद्य सुरक्षा की उपलब्धता सुनिष्चित किया जाने का प्रयास किया गया तथा आगे भी होता रहेगा। जिसके कारण खाद्यान की उपलब्धता अज़ैर अधिक सुनिष्चित हो पायी है। जिससे बफर स्टाफ बनाने में सहायता मिलती तथा दूसरी तरफ सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा खाद्य सुरक्षा से असुरक्षित वर्ग को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराया गया। बफर स्टाफ का अर्थ सरकार द्वारा भविष्य के प्रयोग हेतु खाद्यानों (गेहूं चावल इत्यादि) का स्टाक बना कर रखना है जिसे आवष्यकता पड़ने पर विकट से विकट परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सके। इसके लिए किसानों से सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य पर इनके अनाजों को खरीदती है तथा अपने खाद्यान भण्डारों को भर कर रखती है तथा उपलब्ध खाद्यानों का निर्गम कीमत पर आवष्यकता के अनुरूप वितरण किया जाता है।

भारतीय संविधान निर्माताओं ने अपने दूरदृष्टि का परिचय देते हुए अनु0–47 में राज्य को निर्देषित किया राज्य का यह कर्तव्य होगा की जनता के पोषण के स्तर को बनाये रखने की दिषा में कार्य करेगा अर्थात खाद्य सुरक्षा प्रदान किया जायेगा। फलस्वरूप भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम–2013 लागू किया गया।

3.7 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम–2013 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम–2013. 10 दिसम्बर 2013 से लागू हो गया। अर्थात भारतीय नागरिकों को 10 दिसम्बर 2013 से खाद्य सुरक्षा एक कानूनी अधिकार के रूप में उपलब्ध कराया गया। इसमें खाद्य सुरक्षा का अर्थ कल्याण के उपाय के रूप में दे कर खाने का कानूनी अधिकार के रूप में दिया गया अधिकार है। इसके अन्तर्गत मनुष्य के जीवन चक्र में अनाज और पोषक आहार की सुरक्षा प्रदान करने की बात कही गयी। इस अधिनियम की प्रमुख विषेषताओं पर प्रकाष डाला जाए तो यह बीपीएल अर्थात गरीबी रेखा से ऊपर जीवन यापन करने वाले परिवारों को भी लक्ष्यित करती है क्योंकि 75 प्रतिषत ग्रामीण और 50 प्रतिषत शहरी जनसंख्या को लक्ष्य करती है। प्राथमिक परिवार एवं अत्योदय परिवारों को क्रमषः प्रति सदस्य 5 किलोग्राम अनाज तथा अंत्योदय को 35 किलोग्राम दिया जायेगा जिसमें दोनो परिवारों के प्राप्त होने वाले अनाजों में चावल 3 रू प्रति किलोग्राम गेहूं 2 रू0 प्रति किलोग्राम तथा मोटा अनाज 1 रू0 प्रति किलोग्राम के हिसाब से प्राप्त कराया जाएगा। साथ ही गर्भवती महिलाओं को गर्भकाल से बच्चे के जन्म के 06 माह तक आंगनबाड़ी केन्द्रों पर निःषुल्क भोजन, 6–14 वर्ष के बच्चों को कम से कम एक टाईम का स्कूलों में निःषुल्क भोजन उपलब्ध कराने तथा गर्भवती महिलाओं को अधिकतम 6000 मातृत्व भत्ता, परिवार की मुखिया के रूप में वरिष्ठ महिला का नाम, खाद्य सुरक्षा न मिलने पर सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति उपलब्ध कराना, जिला षिकायत निवारण, अधिकारी द्वारा लापरवाही पर वेतन से कटौती, राषन की दुकानों की निगरानी हेतु सतर्कता समीतियों का प्रावधान किया गया तथा साथ ही समाजिक अंकेक्षण का प्रावधान भी अधिनियम में किया गया।

3.8 खाद्य सुरक्षा के रास्ते मे कठिनाईयांः–

1. **भुखमरी एवं कुपोषणः–**भारत तथा विष्व के बहुतायत अविकसित देषों में भुखमरी एवं कुपोषण की स्थिति गंभीर समस्या के रूप में है इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि भारत का हर दूसरा बच्चा तथा हर दूसरी महिला खून की कमी से पीड़ित है। भारत वैष्विक भुखमरी सूचनांक 2022 में 121 देशों में 107वें स्थान पर है। अर्थात सरकार को पोषण अभियान, मातृ वंदना योजना, मिषन इन्द्र धनुष इट राइट इंडिया मूवमेंट की तरह ही नये प्रयास करने होगें।

2. **अपषिष्ट का अत्यधिक होनाः–**भारत में अनाज भण्डार के दौरान बफर स्टाक तैयार करने के दौरान होने वाले अपषिष्ट को षून्य के स्तर तक लाने का प्रयास करना होगा। क्योंकि खाद्य उत्पादन का 7 प्रतिषत तथा फल एवं सब्जियों का 30 प्रतिषत अपर्याप्त भण्डारण सुविधाओं एवं कोल्ड स्टोरेज की कमी कारण बर्बाद हो जाता है। इस प्रकार भुखमरी और कुपोषण से 02 करोड़ से अधिक षिकार लोगो को खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराने में मदद मिल सकती है।

3. **जनसंख्या वृद्धिः–**लगातार जनसंख्या वृद्धि के कारण बेराजगारी की दर भी अधिक होती जा रही है। फलस्वरूप लोगो की कार्यषीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना प्रारम्भ हो रहा है। अर्थात क्रय षक्ति कम होती जा रही है जो पोषण मुक्त भोजन प्राप्त करने के मार्ग में एक रोड़ा है।

4. **कृषि पर लगातार बढ़ता दबाव–**बढ़ती जनसंख्या की वजह से कृषिजोतो का आकार लगातार छोटा होता जा रहा है। जिस कारण खाद्यान उत्पादन तथा उत्पादकता दोनों प्रभावित होते है और खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के मार्ग में रोड़ा उत्पन्न होता है।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त भी राजनीतिक कारण, आर्थिक कारण, समाजिक संरचना तथा प्रवास स्थान यातायात (Transportation) की समस्या, कालाबाजारी, वितरण में समस्या इत्यादि कारण भी प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। अतः खाद्य सुरक्षा प्रभावित होती है।

3.9 खाद्य सुरक्षा हेतु उपाय–

खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य प्राप्त करने हेतु उपरोक्त वर्णित समस्याओं का समाधान एवं निम्नलिखित उपाय ससमय तथा नियमानुसार अपनाया जाए तो कारगर साबित हो सकते हैः–

1. सार्वजनिक वितरण प्रणाली को ठीक करना।
2. सतत् कृषि विकास हेतु सरकार द्वारा उपाय तथा प्रबंधन करना।
3. पशु खाद्य सुरक्षा की तरफ पहल को आगे बढ़ाना।
4. गरीबी निवारण कार्यक्रमों एवं पोषण से संबंधित कार्ययोजनाओं का क्रियान्वयन सही ढंग से करना।
5. किसानो हेतु उचित साख का निर्माण करना।
6. किसानो की फसलों का सरकारी क्रय केन्द्रों पर आसानी से उचित मूल्य पर भुगतान कराना।
7. स्वामीनाथन समिति के सिफारिशों को लागू करना इत्यादि।

3.10 बोध प्रष्न

प्रष्न 1. वैष्विक भूखमरी सूचकांक 2022 में भारत का कौन सा स्थान है?

क. 105 ख. 106 ग.107 घ. 121

प्रष्न 2. भारत में खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 कब लागू हुआ–

क. 10 सितम्बर 2013

ख. 10 दिसम्बर 2013

ग. 01 अप्रैल 2013

घ. 01 जनवरी 2013

प्रष्न 3. खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु संविधान के किस अनुच्छेद में पोषण स्तर बनाये रखने की बात की गयी है।

क. अनुच्छेद 52

ख. अनुच्छेद 42

ग. अनुच्छेद 47

घ. उपरोक्त में कोई नही

3.11 सारांषः–

गरीबी एक विकट समस्या है। इससे निपटारा पाने के लिये लगातार प्रयास सरकारों द्वारा किये जा रहे परन्तु इसे समाप्त करने से पूर्व देष के नागरिको को भूखमरी से बचाने हेतु खाद्य सुरक्षा उपलब्ध कराया जाना एक महत्वपूर्ण कदम हैं इस दिषा में खाद्य सुरक्षा किसे प्रदान किया जाये को पहचानना एक चुनौती पूर्ण कार्य है भारत में खाद्य सुरक्षा प्रदान करने हेतु खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के माध्यम से देष के आधे से अधिक जनसंख्या को खाद्य सुरक्षा से आच्छादित किया गया।

3.12 षब्दार्थ सूचीः– भूखमरी– जो लोग अपने न्यूतम आवष्यकता (भोजन कपड़ा मकान) की पूर्ति नही कर पाते भूखमरी का षिकार होते है।

अपषिष्ट– आनाज भण्डारण में खराब होने वाले खाद्यान

क्रय षक्ति– व्यक्ति के पास वस्तुओं को खरीदने हेतु उपलब्ध मुद्रा

वितरण– सार्वजनिक वितरण का अर्थ खाद्यानों को सरकारी विक्रेतओं के माध्यम से उपलब्ध कराना।

3.13 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

झिंगन एम. एल. विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन, वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि. दिल्ली 2020

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन', षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

सिंह योगेश कुमार एवं गोयल आलोक कुमारः विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन राधा पब्लिकेशन्स नई दिल्ली

नर्कसे, रैग्नर (1961), अविकसित देशों में पूंजी निर्माण की समस्याए,न्यू योर्क, ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय प्रेस, पी, 163.

सिन्हा वी. सी. : आर्थिक संवृद्धि और विकास, मयूर पेपरबैक्स नोएडा

एस.के.मिश्रा; वी. के. पुरी (2010), विकास और योजना का अर्थशास्त्र सिद्धांत और व्यवहार (12वां संस्करण), हिमालय पब्लिशिंग हाउस, आईएसबीएन 978–81–8488–829–4.

3.14 बोध प्रष्नों के सम्भावित उत्तर

प्रष्न 1 ग.107

प्रष्न 2. ख. 10 दिसम्बर 2013

प्रष्न 3. ग. अनुच्छेद 47

3.15 विषयनिष्ठ प्रष्न

प्रष्न 1. खाद्य सुरक्षा की आवष्यकता पर प्रकाष डालिये?

प्रष्न 2. भारत में खाद्य सुरक्षा अधिनियम 2013 के प्रमुख प्रावधानों की चर्चा किजिये?

प्रष्न 3. खाद्य सुरक्षा के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों एवं उनको दूर करने के ष्उपायो को समझाइए?

खण्ड–03

इकाई–04

शिक्षा एवं स्वास्थ्य विकास

इकाई का संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देष्य

4.3 शिक्षा

4.4 शिक्षा का महत्व

4.5 भारत की शिक्षा प्रणाली की समस्याएँ

4.6 स्वास्थ्य विकास

4.7 स्वास्थ्य के विभिन्न घटक

4.8 स्वस्थ्य जीवन शैली के लाभ व कारक

4.9 भारत में गरीबी के सन्दर्भ में स्वास्थ्य एवं शिक्षा की स्थिति

4.10 उच्च गरीबी रेखा का समय

4.11 निष्कर्ष

4.12 बोधात्मक प्रश्न

4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.1 प्रस्तावना

स्वास्थ्य एवं शिक्षा एक पहल है जिसका उद्देश्य सूचना का प्रसार करना और उन व्यवहारों को बढ़ावा देना है जो सामान्य आबादी के समग्र कल्याण में योगदान करते है। स्वास्थ्य एवं शिक्षा व्यक्तियों को जीवन के विभिन्न चरणों में आने वाली चुनौतियों से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल से लैस करती है, जिससे इष्टतम कल्याण को बढ़ावा मिलता है और लचीलापन पैदा होता है। व्यक्तियों के समग्र विकास के लिए स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा को शामिल करना आवश्यक है, इसलिए इन तीन घटकों के संपूर्ण एकीकरण की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है। स्वास्थ्य और शिक्षा के बीच संबंध को अक्सर स्वास्थ्य जागरुकता को बढ़ावा देने और उसके बाद समग्र स्वास्थ्य परिणामों में सुधार के लिए शिक्षा के उत्प्रेरक के रुप में देखा जाता है। स्वास्थ्य एवं शिक्षा के अनुशासन में अध्ययन के विषयों और क्षेत्रों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। स्वास्थ्य शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण की गुणवत्ता को बढाना है, यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति और व्यापक समुदाय दोनों इष्टतम स्वास्थ्य बनाए

रखे और स्वास्थ्य संबंधी मामलों के बारे में उच्च स्तर की चेतना रखें। यही कारण है कि स्वास्थ्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में आंतरिक और बाहरी दोनों वातावरणों में मौजूद कई कारकों की समीक्षा शामिल है। इसके अलावा यह मानव शरीर और मस्तिष्क दोनों के इष्टतम कामकाज को सुविधाजनक बनाने के लिए स्थितियों को विनियमित करने में फायदेमंद है। मानव शरीर के सामान्य संचालन में किसी भी बाधा की उपस्थिति कई प्रकार की बीमाररयों को जन्म देती है। इसलिए, यह आवश्यक है कि व्यक्तियों को मानव शरीर की शारीरिक संरचना और शारीरिक प्रकियाओं की समझ हो। आसके अलावा, यह समझ होना जरूरी है कि मानव शरीर अपने परिवेश के साथ इस तरह से बातचीत करता है कि उपरोक्त जानकारी को स्वास्थ्य शिक्षा के एक घटक के रुप में वर्गीकृत किया जा सके। इसके साथ ही दूसरा घटक प्रत्येक व्यक्ति के बाहर मौजूद होता है, जिसमें उनका सामाजिक परिवेश और उनकी प्रगति के साथ इसका संबंध शामिल है।

4.2 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

1. शिक्षा क्या है एवं उसके महत्व को जान सकेंगे।
2. स्वास्थ्य क्या है एवं स्वास्थ्य के महत्व को जान सकेंगे।
3. शिक्षा एवं स्वास्थ्य के पारस्परिक सम्बन्धों को समझ सकेंगे।
4. शिक्षा के आवश्यक मूलभूत सुविधाओं को बारे में समझ सकेंगे।
5. स्वास्थ्य में सुधार लाने वाले उपायो को जान पायेगे।

4.3 शिक्षा

शिक्षा मानव समाज के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह समाज के सभी वर्गों और समुदायों के लिए समान अधिकार और अवसर सुनिश्चित करती है। शिक्षा का मुख्य लक्ष्य ज्ञान, विचारशीलता, और कौशल का विकास करना होता है ताकि विद्यार्थी समाज में सकारात्मक योगदान कर सकें। शिक्षा के लाभों में समाज में उच्च स्तर पर समानता, न्याय, और अधिकारों का संरक्षण शामिल हैं। शिक्षा के माध्यम से लोगों को विचार करने और सोचने की क्षमता, स्वतंत्रता और स्वाधीनता का अधिकार, और स्वयं के निर्माण के लिए आत्म–विश्वास मिलता है। शिक्षा के अन्य महत्वपूर्ण लाभों में रोजगार के अवसरों में सुधार, आर्थिक विकास, सामाजिक समायोजन, और राष्ट्रीय विकास की गति में सुधार शामिल हैं। शिक्षा के माध्यम से लोगों को नैतिकता, समाज सेवा, और सामाजिक सद्भावना के मूल्यों की प्राप्ति होती है। इसके अलावा, शिक्षा अन्य समाजिक संस्थाओं और कार्यक्रमों के साथ मिलकर सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का समाधान करने में मदद करती है। अधिकतर देशों ने शिक्षा को अपने राष्ट्रीय विकास की प्राथमिकता बनाया है और शिक्षा को उनकी सामाजिक और आर्थिक उन्नति के लिए महत्वपूर्ण माना है। इसलिए, शिक्षा समाज के सभी क्षेत्रों में विकास और प्रगति का माध्यम बनती है।

4.4 शिक्षा का महत्व

समकालीन तकनीकी परिदृश्य में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। समकालीन समाज में शिक्षा की गुणवत्ता बढाने के लिए कई दृष्टकोणों का प्रयोग किया जा रहा है। वर्तमान में, शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान समय में, 12वीं कक्षा के पूरा होने के बाद, रोजगार के साथ–साथ दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से उच्च शिक्षा प्राप्त करना संभव है। शिक्षा की लागत बहुत अधिक नहीं है, जिससे सीमित वित्तीय संसाधनों वाले लोग भी अगे की पढ़ाई कर सकें। दूरस्थ शिक्षा बहुत कम लागत पर प्रतिशत और प्रसिद्द विश्वविद्यालयों में नामांकन की सुविधा प्रदान करती है। आसके अतिरिक्त, छोटे शैक्षणिक संस्थान भी हैं जो कौशल विकास को बढ़ावा देने के लिए कुछ क्षेत्रों में विशेष प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। सरकार सकिय रूप से शिक्षा के महत्व को पहचान रही है और अबादी के सभी व्यक्तियों के लिए शिक्षा तक पहुँच सुनिश्चित करने की दिशा में लगातार प्रयास कर रही है।

शिक्षा के बिना एक व्यक्ति की तुलना ठोस अधार से रहित संरचना से की जा सकती है। शिक्षा का हमारे जीवन में महत्वपूर्ण महत्व है। व्यक्ति के अस्तित्व में शिक्षा की मौलिक भूमिका है। शिक्षा और सूचना न केवल व्यक्तिगत विकास के लिए बल्कि अर्थव्यवस्था की उन्नति के लिए भी महत्वपूर्ण है। संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देने और व्यक्तियों को महत्वपूर्ण सोच में संलग्न होने, सूचित निर्णण लेने और जीवन के सभी पहलुओं में प्रगति करने की क्षमता से लैस करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा व्यक्तियों को सशक्त बनाने और उन्हें जीवन के सभी पहलुओं और पेशेवर क्षेत्रों में उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए आवश्यक कौशल और ज्ञान से लैस करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यक्तियों के दृशष्टकोण को व्यापक बनाने, समझ को बढावा देने और उन्हे प्रगति और विकास के लिए आवश्यक कौशल से लैस करने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। शिक्षा को अक्सर सबसे अमूल्य चीज माना जाता है जो किसी व्यक्ति को मिल सकती है। मानवता का भविष्य एकमात्र अधार के रूप में शिक्षा पर निर्भर है।

हमारे जीवन में शिक्षा का महत्व सर्वविदित है। शिक्षा अनेक सम्भावनाएँ और अवसर प्रदान करती है। समकालीन समाज में, रोजगार, उद्यमिता, या किसी अन्य व्यावसायिक प्रयास में संलग्न होने के लिए शिक्षा एक अवश्यक शर्त बन गई है। रोजगार की तलाश करते समय, कंपनियाँ अक्सर प्राथमिक विचार के रूप में किसी व्यक्ति की शैक्षिक पृष्ठभूमि के बारे में पूछताछ करती हैं। किसी की शैक्षणिक गतिविधियों के बारे में पूछताछ करना अक्सर परिवार के सदस्यों की प्राथमिक चिंता होती है। किसी के जीवनकाल में वित्तीय संसाधन प्राप्त करने के लिए शिक्षा एक आवश्यक शर्त है। समकालीन समाज के सभी क्षेत्रों में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। यह हमारे जीवन में शिक्षा के महत्व को दिखाता है। शिक्षा व्यक्तियों को उस दुनिया के कई पहलुओं की व्यापक समझ प्रदान करती है जिसमें हम रहते हैं। किसी देश की उन्नति में शिक्षा के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। नवीन विचारों की उत्पत्ति और नवीन सोच में संलग्न होने की

क्षमता के लिए शिक्षा प्राप्त करना अवश्यक है। शिक्षा के माध्यम से ज्ञान और कौशल प्राप्त किए बिना प्रगति और विकास की संभावना अप्राप्य हो जाती है।

शिक्षा एक मौलिक प्रकिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति जानकारी प्राप्त करते हैं, कौशल विकसित करते हैं और विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। जीवन में सफलता और खुशी प्राप्त करने के लिए व्यापक शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। शिक्षा की मानव विकास में महत्वपूर्ण भूमिका है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक प्रगति के लिए उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती है। आत्मनिर्भर और कुशल बनने का कार्य इस घटना से सुगम होता है। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता है। जिन व्यक्तियों ने औपचारिक शिक्षा प्राप्त की है, उनके जीवन में उन लोगों की तुलना में अधिक खुशी होती है जिन्हें शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अधिग्रहण से किसी के पेशेवर प्रक्षेप पथ और वित्तीय संभावनाओं में उल्लेखनीय वृध्दि होने की संभावना है। निम्न स्तर की शिक्षा वाले व्यक्ति कम परिमाण वाले व्यवसायों में नियोजित होते हैं और इस प्रकार उन्हें तुलनात्मक रूप से कम पारिश्रमिक मिलता है। परिणामस्वरूप, वे अपनी अवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ हैं। परिणामस्वरूप, खुशी प्राप्त करने की इनकी क्षमता से समझौता हो जाता है।

शिक्षा का महत्व विश्वसनीय और समृद्ध समाज के निर्माण में अत्यधिक होता है। यहाँ कुछ मुख्य कारण हैं जिनसे शिक्षा का महत्व प्रकट होता हैरू

- **ज्ञान का विकास:** शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान की प्राप्ति होती है, जैसे कि विज्ञान, साहित्य, कला, सामाजिक विज्ञान, और तकनीकी ज्ञान।
- **स्वतंत्रता और स्वाधीनता:** शिक्षा व्यक्ति को स्वतंत्रता और स्वाधीनता का अधिकार प्राप्त करने में मदद करती है, जो उसे अपने विचारों को व्यक्त करने और अपने सपनों को पूरा करने की क्षमता प्रदान करता है।
- **आर्थिक स्वायत्तता:** शिक्षा स्वायत्तता की प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जिससे व्यक्ति अधिक उत्पादक बनता है और समृद्धि में योगदान करता है।
- **सामाजिक समानता:** शिक्षा समाज में समानता की स्थापना में मदद करती है, क्योंकि यह सभी के लिए अवसरों को समान रूप से उपलब्ध कराती है।
- **सामाजिक और आर्थिक विकास:** शिक्षा सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह लोगों को समाज के साथियों के रूप में और आर्थिक गतिविधियों में सक्रिय बनाती है।
- **जागरूकता और बुद्धि की विकास:** शिक्षा व्यक्ति के बुद्धि को विकसित करती है और उसे समाज में सच्चाई और संवेदनशीलता की दृष्टि से जागरूक करती है।

इस प्रकार, शिक्षा व्यक्ति के समूह, समाज, और देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और एक सामर्थ्यपूर्ण, संवेदनशील, और समृद्ध समाज की नींव रखती है।

4.5 भारत की शिक्षा प्रणाली की समस्याएँ

भारत की शिक्षा प्रणाली 1947के बाद से काफी विकसित हुई है, एक सजातीय प्रणाली को बढ़ावा दिया गया है, शिक्षा को हर बच्चे के लिए मौलिक अधिकार बनाया गया है और बिना लाइसेंस वाले स्कूलों पर प्रतिबंध लगाया गया है। तृतीयक छात्र आबादी 1996में 5. 7मिलियन से बढ़कर 2019में 37. 4मिलियन हो गई है।

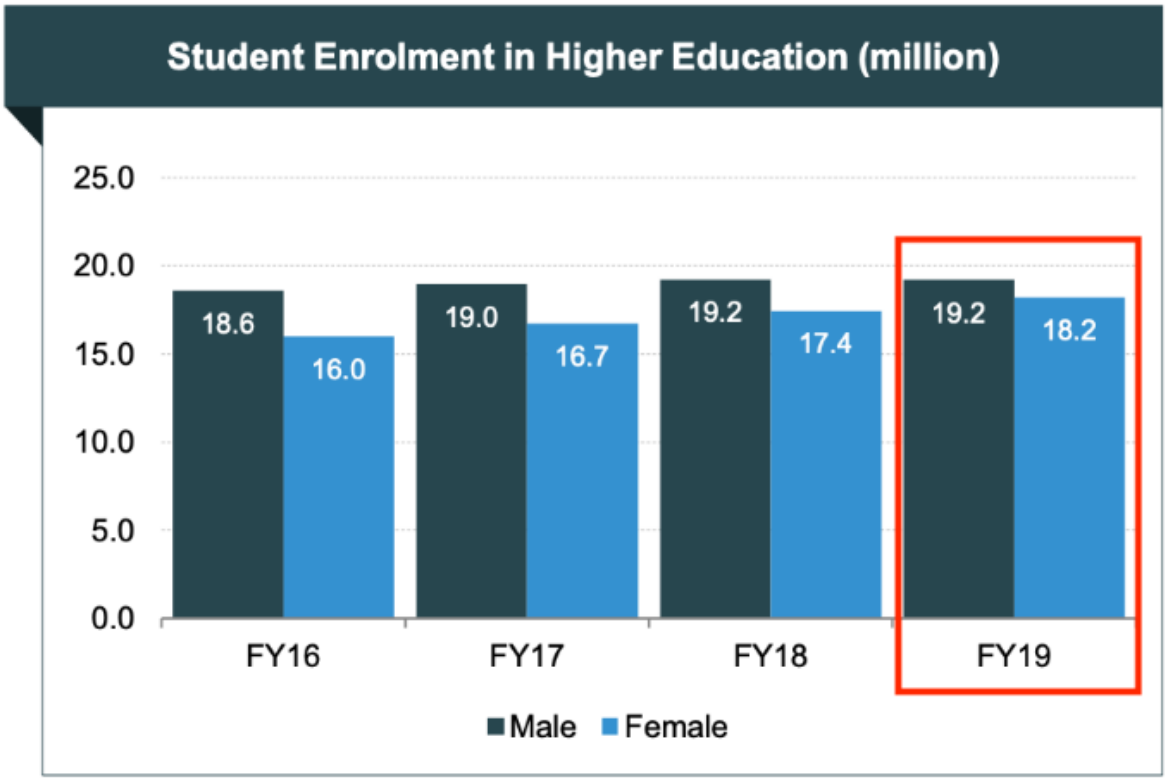

https://aishe.nic.in/aishe/viewDocument.action?documentId=239

विश्वविद्यालयों की संख्या 1990 में 190 से बढ़कर 2019 में 993 हो गई।

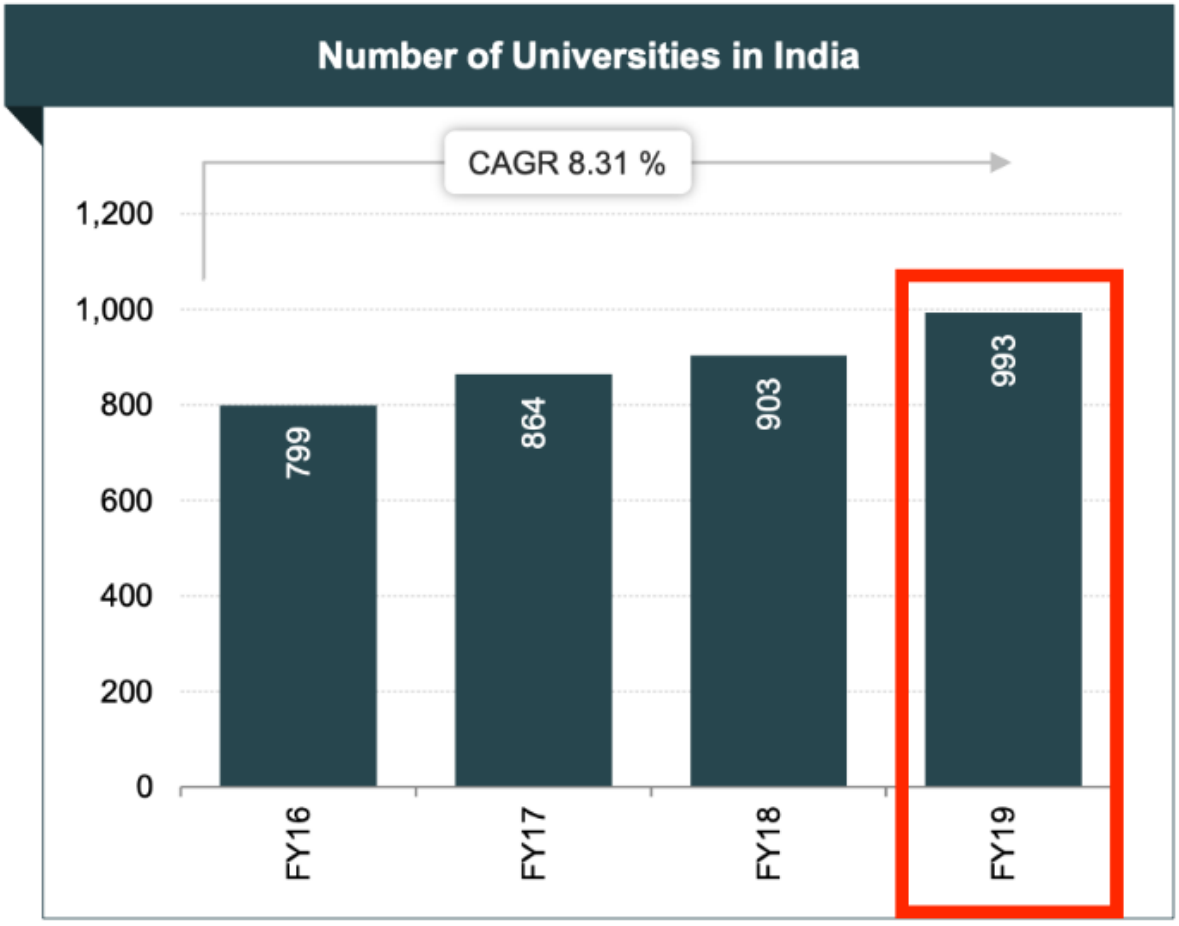

https://aishe.nic.in/aishe/viewDocument.action?documentId=239

2008 और 2016 के बीच, भारत में 18,000 नए कॉलेज स्थापित किए गए, जिनमें भागीदारी दर कम रही, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों और निचली जातियों के बीच। पश्चिमी देशों में औसत छात्र 13 साल की स्कूली शिक्षा प्राप्त करते हैं, जबकि भारत का तृतीयक सकल नामांकन अनुपात (जीईआर) 29% है, जो वैश्विक औसत 36% से कम है। यह असमानता विशेष रूप से वंचित समूहों और ग्रामीण क्षेत्रों के लिए चिंताजनक है।

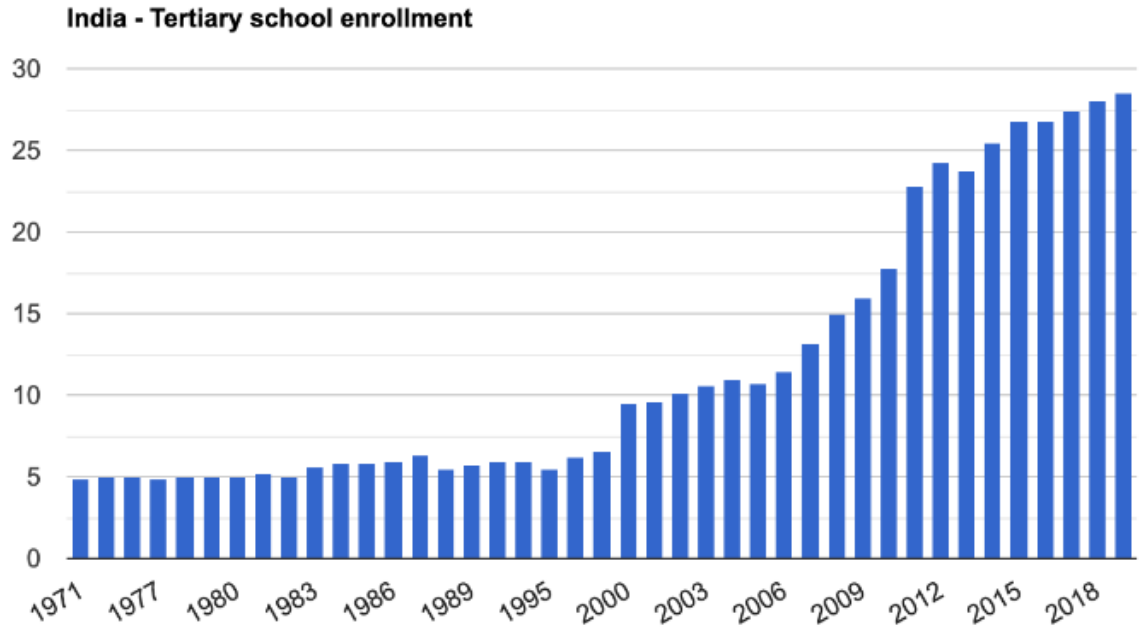

https://www.theglobaleconomy.com/India/Tertiary_school_enrollment/%20%5d/

भारत सरकार का लक्ष्य सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीईआर) बढ़ाना है लेकिन शिक्षा पहुंच बढ़ाने में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन का अनुमान है कि जनसंख्या वृद्धि को समायोजित करने के लिए 200,000 स्कूलों, 700 विश्वविद्यालयों, 35,000 कॉलेजों और 40 मिलियन व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्र सीटों के निर्माण की आवश्यकता है। फंडिंग के मुद्दों के कारण सार्वजनिक स्कूलों में सीटों की कमी हो गई है, जो अन्य चार ब्रिक्स देशों की अर्थव्यवस्थाओं से पीछे है।

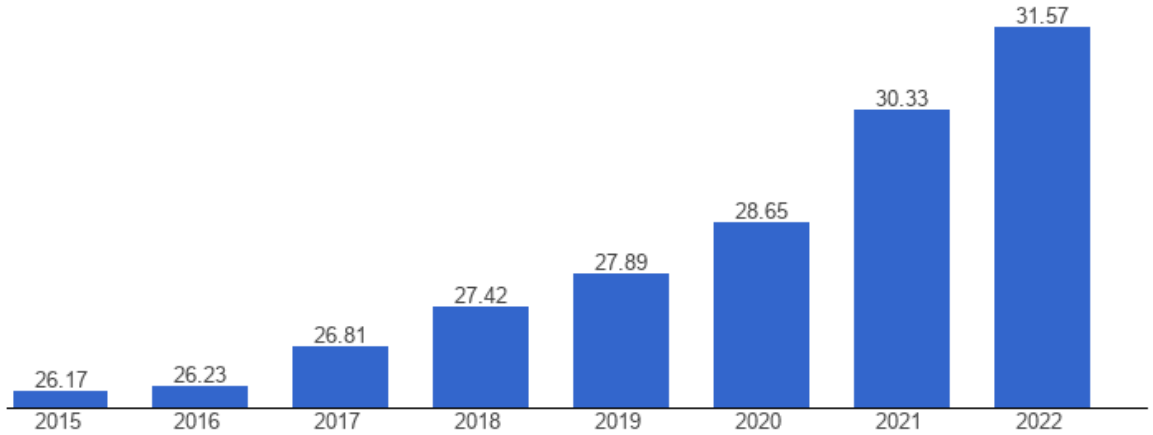

https://www.theglobaleconomy.com/India/Education_spending/

1971 से 2022 तक संकेतक के लिए भारत का औसत मूल्य 12.92 प्रतिशत था, जो 1971 में 4.76 प्रतिशत से लेकर 2022 में 31.57 प्रतिशत तक था। नवीनतम मूल्य 31.57 प्रतिशत है, जबकि 2022 के लिए विश्व औसत 41.01 प्रतिशत है।

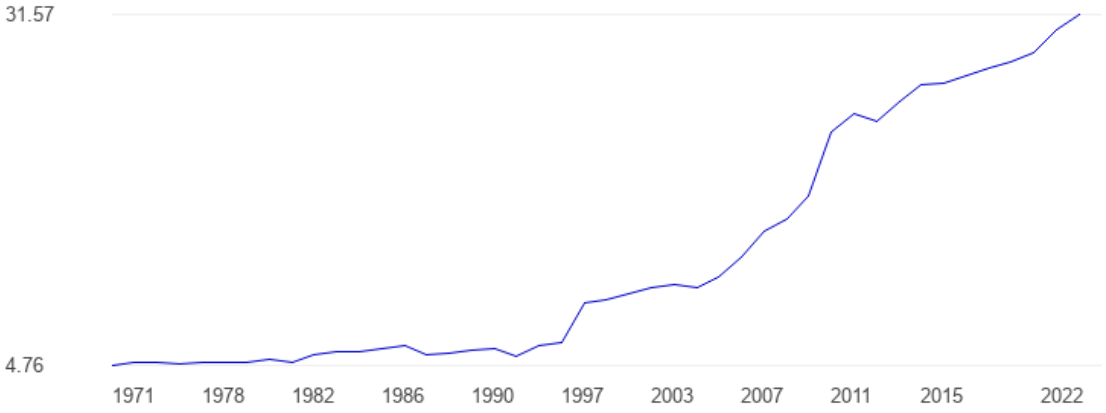

https://www.theglobaleconomy.com/India/Education_spending/

भारत में तृतीयक विद्यालय नामांकन, पिछले पांच वर्षों में माध्यमिक विद्यालय पूरा करने वाले प्रतिशत के रूप में तृतीयक स्तर की शिक्षा में छात्रों की संख्या है। सकल नामांकन अनुपात आयु समूह की जनसंख्या के लिए कुल नामांकन का अनुपात है, और तृतीयक शिक्षा के लिए आम तौर पर प्रवेश के लिए न्यूनतम शर्त के रूप में माध्यमिक स्तर की शिक्षा के सफल समापन की आवश्यकता होती है।

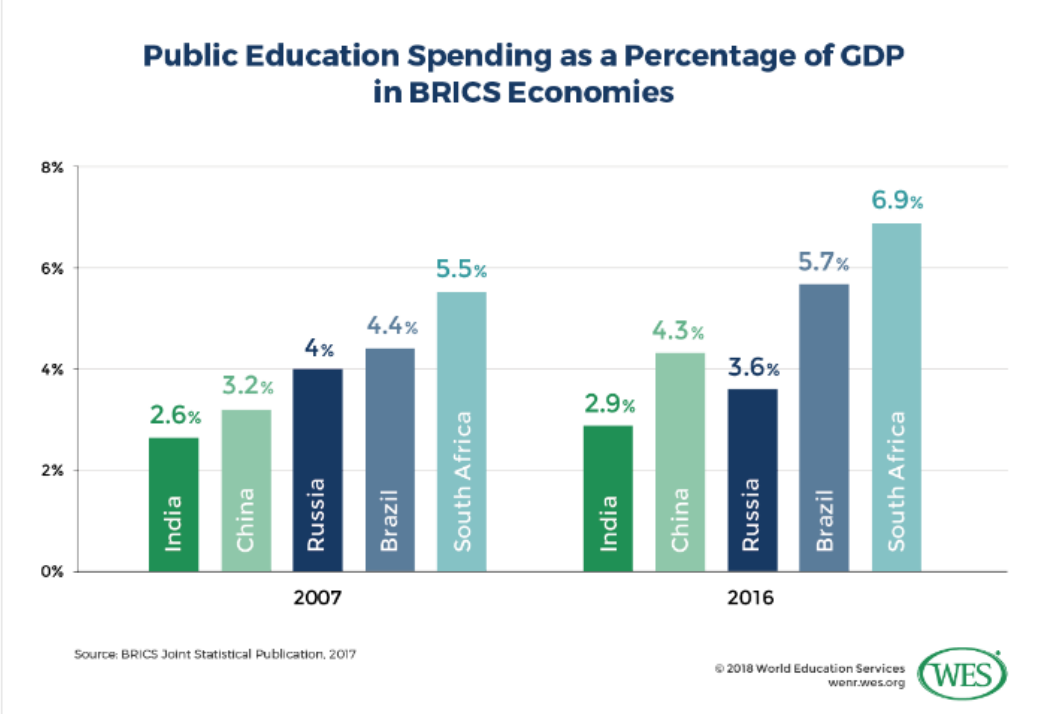

भारत के पब्लिक स्कूल, जो 2018 तक सकल घरेलू उत्पाद का 4.43% बनाते हैं, को प्रशिक्षित संकाय, अपर्याप्त बुनियादी ढांचे, पुराने पाठ्यक्रम और प्रौद्योगिकी तक सीमित पहुंच जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणालियों की रैंकिंग में 50 देशों के बीच दूसरे से अंतिम स्थान पर है।

भारत में शिक्षा प्रणाली मुख्य रूप से याद रखने और परीक्षाओं पर केंद्रित है, 39 संघीय वित्त पोषित विश्वविद्यालयों का शोध आउटपुट स्टैनफोर्ड की तुलना में कम है। भारत में अनुसंधान और नवाचार निवेश सकल घरेलू उत्पाद का केवल 0.69% है, जबकि अमेरिका में 2.8% चीन में 2.1% इजराइल में 4.3% और दक्षिण कोरिया में 4.2% है। यह वैज्ञानिक अनुसंधान के प्रोत्साहन की कमी और परीक्षा उत्तीर्ण करने और उच्च अंक प्राप्त करने पर ध्यान केंद्रित करने को उजागर करता है। इसके बावजूद, 1975 में स्थापित इग्नू (इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय) और एनपीटीईएल (प्रौद्योगिकी संवर्धित शिक्षण पर राष्ट्रीय कार्यक्रम) की एक संयुक्त पहल के साथ, भारत ने दूरस्थ शिक्षा को अपनाने की जल्दी कर ली थी। दूरस्थ शिक्षा का विकास जारी है, 15 विश्वविद्यालय और 200 उच्च शिक्षा संस्थान दूरस्थ शिक्षा की पेशकश कर रहे हैं। दूरस्थ शिक्षा छात्रों की संख्या 2006 में 2.74 मिलियन से बढ़कर 2011 में 4.2 मिलियन हो गई है, जो सभी उच्च शिक्षा नामांकनों का 11% है, जिसमें 44% महिलाएं हैं। 2016-2021 के बीच दूरस्थ शिक्षा के 41% सीएजीआर से बढ़ने की उम्मीद है।

4.6 स्वास्थ्य विकास

स्वास्थ्य विकास एक समाज या समुदाय के सभी सदस्यों के लिए उनके शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कल्याण की प्रक्रिया है। यह एक व्यापक प्रक्रिया है जो स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता, स्वस्थ जीवनशैली को प्रोत्साहित करने, और स्वस्थ्य सेवाओं की पहुंच को बढ़ाने के माध्यम से स्थायी स्वास्थ्य को बढ़ाने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए काम करती है। स्वास्थ्य विकास का मुख्य लक्ष्य यह है कि सभी व्यक्ति स्वस्थ, सक्रिय और समृद्ध जीवन जी सकें। इसे प्राप्त करने के लिए, यह आवश्यक है कि समुदायों के सदस्य स्वास्थ्य सेवाओं की सुविधा, शिक्षा, पोषण, साफ–सफाई, स्वच्छ पानी, अच्छा और सुरक्षित आवास, और सामाजिक सुरक्षा के लिए पहुंच बनाए रखें। स्वास्थ्य विकास की प्रक्रिया में सामाजिक न्याय, समानता, और सामूहिक सहयोग की भावना महत्वपूर्ण होती है। इसमें स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच में समानता और न्याय, स्वास्थ्य जागरूकता की प्रोत्साहन, और समुदायों के सहभागी बनाने के लिए उपाय होते हैं। स्वास्थ्य विकास अनेक क्षेत्रों में काम करता है, जैसे कि स्वास्थ्य शिक्षा, सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, स्वास्थ्य नीतियां, और निर्माण कार्यक्रम। इन सभी क्षेत्रों में उपयुक्त प्रयासों के माध्यम से स्वास्थ्य विकास को प्रोत्साहित किया जाता है, ताकि हर व्यक्ति को स्वस्थ और सकारात्मक जीवन जीने का मौका मिले।

4.7 स्वास्थ्य के विभिन्न घटक

स्वास्थ्य के विभिन्न घटक विविधताएं और प्रभावों का संग्रह होते हैं। यह घटक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, और आध्यात्मिक परिवेश से संबंधित हो सकते हैं। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण स्वास्थ्य के घटक हैं:

शारीरिक स्वास्थ्य

शारीरिक स्वास्थ्य आपके शारीरिक क्षमताओं, ऊर्जा स्तर, और रोग–रोगी पर विशेष ध्यान देता है। इसमें नियमित व्यायाम, सही आहार, पर्याप्त नींद, और साफ–सुथरा वातावरण शामिल होते हैं। यह आपके शारीरिक क्षमता, स्थिरता, और संतुलन को बढ़ाता है ताकि आप अपने दिनचर्या को पूरा करने के लिए पूरी तरह से तैयार रहें। स्वस्थ वजन और संतुलित प्रतिरूप में सही आहार और नियमित व्यायाम से स्वस्थ वजन बनाए रखना और संतुलित प्रतिरूप का पालन करना महत्वपूर्ण है। यह रोगों को दूर रखने में मदद कर सकता है और आपकी शारीरिक क्षमता को बढ़ावा देता है। रोग निवारण में नियमित व्यायाम करने, सही आहार लेने, और साफ–सुथरा रहने से रोगों का खतरा कम होता है, जैसे कि मधुमेह, उच्च रक्तचाप, और हृदय रोग। मानसिक स्वास्थ्य का बेहतर होने में शारीरिक गतिविधियों करने से उत्साह और सकारात्मकता में वृद्धि होती है, जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद होती है। ऊर्जा स्तर का उच्च होने में नियमित व्यायाम से आपका ऊर्जा स्तर बढ़ता है, जो दिनचर्या को पूरा करने में मदद करता है। शारीरिक गतिविधियों से अधिक ऊर्जा खपाने का परिणाम है कि आप बेहतर नींद पा सकते हैं, जो शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। शारीरिक स्वास्थ्य की देखभाल करना आपके जीवन की गुणवत्ता को सुधार सकता है और आपको सकारात्मक दिशा में ले जा सकता है।

मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य

मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य आपके मानसिक स्थिति और भावनाओं के संपूर्ण विकास को संदर्भित करता है। इसमें आपकी मानसिक समझ, भावनात्मक स्थिति, और सामाजिक और पर्यावरणीय प्रतिक्रियाओं का समावेश होता है। स्वस्थ मानसिक समझ उसे दर्शाता है जिससे आप स्वयं और अपने आसपास के लोगों को समझ पाते हैं। सकारात्मक भावनाएं, जैसे कि आत्म–संवाद, स्वागत, और धैर्य, मानसिक स्वास्थ्य को सुधारती हैं और समस्याओं को सामने करने में मदद करती हैं। स्वस्थ संबंध और समरसता भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। उन्हें बनाए रखने के लिए संवाद और समर्थन की आवश्यकता होती है। नकारात्मक भावनाएं, जैसे कि आत्मनिर्णय, अवसाद, और चिंता, मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती हैं। इन्हें पहचाना और संशोधित किया जा सकता है। स्थायित्व और संतुलन भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। यह मानसिक समझ को बढ़ावा देता है और स्वास्थ्यपूर्ण निर्णय लेने में मदद करता है।

मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य का संतुलन रखना आपको जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में सफल बनाता है, और आपको अपने आसपास के मानसिक और भावनात्मक वातावरण को प्रभावित करने में मदद करता है।

सामाजिक स्वास्थ्य

सामाजिक स्वास्थ्य आपके सामाजिक संबंधों, सामाजिक समरसता, और समुदाय में सामाजिक भागीदारी का माप है। यह आपके सामाजिक समुदाय में एकात्मता, समरसता, और स्थिरता को संदर्भित करता है। सामाजिक स्वास्थ्य में अच्छे संबंध और सहयोगी संबंध होना महत्वपूर्ण है। यह आपको समर्थ, सुरक्षित, और समर्थ बनाता है। समरसता और समुदाय में एकता महत्वपूर्ण हैं। एक समरसित समुदाय आत्म–समर्थता और समरसता की भावना को प्रोत्साहित करता है। समाज में सक्रिय भागीदारी, सेवा, और सामाजिक न्याय का संरक्षण सामाजिक स्वास्थ्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। समुदाय में सहायता और समर्थन की उपलब्धता आत्म–समर्थता और सामाजिक रिश्तों को मजबूत करती है। समाज में सुरक्षा और सहायता की उपलब्धता सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह सदस्यों को विश्वास और आत्मविश्वास में मदद करता है। सामाजिक स्वास्थ्य को सुधारने के लिए सामाजिक समुदायों में समरसता, सामाजिक सहभागिता, और सामाजिक समर्थन को प्रोत्साहित करना महत्वपूर्ण है। एक स्वस्थ समाज आत्मनिर्भरता और समरसता की भावना को बढ़ावा देता है, जो सभी सदस्यों के लिए सुरक्षा और समृद्धि का संग्रह करता है।

संज्ञानात्मक स्वास्थ्य

संज्ञानात्मक स्वास्थ्य या मानसिक स्वास्थ्य का एक पहलू है जो आपकी जागरूकता, संज्ञान, और मानसिक तथा भावनात्मक समझ को संदर्भित करता है। इसमें आपकी बुद्धि, ध्यान, और संज्ञानात्मक क्षमताओं की गुणवत्ता शामिल होती है। संज्ञानात्मक स्वास्थ्य में ध्यान और एकाग्रता का महत्वपूर्ण योगदान होता है। यह आपको वर्तमान की समझ, आत्मज्ञान, और आत्म–परिचय में मदद करता है। अच्छा संज्ञानात्मक स्वास्थ्य आपको अपने भावनाओं, विचारों, और अनुभवों को समझने में मदद करता है, जिससे आपकी सामंजस्य और स्थिरता बढ़ती है। यह आपको अपने और दूसरों के भावनाओं और अनुभवों को समझने में मदद करता है, जिससे आपकी संवेदनशीलता बढ़ती है। संज्ञानात्मक स्वास्थ्य आपको समस्याओं को हल करने के लिए समाधान कौशल और विचारशीलता विकसित करने में मदद करता है। यह आपको समस्याओं का सामना करने के लिए स्वस्थ और उचित निर्णय लेने में मदद करता है, जो आपके जीवन में सकारात्मक परिणामों को प्रोत्साहित करता है। संज्ञानात्मक स्वास्थ्य के विकास में ध्यान, मनन, और सामझने की क्षमताओं का विकास महत्वपूर्ण है। यह आपको अपने जीवन में संतुलन और समृद्धि का मार्ग दिखाता है।

आध्यात्मिक स्वास्थ्य

आध्यात्मिक स्वास्थ्य आपके आत्मा और आपके अंतर्मन की स्थिति को संदर्भित करता है। यह आपके अंतर्गत शांति, संतुलन, और आनंद की अनुभूति को संकेत करता है। यह आपके जीवन का उद्दीपन, आत्मबोध, और महत्वाकांक्षा के साथ संबंधित है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य आपको अपने आत्मा के साथ संपर्क में ले जाता है, जिससे आप अपने वास्तविक स्वरूप को समझ सकते हैं। आध्यात्मिक अनुभवों के माध्यम से, आप आनंद और शांति का अनुभव कर सकते हैं, जो आपको मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए मदद करता है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य आपको जीवन की चुनौतियों के साथ सहनशीलता और समर्थता विकसित करने में मदद करता है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य आपको अपने जीवन के कर्तव्यों और उद्देश्यों को समझने में मदद करता है, जो आपके जीवन को महत्वपूर्णता और अर्थ देता है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य आपको अपने आसपास के और उच्चतम अस्तित्वों के साथ संवाद में ले जाता है, जिससे आपकी संवेदनशीलता और संवाद कौशल में सुधार होती है। आध्यात्मिक स्वास्थ्य का महत्व सिर्फ आत्मा के अन्दर ही नहीं, बल्कि यह आपके जीवन के हर क्षेत्र में सकारात्मक योगदान करता है, और आपको संतुलन, समृद्धि, और उत्तेजना प्रदान करता है।

सांस्कृतिक स्वास्थ्य

सांस्कृतिक स्वास्थ्य एक व्यक्ति या समुदाय की सामाजिक, आध्यात्मिक और मानवीय मान्यताओं, अभिवृद्धियों और विचारधाराओं के साथ संबंधित है। यह उन समृद्ध और सात्विक विचारों, रूचियों और आचारों का निर्माण करता है जो एक समुदाय को समृद्ध, समरसता और संतुलित बनाता है। सांस्कृतिक स्वास्थ्य एक समुदाय के पारंपरिक मूल्यों, संस्कृति और ऐतिहासिक धारणाओं को समर्थन करता है। सांस्कृतिक स्वास्थ्य समरसता, समृद्धि और सहयोग को बढ़ावा देता है जो समुदाय के सभी सदस्यों को सम्मिलित करता है। सांस्कृतिक स्वास्थ्य क्रियात्मक और रचनात्मक अभ्यासों को प्रोत्साहित करता है जैसे कि कला, संगीत, नृत्य, और साहित्य। सांस्कृतिक स्वास्थ्य साहित्यिक और धार्मिक विश्वासों को समर्थन करता है और लोगों को उनके विचारों की सम्मान करता है। सांस्कृतिक स्वास्थ्य जीवन को सार्थकता और उद्दीपन प्रदान करता है, जिससे लोग अपने जीवन को एक उच्च उद्देश्य के साथ जीने का प्रयास करते हैं। सांस्कृतिक स्वास्थ्य एक समुदाय के समृद्धता और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, और समृद्ध, संतुलित और समरस समाज का निर्माण करने में सहायक होता है।

4.8 स्वस्थ्य जीवन शैली के लाभ व कारक

स्वास्थ्य जीवन शैली का मतलब है स्वस्थ और सकारात्मक जीवन जीना, जिसमें आप संतुलित आहार, नियमित व्यायाम, उचित नींद, तनाव प्रबंधन, और अन्य स्वस्थ आदतों का पालन करते हैं। एक स्वस्थ जीवन शैली के कई लाभ होते हैं, जो आपके शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक स्वास्थ्य को सुधारते हैं। इसके साथ ही कुछ कारक भी होते हैं जो इसे प्रभावित करते हैं।

- स्वस्थ जीवन शैली के अनुसार जीने से आपके शारीरिक क्षमताएं बढ़ती हैं और आपको अधिक ऊर्जा मिलती है, जिससे आप अधिक सक्रिय और क्रियाशील होते हैं।
- स्वस्थ जीवन शैली का पालन करने से आपका वजन नियंत्रित रहता है, स्नान, रक्तचाप और शरीर की अन्य महत्वपूर्ण प्राथमिकताओं में सुधार होता है।
- नियमित व्यायाम और स्वस्थ आहार स्तर पर स्ट्रेस को कम करने में मदद करते हैं और मानसिक संतुलन को बढ़ावा देते हैं।
- स्वस्थ जीवन शैली के अनुसार जीने से आपके शारीरिक प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूती मिलती है और आप बीमारियों का सामना करने की चांस कम होती है।
- स्वस्थ जीवन शैली का पालन करने से आपका आत्म–विश्वास और खुशहाली में सुधार होता है, क्योंकि आप अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखते हैं।
- अव्यवस्थित आहार, अत्यधिक तनाव, और कम व्यायाम की अनुपस्थिति स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकती है।
- तंबाकू, शराब और अन्य नशीली वस्तुओं का अत्यधिक उपयोग स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचा सकता है।
- अस्वस्थ जीवन शैली के कारण अवसाद, चिंता और अन्य मानसिक स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

4.9 भारत में गरीबी के सन्दर्भ में स्वास्थ्य एवं शिक्षा की स्थिति

भारत ने 2022-23 के लिए अपना आधिकारिक उपभोग व्यय डेटा जारी किया है, जो दस वर्षों में देश के लिए पहला आधिकारिक सर्वेक्षण–आधारित गरीबी अनुमान है। अद्यतन डेटा की कमी ने वैश्विक गरीबी कुल अनुपात में अनिश्चितता बढ़ा दी है। भारत उपभोग व्यय का अनुमान लगाने के लिए दो तरीकों का उपयोग करता है: यूनिफॉर्म रिकॉल अवधि (यूआरपी) और संशोधित मिश्रित रिकॉल अवधि (एमएमआरपी)। यूआरपी पद्धति में 30 दिनों की रिकॉल अवधि में घरेलू खर्च शामिल है, जबकि एमएमआरपी में खराब होने वाली वस्तुओं, टिकाऊ वस्तुओं और अन्य सभी वस्तुओं पर खर्च शामिल है। भारत आधिकारिक तौर पर 2022-23 सर्वेक्षण के साथ एमएमआरपी मानक पर चला गया। 2011-12 से 2022-23 तक यूआरपी पद्धति और एमएमआरपी का उपयोग करके भारत के लिए तुलनात्मक गरीबी अनुमान पीपीपी 3$.2 गरीबी रेखा के लिए उपलब्ध हैं, जो भारत जैसे निम्न मध्यम आय वाले देशों के लिए विश्व बैंक द्वारा अनुशंसित है।

4.10 उच्च गरीबी रेखा का समय

नीचे दिए गए चार्ट में, हम 1977- 78तक 1.9$ पीपीपी और 3.2$ पीपीपी दोनों के लिए भारत का एचसीआर दिखाते हैं। उच्चतर 3.2$ गरीबी रेखा के लिए एचसीआर की ढलान में परिवर्तन से पिछले दशक में भारत में अनुभव की गई समावेशी विकास की सीमा का पता चलता है।

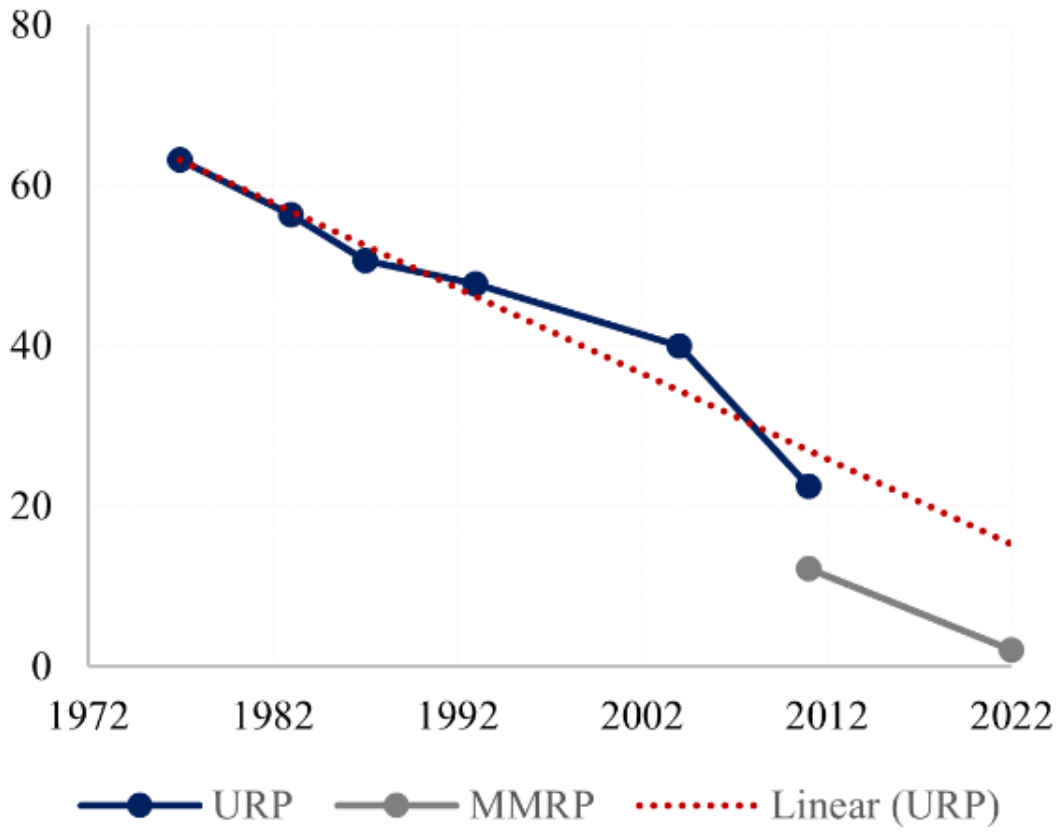

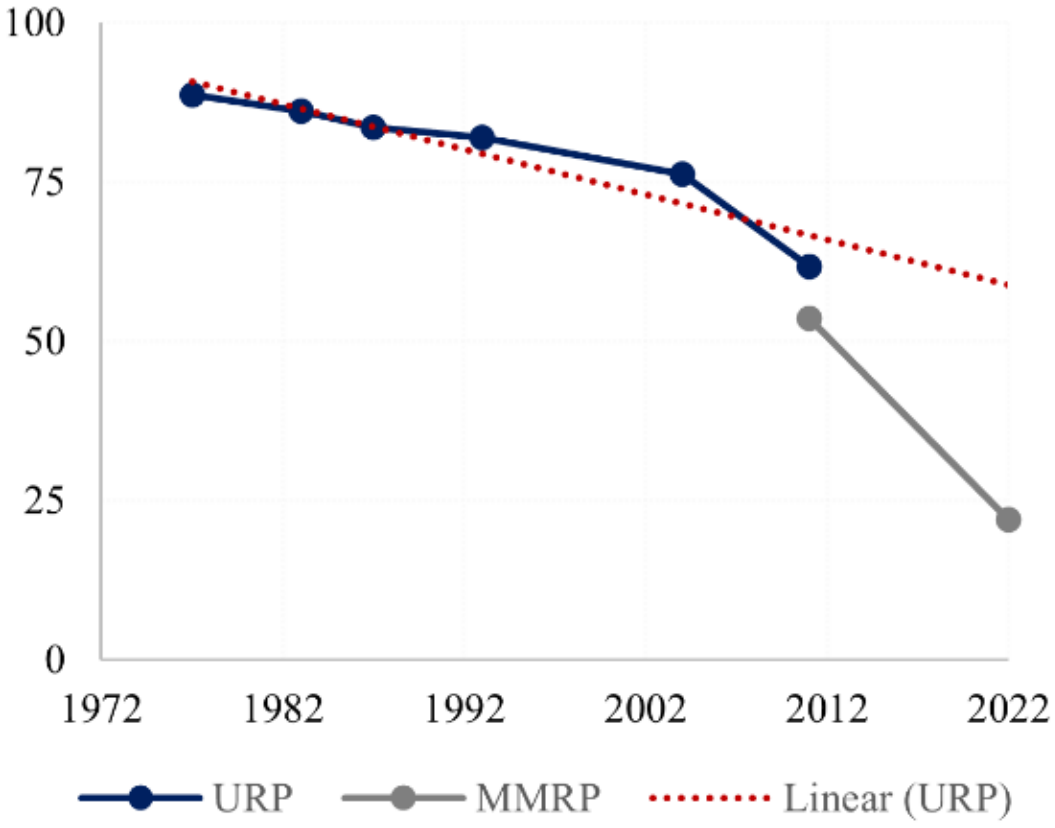

https://www-brookings-edu.translate.goog/articles/india-eliminates-extreme-poverty

भारत की उच्च गरीबी रेखा में उल्लेखनीय गिरावट देखी गई है, उच्च गरीबी रेखा में अब 11वर्षों की गिरावट देखी जा रही है। इसका कारण अत्यधिक गरीबी का लगभग उन्मूलन है और 2013- 14के बाद से स्वास्थ्य व्यय में सरकार की हिस्सेदारी में गिरावट आई है। सामाजिक सेवा व्यय में 9,15, 500से 21,32, 059करोड़ की वृद्धि के बावजूद, पिछले सात वर्षों में शिक्षा के लिए बजटीय आवंटन 10. %4से गिरकर 9. %5हो गया है। उच्च गरीबी स्तर में गिरावट उल्लेखनीय है, क्योंकि भारत को गरीबी स्तर में समान गिरावट देखने में 30साल लग गए।

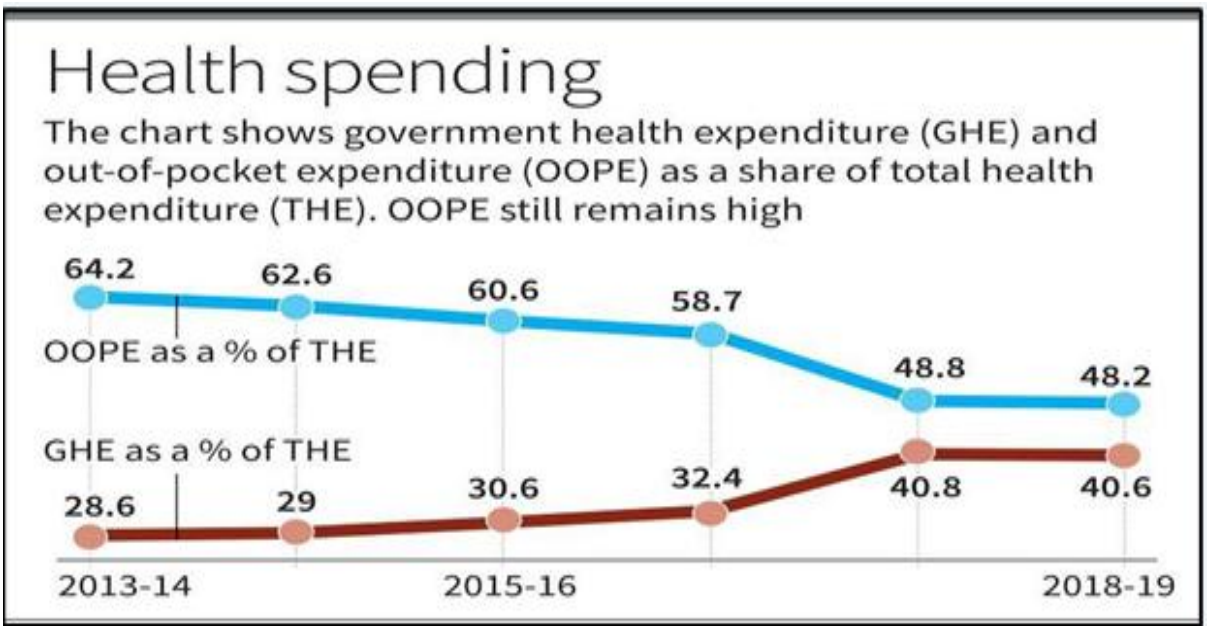

https://vajiramias-com.translate.goog/article/economic-survey-2022-23-status-of-health-and-education-in-india

भारत का सरकारी स्वास्थ्य व्यय 2013- 14में %6-28से बढ़कर 2018- 19में %6हो गया है, जो कुल मिलाकर 5,96, 440करोड़ या सकल घरेलू उत्पाद का %2तक पहुंच गया है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति 2017और 15वें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुरूप, स्वास्थ्य क्षेत्र का बजटीय व्यय वित्त वर्ष 2023में सकल घरेलू उत्पाद का 2. %1और वित्त वर्ष 2022में 2. %2तक पहुंचने का अनुमान है। जेब से खर्च 2013- 14में 64. %2से घटकर 2018- 19में 48. %2हो गया है, जो सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज सुनिश्चित करने में सार्वजनिक स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक सुरक्षा के बढ़ते महत्व को दर्शाता है। सामाजिक सेवाओं पर कुल व्यय में स्वास्थ्य व्यय का हिस्सा वित्त वर्ष 2019में %21से बढ़कर वित्त वर्ष 2023में %26हो गया है, जिसका मुख्य कारण राष्ट्रीय COVID- 19टीकाकरण कार्यक्रम है। हालाँकि, आयुष्मान भारत जन आरोग्य योजना (AB-JAY) लक्ष्य से पीछे है, सबसे बड़ी कैशलेस स्वास्थ्य बीमा योजना के तहत केवल लगभग 21. 9करोड़ लाभार्थियों का सत्यापन किया गया है। अधिक वजन वाले बच्चों और पुरुषों की दर में भी वृद्धि हुई है, बच्चों की दर 2015- 16में 2. %1से बढ़कर 2019- 21में 3. %4हो गई है।

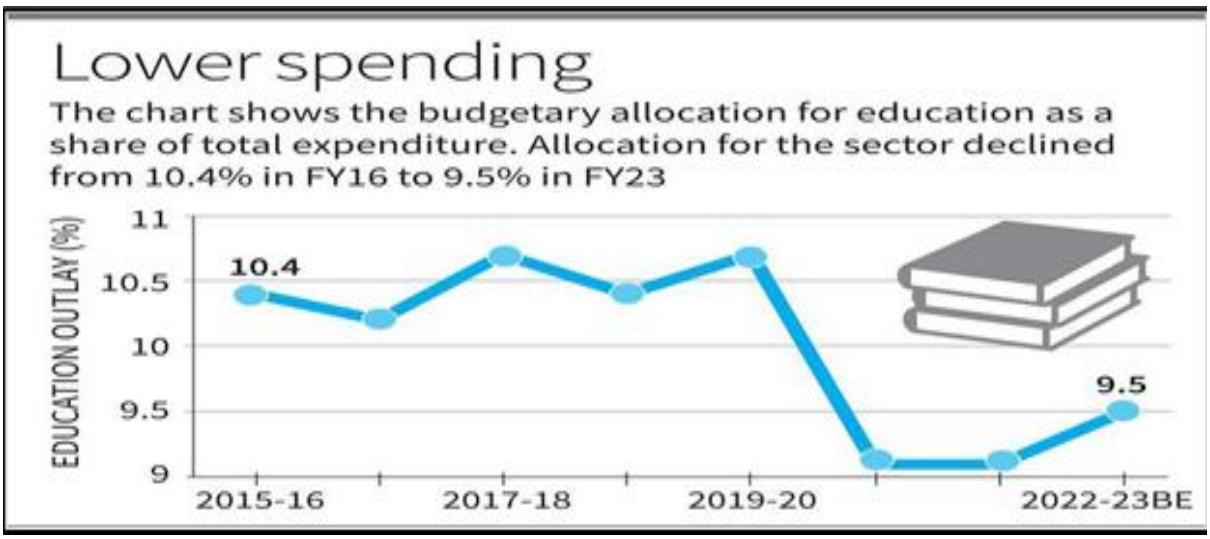

https://vajiramias-com.translate.goog/article/economic-survey-2022-23-status-of-health-and-education-in-india

व्यय में सरकारी हिस्सेदारी में गिरावट

2015-2016 और 2022-2023 के बीच सामाजिक सेवा श्रेणी में शिक्षा व्यय का हिस्सा 42.%8 से घटकर 35.%5 हो गया, जिसका मुख्य कारण स्वास्थ्य और अन्य उपायों पर व्यय में वृद्धि है। शिक्षा के लिए बजटीय आवंटन में सात साल की अवधि में केवल 0.1 प्रतिशत अंक का न्यूनतम लाभ 2.%8 से 2.%9 तक देखा गया। कोविड–19 के कारण स्कूल छोड़ने की दर और खराब हो गई, प्राथमिक विद्यालयों में कुल ड्रॉपआउट दर 2020-2021 में 0.%8 से बढ़कर 2021-2022 में 1.%5 हो गई। हालाँकि, माध्यमिक कक्षाओं में स्थिति में सुधार हुआ, 2019-2020 में ड्रॉपआउट दर 16.%1 से गिरकर अगले वर्ष %14 और पिछले वर्ष 12.%6 हो गई। 2013-2014 और 2021-2022 के बीच स्कूलों की कुल संख्या 15.2 लाख से घटकर 14.9 लाख हो गई, लेकिन माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई। उच्च शिक्षा नामांकन 2019-20 में 3.9 करोड़ से बढ़कर वित्तीय वर्ष 2020-21 में लगभग 4.1 करोड़ हो गया, 2014-15 के बाद से नामांकन में लगभग 72 लाख या %21 की वृद्धि हुई है। उच्च शिक्षा संस्थानों की संख्या 2014 में 387 से बढ़कर 2022 में 648 होने की उम्मीद है।

4.11 निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में गरीबी के सन्दर्भ में शिक्षा व स्वास्थ्य के बारे में बताया गया है। भारत में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं से जुड़े बढ़ते खर्च महत्वपूर्ण चिंता का विषय रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में व्यावसायीकरण की घटना को कम करने के लिए सरकार के लिए नियामक अयोग की प्रभावशीलता को बढ़ाना आवश्यक है। आम जनता के लिए इन आवश्यक संसाधनों के समान प्रावधान के लिए सस्ती, सुलभ और उच्च स गुणवत्ता वाली शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करना अनिवार्य है। वर्तमान में, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में अम जनता के बीच लगातार पूर्वाग्रह बना हुआ है। आर्थिक रूप से वंचित पृष्टभूमि के बच्चों की शिक्षा पर इसके प्रभाव के कारण, जैसे कि देश में गरीब श्रमिकों और किसानों से सम्बन्धित है।गरीबी एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जो स्वास्थ्य और शिक्षा सहित समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है। कई लोगों के पास वित्तीय बाधाओं के कारण स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच नहीं होती है, जिससे उनमें सामान्य स्वास्थ्य स्थितियां विकसित होने का खतरा अधिक होता है। इसके अतिरिक्त, कई लोगों के पास शिक्षा का अभाव है, जिसके कारण आवश्यक स्वास्थ्य जानकारी की कमी होती है और स्वास्थ्य संबंधी निर्णय अनुपयोगी हो जाते हैं। गरीबी पोषण को भी प्रभावित करती है, क्योंकि लोगों को अक्सर पर्याप्त और पौष्टिक आहार की कमी होती है, जिससे पोषण संबंधी बीमारियों का खतरा बढ़ जाता है। इसके अलावा, कई लोगों के पास विभिन्न कारणों से शिक्षा का अभाव है, जिससे उनके लिए स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुंच मुश्किल हो जाती है। इन मुद्दों को संबोधित करने के लिए, समाज को स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा के लिए सामाजिक न्याय के प्रति संवेदनशील और उदार होना चाहिए, और समृद्धि और समानता की दिशा में प्रगति के लिए गरीबी को हल करने के लिए लगातार प्रयास करना चाहिए।

4.12 बोधात्मक प्रश्न

1. शिक्षा एवं स्वास्थ्य में अंतसम्बन्धों की व्याख्या कीजिए?
2. शिक्षा में सुधार हेतु आधारभूत सुविधाओं की व्याख्या कीजिए।
3. शिक्षा एवं स्वास्क्य के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. भारत में शिक्षा की वर्तमान स्थिति की व्याख्या कीजिए।
5. भारत में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाों की वर्तमान स्थिति की व्याखा करें।
6. भारत में गरीबी के संदर्भ में स्वास्थ्य एवं शिक्षा की वर्तमान स्थिति की व्याखा करें

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कन्नापीरन सी, गांगुली आई, शिवा एम, एट अल (1992), स्वास्थ्य शिक्षा, स्वास्थ्य लाखों. 1992;18,1-2,:30- 34

- ग्लैंज के, रिमर बीके, लुइस एफएम। स्वास्थ्य व्यवहार और स्वास्थ्य शिक्षा.सिद्धांत, अनुसंधान और अभ्यास (तीसरा संस्करण), सैन फ्रांसिस्को, सीएरू जोसी बास, 2002,1 -4
- अलेक्जेंडर, ए. (2018)7 दिसंबर), स्वास्थ्य कार्यक्रमों को सामुदायिक सहभागिता की अवश्यकता है। -16हिंदुस्तान टाइम्स.
- होगन, डी., और अर. टॉमी " -2003विकास शिक्षा और सतत विकास के लिए शिक्षा के बीच संबंध पर एक पररप्रेक्ष्यष नीति और अभ्यास –एक विकास शिक्षा समीक्षा 6:5- 16
- भारतीय शिक्षा प्रणाली में समसामयिक मुद्दे और चुनौतियाँ, डॉ. अर.एन. नादर, एडीएमअइएफएमएस अंतर्राष्ट्रीय प्रबंधन अनुसंधान सम्मेलन 2018
- बरुआ, लितुल, स्वास्थ्य और आर्थिक विकासरू महाराष्ट्र में राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन के प्रभाव पर एक अध्ययन (30 अप्रैल, 2010)
- माइकल स्पेंस और मॉरीन लुईस (संस्करण) (2009), स्वास्थ्य और विकास, विकास और विकास अयोग, विश्व बैंक, वाशिंगटन
- https://www.starhealth.in/blog/health-and-its-importance
- https://www.supportmeindia.com/education-importance-hindi/
- https://paliwalwani.com/health/health-tips-meaning-and-importance-of-health
- https://parikshapoint.com/importance-of-education-eassy-in-hindi/
- https://vajiramias-com.translate.goog/article/economic-survey-2022-23-status-of-health-and-education-in-india

खण्ड–04
पर्यावरण

इकाई–01 पर्यावरण की अवधारणएं, जैव विविधता, वहन क्षमता

इकाई–02 चक्रीय आर्थिक प्रवाह एवं पर्यावरण

इकाई–03 पारिस्थितिकी विकास

इकाई–04 प्रदूषण एवं प्रदूषण एजेंट

इकाई–05 पर्यावरण क्षरण और प्रभाव

इकाई–06 पर्यावरणीय लेखांकन

इकाई–07 पर्यावरण प्रबंधन सिद्धांत (कोज प्रमेय(Cossetheorem) और प्रदूषक भुगतान सिद्धांत (Polluter Pay Principle))

इकाई–08 वर्तमान पर्यावरणीय वैश्विक प्रयास एवं संस्थाएं

वियना कन्वेन्शन World Summit (Vienna convention)–1985

पृथ्वी सम्मेलन

खण्ड–4

इकाई–01

पर्यावरण की परिभाषाएं, जैविक विविधता, वहन क्षमता

इकाई का संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उददेष्य

1.3 पर्यावरण की प्रकृति

1.4 पर्यावरण की परिभाषाए

1.5 पर्यावरण की संरचना तथा प्रकार

1.6 पर्यावरण के सघटक

1.7 जैव विविधता

1.8 जैव विविधता का मापन

1.9 जैव विविधता का संरक्षण

1.10 वहन क्षमता

1.11 वहनक्षमता/धारण क्षमता की अवधारणा

1.12 बोध/प्रष्न, अभ्यास के प्रष्न

1.13 सारांष

1.14 षब्दार्थ सूची

1.15 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

1.16 बोध/प्रष्न अभ्यास के प्रष्नों के उत्तर

1.17 विषयनिष्ठ प्रश्न

1.1 प्रस्तावनाः–भगौलिक दषाए जो हमें चारो तरफ से घेरी हुई है जिसमें हम रहते हैं। अर्थात सभी तत्वों को जो हमारे लिए, समस्त जीवों के लिए, पेड़ पौधों के जीवन के लिए आवष्यक दषाए है, के बारे में जानना और उसका संरक्षण अति आवष्यक है। प्रायः समाचारो पत्रों न्यूज चैनलो विभिन्न पर्यावरणीय संगठनों, समाजिक संगठनों द्वारा पर्यावरण को संरक्षित करने हेतु जगह–जगह प्रदर्षन करते देखा जा सकता है। आज की युवा पीढ़ी को पर्यावरणीय संघटको, पर्यावरण की संरचना इत्यादि के बारे में जानना अति आवष्यक है। अतः सरकार द्वारा जैव विविधता तथा संरक्षण के लिए किये जा रहे प्रयासों तथा अध्ययनो को जानने में मदद मिलेगी। किस प्रकार सरकार ने निहित मानको के अनुसार जैव विविधता तथा संरक्षण क्यों किया जा रहा है, से सम्बन्धित अध्ययन करेगें तथा पर्यावरण वहन क्षमता से क्या आषय है? तथा किस प्रकार से यह पर्यावरण के संरक्षण में मदद करेगा, से सम्बन्धित अध्ययन को भी जानेगें।

1.2 उददेष्यः– इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र पर्यावरण तथा इससे संबंधित निम्न के बारे में जान सकेगे।

1. पर्यावरण के बारे में विभिन्न विद्वानो के मतो से अवगत हो सकेंगे।
2. पर्यावरण को परिभाषित कर सकेगे।
3. अपने पर्यावरण को संरक्षित करने में मदद कर सकेगे।
4. पर्यावरण के प्रकार तथा इसकी संरचना के विषय में जान सकेगे।
5. पर्यावरणीय संघटको को पहचान सकेगे।

6. जैव विविधता के महत्व को जान सकेगे।

7. जैव विविधता संरक्षण के विषय से अवगत हो सकेगे।

8. जैव विविधता संरक्षण की विभिन्न विधियों को जान सकेगे।

9. पर्यावरण की वहन क्षमता को पहिचान सकेगे तथा उसे बढ़ाने में मदद कर सकेगें।

1.3 पर्यावरणः—यदि पर्यावरण के षाब्दिक का अर्थ की ओर ध्यान दे तो देखेगे की पर्यावरण दो षब्दो से मिलकर बना है परि और आवरण। जिसका षाब्दिक अर्थ है परितः तथा आवृत। अर्थात चारो तरफ से घिरा हुआ। प्रष्न यह है कि कौन किसकी तरफ परितः है या किससे आवृत है? पर्यावरण का अध्ययन हम मानव जातियों तथा समस्त जीव जगत के जीवन निर्वहन में कोई विषेष कठिनाई ना आये, के लिये आवष्यक है अर्थात समस्त जीव धारियों के चारो तरफ जैविक अजैविक तथा ऊर्जा से घिरे रहते है अर्थात इस प्रष्न का सीधा सा उत्तर है कि समस्त जीवधारी किसी न किसी जैविक अजैविक या भौतिक पदार्थ घेरे हुये है और इसी का अध्ययन पर्यावरण पर्यावरण का अध्ययन कहा जाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जीव जगत अर्थात जीवधारियों तथा वनस्पतियों के चारो ओर का आवरण ही पर्यावरण है। आइये कुछ विद्ववानो तथा संगठनो द्वारा पर्यावरण की विभिन्न परिभाषाओं पर प्रकाष डालते है।

1.4 परिभाषाएः—पर्यावरणीय अर्थषास्त्र आर्थिक क्रियाओं के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव उनको नियंत्रित करने वाले उपायों की लागत तथा लाभ के अध्ययन से सम्बन्धित है, के रूप में आक्सफोर्ड डिक्सनरी द्वारा परिभाषित किया गया है।पर्यावरण अधिनियम 1986 के अनुसार— ''पर्यावरण किसी जीव के चारो तरफ घिरे भौतिक एवं जैविक दषाएं एवं उनके साथ अंतः क्रिया को सम्मिलित करता है।

रास के अनुसार—''पर्यावरण एक वाहय षक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।''

फिटिंग के अनुसार—''पर्यावरण किसी जीवधारी को प्रभावित करने वाले समस्त कारकों का योग है।''

अर्नेस्ट हैकेल—''पर्यावरण का तात्पर्य मनुष्य के चारो ओर पायी जाने वाली परिस्थितियों के उस समूह से है जो उसके जीवन और उसके क्रियाओं पर प्रभाव डालती है।''

हरकोविट्ज के अनुसारः—''पर्यावरण किसी जीवधारी को प्रभावित करने वाले समस्त कारको का योग है।''

डगलस एंव रोमन हालैण्ड के अनुसारः— ''पर्यावरण उन सभी बाहरी षक्तियों एवं प्रभावों का वर्णन करता है जो प्राणी जगत के जीवन, स्वभाव, व्यवहार, विकास और परिपक्ता को प्रभावित करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि पर्यावरण से आषय किसी भी जीवित प्राणी के चारो ओर पाये जाने वाले लोग स्थान वस्तुए (भौतिक या अभौतिक मूर्त या अमूर्त) एंव प्रकृति को पर्यावरण कहते है। यह प्राकृतिक एंव मानव—निर्मित परिघटनाओ का मिश्रण है। जिससे मानव या जीव जगत प्रभावित होता है।

अतः कहा जा सकता है कि पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है। इसकी रचना भौतिक, जैविक एंव संस्कृतिक तत्वों के परस्पर क्रियाषीलता के फलस्वरूप होती है में तत्व आपस में एक दूसरे से प्रत्यक्ष या परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से जुड़े होते है। जैसे स्थान, स्थलरूप, जलरूप/जीलय भाग जलवायु मृदा चट्टाने पहाड़ तथा खनिज इत्यादि भौतिक तत्वों द्वारा मानव निवास क्षेत्र की परिवर्तनषील विषेषताओं उसके सुअवसरो तथा प्रतिबंन्धक अवस्थितियों को निष्चित करते है। पौधे जन्तु सूक्ष्म जीव तथा मानव तथा अन्य जैविक तत्व मिलकर जीवमण्डल की रचना करते है।

1.5 पर्यावरण की संरचना तथा प्रकारः— पर्यावरण के संरचना के सम्बन्ध में जानने से पूर्व इसकी संकल्पना में सम्मलित तत्वों भौतिक तथा जैविक संघटकों की संरचना को जानना अति आवष्यक हो जाता है। अतः इस प्रकार पर्यावरण के अन्तर्गत पृथ्वी के वातारण में उपस्थित या वातावरण से बाहर समस्त जीवित तथा अजीवित संघटको को सम्मलित करते है। इस आधार पर इसको दो भागो में बाटा जा सकता है। जैसे—भौतिक पर्यावरण व जैविक पर्यावरण।

भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत स्थल मण्डल वायुमण्डल तथा जल मण्डल के समस्त संघटको का अध्ययन किया जाता है। अध्ययन के लिए इन्हें कई लघु इकाइयों में बाटा जाता है जैसे पर्वत पठार मैदान झील, झरने, नदी, मरूस्थल, सागरीय, तटीय, हिमनद इत्यादि को पर्यावरण का अध्ययन करना। इस प्रकार भौतिक पर्यावरण को मुख्यतः तीन भाग में बाट कर अध्ययन किया जाता है।

1. स्थलमण्डल पर्यावरण
2. जलमण्डल पर्यावरण
3. वायुमण्डल पर्यावरण

स्थल मण्डलः– पृथ्वी की भूपटल ;Crust) जो मिटटी एवं चटटनों द्वारा बनी होती है जिसके कुछ इंच के निर्माण हेतु 250 वर्षों से 350 वर्षो का समय लगता है स्थल मण्डल कहा जाता है। यह मानव जीवन के लिये अतिआवष्यक है क्योकि मानव जीवन का सम्पूर्ण अस्तित्व का आधार स्थल मण्डल ही है।

जलमण्डलः–इसमेंतालाब झील झरने नदी तथा समुद्र के साथ पृथ्वी के सतह व तल में अवस्थित जल स्त्रोतो को सम्मिलित किया जाता है दूसरे षब्दो में सम्पूर्ण पृथ्वी का दो तिहाई से अधिक अर्थात 70 प्रतिषत भाग का अध्ययन किया जाता है।

वायु मण्डल– पृथ्वी के सतह से ऊपर 500 किलोमीटर फैला रहता है। इसके अन्तर्गत समस्त गैसो किरणों इत्यादि के कारण तथा प्रभावों को सम्मिलित करते है। साथ ही पृथ्वी के जलवायु दषाओं को प्रभावित करने वाले कारकों की उपस्थिति भी वायुमण्डल द्वारा नियमित की जाती है, को सम्मलित करते है।

जैविक पर्यावरणः–इसके अन्तर्गत जन्तु विज्ञान (मानव तथा पषुओं) के साथ–साथ वनस्पति जगत को भी सम्मलित किया जाता है। इस प्रकार जैविक पर्यावरण को भी दो भागों में बांटा जा सकता है। 1. जन्तु पर्यावरण 2. वनस्पति पर्यावरण।

इसके साथ ही समाजिक पर्यावरण, आर्थिक पर्यावरण का निर्माण भी जीवधारियों द्वारा पर्यावरणीय संघटकों से क्रिया प्रतिक्रिया करके बनाया जाता है।

1.6 पर्यावरण के संघटकः–उपरोक्त अध्ययन के आलोक में पर्यावरण के संघटकों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जाता है–

1. जैविक संघटक
2. अजैविक या भौतिक संघटक
3. ऊर्जा संघटक।

जैविक संघटको को 3 प्रमुख उप संघटको पादप (वनस्पति) संघटक, जन्तु संघटक (मनुष्य जानवर पषु–पक्षी) तथा षूक्ष्म जीव संघटको को सम्मलित किया जाता है।

अजैविक संघटक के अन्तर्गत जल स्थल (थल) तथा वायु संघटक एवं इनके विभिन्न उपसंघटको को सम्मलित किया जाता है। ऊर्जा संघटक के अन्तर्गत मुख्यतः सूर्य ऊर्जा तथा भूतापीय ऊर्जा सम्मलित किया जाता है।

1.7 जैव विविधताः–विकास के क्रम में नये जीवों का विकास, नये वनस्पतियों का विकास तथा एक विषेष स्थान पर पायी जाने वाली किसी जीव की विषेष प्रजातियों की घनत्व या विविधता को जैव विविधता के रूप में परिभाषित किया जाता है। सर्व प्रथम 1992 में रियोडी जनेरियों में आयोजित पृथ्वी सम्मेलन इस जैव–विविधता षब्द को वैष्विक मंच पर परिभाषित किया गया। परन्तु विकास के क्रम में सर्वप्रथम जैविक विविधता (Biological Diversity) षब्द का प्रयोग रेमण्ड एम0 दषमान द्वारा 1968 में किया गया परन्तु जैव–विविधता (Bio Diversity)षब्द का प्रयोग सर्वप्रथम डब्लू जी0 रोजेन ने 1985 में किया। यद्यपि संकल्पनात्मक रूप से इस षब्द का प्रयोग प्रथम बार कीट वैज्ञानिक विल्सन ने 1986 में, जैविक विविधता पर अमेरिकन फोरम के लिये प्रस्तुत प्रतिवेदन में किया। इन्होने रेमण्ड एफ0 दषमान द्वारा सुझाए गये षब्द

जैविक विविधता के जगह पर जैव–विविधता षब्द प्रयोग करने का सुझाव प्रस्तुत किया। तभी से यह षब्द संकल्पनात्मक रूप से प्रचलन में है।

जैव–विविधता को 1992 के पृथ्वी सम्मेलन में ''जैव–विविधता समस्त स्रोतो यथा अन्तक्षेत्रीय स्थलीय, समुद्री एवं अन्य जलीय परिस्थितिक तंत्रों के जीवो के मध्य अन्तर और साथ ही उन सभी परिस्थितिकी समूहो जिनके में भाग है, में पायी जाने वाली विविधतायें है। जैव–विविधता विभिन्न प्रजाति के अन्दर पायी जाने वाली विविधताओं से है। विभिन्न–विभिन्न जातियों के मध्य विविधता तथा पारिस्थितिकीय विविधताओं का सम्मलित रूप है। '' के रूप में परिभाषित किया है।

जैव–विविधता के स्तर–पृथ्वी पर प्रकृति ने अनुपम स्वरूप की अविस्मरणीय छटा विखेर रखी है जिससे भू–तल की षोभा और जीवंत हो उठी है। पृथ्वी के विभिन्न भागों पर मानव जातियों का विभिन्न स्वरूप वनस्पतियों की विभिन्न या विविध प्रजातियों , जलाषयों में अवस्थित प्रजातियों, समुद्री षोभा के साथ वहां उपस्थित परितंत्र में विविधता को आधार के रूप में देखा जा सकता है। साथ ही आन्तरिक स्वरूप अनेक रूपों में विभाजित है। अनुवांषिक जाति समुदाय व परितंत्र के स्तर पर विभिन्न प्रकार के कार्यो का सम्पादन कर विविधता, पारिस्थितिक तंत्र का निर्वहन करती है। सभी स्तर एक जटिल जाल (पारिस्थितिक तंत्र) के घटक है। इस प्रकार जैव विविधता के तीन स्तर है।

1. यदि प्रजाति के बीच अर्थात जींस **(Genes)**के आधार पर स्तर का निर्धारण किया जाये तो अनुवांषिक विविधता को जैव–विविधता के स्तर के रूप में देखा जाता है। अर्थात जब एक ही प्रजाति के जीवों के जीन में विविधता हो अर्थात परिवर्तन हो तो उसे अनुवंषिक विविधता की श्रेणी में रखा जाता है। जैसे क्रोमोसोम विपथनों एवं द्रव्यजीनो के कारण केन्द्रीकी जीनो उत्पन्न होती है। इस प्रकार जीव समूहो तथा पारिस्थितिकी व्यवस्था में जब परिवर्तन होने लगता है तब अनुवांषिक विविधता एक ऐसी क्षमता उत्पन्न करती है, जिससे जैव विविधता पुनः अपना मौलिक रूप धारण कर लेती है। ठीक उसी प्रकार जैसे मृतप्रायः जीव समूहों में उनके बचे जीनों द्वारा उस जीव समूह की पुनः रचना करना।

2. प्रजाति विविधता का अर्थ है जातियों के बीच की विविधता अर्थात इसका आधार जलीय विविधता है। भू–तल पर प्रजाति विविधता समान नहीं है। जैसे–जैसे हम उच्च अंक्षाषों से निम्नवत् अंक्षाषों और उच्चतर चोटियों से निम्नतर उन्नताषों या पहाड़ो से घाटियों की तरफ बढ़ते है, जैव विविधता में उतना ही अधिक सघनता पायी जाती है यही कारण है कि विषुवत रेखीय क्षेत्र, समुद्री घाटियों में जैव विविधता की सघनता अत्यधिक पायी जाती है जबकि उत्तरी तथा दक्षिणी गोलार्ध के हिमाच्छदित तथा मरू प्रदेष जैव विविधता की दृष्टि से अत्यन्त कमजोर है।

3. पारिस्थितिकी विविधताः–प्रत्येक पारिस्थितिकी प्रणाली में ऊर्जा एंव जलचक्र की अलग–अलग पद्धतियां होती है जिसके कारण विभिन्न क्षेत्रों में विषेष प्रकार की जैव–विविधताएं पायी जाती है। यह जैव विविधता प्रजातियों के प्राकृतिक प्रवास, उनके जीवन के लिए आवष्यक परिस्थितिकी प्रणाली तथा इसके प्रकारों तथा इन प्रजातियों द्वारा होने वाले क्रिया–प्रतिक्रिया या प्राक्रियाओं के मध्य अन्तर इत्यादि के सम्मिलित स्वच्छता का अध्ययन पारिस्थितिकी विविधता के अन्तर्गत सामिल किया जाता है। इस प्रकार प्राणियों की समस्त क्रियाओं द्वारा जैव–विविधता को प्रमाणित किया जा सकता है।

1.8 जैव विविधता का मापनः–मापन का अर्थ प्रजातियों के घनत्व (जनसंख्या) तथा उसकी समृद्धि से लगाया जाता है। जो निम्न प्रकार से किया जाता हैः–

1. अल्फा (α) विविधता– इसके अन्तर्गत कुल प्रजातियों की संख्या तथा जीनों के आधार पर (आनुवांषिकी) प्रजातियों मध्य पायी जाने वाली समानता को आधार बनाकर आकलन किया जाता है।

2. बीटा (β) विविधताः– किसी मौलिक क्षेत्र में प्रजातियों के आवागमन की दर अर्थात प्रवेष निकास की दर का आकलन बीटा विविधता के अन्तर्गत किया जाता है। अर्थात प्रजातियों के अन्दर निहित संरचनात्मक विविधता (amposition)को बीटा विविधता के नााम से जानते है।

3. गामा (γ) विविधताः– यह α तथा β के अवयवों का गुणनफल होता है। यह भगौलिक कारको द्वारा निर्धारित होता है। अर्थात भगौलिक क्षेत्रों में उपस्थित विविध प्रजातियों के मध्य अन्तः सम्बन्ध का ज्ञान ही गामा विविधता के अन्तर्गत आता है।

इस प्रकार भारत में जैव विविधत को क्षेत्र के आधार पर तीन वर्गो में विभाजित किया जा रहा हैः–

1. हाट स्पाट
2. समुद्री जैव विविधता क्षेत्र
3. जैव भगौलिक क्षेत्र

1.9 जैव विविधता का संरक्षण

पादप एवं प्रणियों का जीवन एक दूसरे के जीवन से जुड़ा हुआ है। अतः दोनो का सहअस्तित्व ही जीवन का आधार है इसलिए इस बात का सदैव ध्यान दिया जाता है कि इनकी चेन कहीं कमजोर या विलुप्त न हो जाए। अर्थात इसका संरक्षण अति आवष्यक है। इस प्रकार जैव विविधता संरक्षण को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः–

1. स्व–स्थाने संरक्षण
2. वाह्य–स्थाने संरक्षण

स्व–स्थाने संरक्षण के अन्तर्गत जीव तथा वनस्पतियों को इनके प्राकृतिक आवास क्षेत्र में ही संरक्षित किया जाता है तो उसे स्व–स्थाने संरक्षण कहा जाता है। इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय उद्यान वन्य जीव अभ्यारण, समुंद्र एवं संरक्षण आगार, समुंद्री संरक्षित क्षेत्र, पवित्र उपवन, जैव मण्डल आगार (रिजर्व) इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है।

वाह्य–स्थाने संरक्षण अन्तर्गत जीव एवं वनस्पितियों को उनके प्राकृतिक प्रवास से हटाकर अन्यत्र संरक्षित किया जाता है इसके अन्तर्गत बीज बैंक जीव बैंक निम्न तापीय संरक्षण वनस्पति उद्यान चिड़िया घर, जन्तु उद्यान, वृक्ष उद्यान इत्यादि स्थापित किये जाते है तथा इनका संरक्षण किया जाता है।

1.10 वहन क्षमता (Carrying Capacity)

किसी भैगोलिक क्षेत्र के परितन्त्र में किसी जीव प्रजाति की उस अधिकतम जनसंख्या के रूप में परिभाषित की जाती है जिसे इस परितन्त्र के संसाधन पोषण प्रदान कर सकते हो। यह स्पष्ट है कि वहन क्षमता से अधिक जनसंख्या वृद्धि उस परितन्त्र पर दबाव डालेगी तथा आवष्यकता से अधिक (अत्यधिक) वृद्धि इस परितन्त्र के विनाष का कारण भी बन सकती है। धारण क्षमता से अधिक जनसंख्या वृद्धि का तात्पर्य (लोगो या उस विषेष प्रजाति जिसके वहन क्षमता के बारे बात हो रही है) अपर्याप्त खाद्य, अपर्याप्त प्रवास स्थान, अपर्याप्त सुविधाएं तथा अन्य चीजें जो उसके विकास में सहायक हो में लगातार कमी होती जायेगी फलस्वरूप उनकी प्रजनन प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होने लगेगी अथवा प्रजनन प्रक्रिया प्रभावित होने लगेगी।

1.11 वहनक्षमता/धारण क्षमता का संकल्पनात्मक विकास

विकास के लिए आवष्यक है कि देष की आर्थिक समृद्धि की दर लगातार बढ़ती एवं स्थिर दर से बनी रहे। इसके लिए आवष्यक है माल और सेवाओं का निर्माण हो। इसके निर्माण के लिए साधनों की आवश्यकता होती है जो प्राकृतिक रूप से वातावरण में विद्यमान हैं जिसे प्राकृतिक साधनोंश का नाम दिया जा सकता है। अतः हमें संसाधनों अर्थात प्रकृति प्रदत्त संसाधनों को न्यायपूर्ण एवं जिम्मेदारी से प्रयोग

करना होगा। ऐसा न करने पर हमारी आने वाली पीढियां इन प्राकृतिक संसाधनों से वंचित हो जाएंगी। जिससे उनका जीवन अंधकारमय हो जायेगा। इस प्रक्रिया में सर्वाधिक विनाष क्षति पर्यावरण का हुआ है। अतः अधिक विकास के साथ–साथ प्राकृतिक संसााधनों का दोहन पूर्णतः रोका तो नही जा सकता परन्तु इसकी दोहन के दर को कम किया जा सकता है। जिससे संषाधनों को सुरखित रख जा सके। अब प्रष्न यह है कि कितना दोहन ठीक रहेगा। क्या हम उचित वितरण और संरक्षण द्वारा इसे कम कर सकते हैं? तो कितना दोहन करें? का उत्तर इस प्रकार प्राप्त होता है कि हमारा उत्तरदायित्व हो जाता है कि हम प्राकृतिक संसाधनों को उसकी प्रयुक्त हेाने की क्षमता अर्थात वहन क्षमता से अधिक का षोषण न करें। व उसके संतुलन को बनाए रखें।

गाड़ी के उदाहरण द्वारा वहन क्षमता को समझने का प्रयास करते है। जैसे किसी गाड़ी की अधिकतम भार वहन करने की क्षमता होती है, अर्थात गाड़ी में अधिकतम कितने लोग और कितना भार उठा सकती है, जिससे वह संड़क पर सुचारू रूप से चल सके। परन्तु यदि हम उस गाड़ी में आवश्यकता से अधिक भार लाद देंगे तो सम्भव है कि गाड़ी रास्ते में खराब हो जायेगी या गाड़ी टूट जाये। इसको एक नाव के उदाहरण द्वारा भी समझा जा सकता है। यदि नाव की वहन क्षमता से अधिक लोग नाव में बैठते हैं तो प्रायः नाव लहरों से डिसबैलेन्स होकर डूब जाती हैं ठीक उसी प्रकार पर्यावरण में उपस्थित प्राकृतिक संसााधनों के प्रयोग की भी अपनी–अपनी एक क्षमता होती है। लगातार उपयोग या उपभोग करने के दबाव को एक सीमा तक ही सहन कर सकती है। अतः यह वहन क्षमता सम्पदा के उपयोग से लगातार सीमित होती है तथा उपयोग के फलस्वरूप या प्रतिफल के रूप में किसी न किसी प्रदूषक के रूप में पुनः प्रकृति में वापस आती है। अतः पर्यावरण के अवषोषण क्षमता से अधिक उपयोग या उपभोग अत्यधिक प्रदूषण का लगातार जमाव होने से पर्यावरण का भयंकर विनाश हो सकता है। अतः एक बार विनाष होने पर पुनः पूर्ववर्ती स्थिति को प्राप्त करने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है तथा अत्यधिक उपयोग के कारण उत्पन्न हुआ। यह असंतुलन लगातार बढ़ता जाता है तथा पर्यावरण को नुकसान पहुंच जाता है।

पर्यावरण की वहन क्षमता को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। वह क्षमता जो पर्यावरण के अधिकतम उपयोग या उस पर आर्थिक अथवा अन्य मानवीय क्रियाकलापों के भार अथवा दबाव को सहन कर सकती है। प्रकृति का एक निष्चित रूप है एव ंहम उस चरम बिन्दु पर पंहुच गये है जिससे परिस्थितिक क्षति आपदा के रूप में परिवर्तित होती जा रही है।

1.12 बोध/प्रष्न अभ्यास के प्रष्न

1. विष्व पर्यावरण दिवस कब मनाया जाता है ?

(क) 21 मार्च

(ख) 23 दिसम्बर

(ग) 05 जून

(घ) 25 मई

1. पर्यावरण से क्या अभिप्राय है?

(क) भूमि तथा जल

(ख) भूमि जल तथा वायु के सभी जीव तथा अजीव

(ग) हमारे चारों तरफ का वायुमण्डल

(घ) उपर्युक्त सभी

2. जैविक विविधता से क्या आशय है ?

(क) भौतिक वातावरण में जीव

(ख) भौतिक वातावरण में सजीवों का घनत्व

(ग) विषेष भैगोलिक क्षेत्र में पायी जाने वाले सजीवों की संख्या तथा उनसे जुड़ी अन्तः क्रियायें

(घ) उपरोक्त में कोई नही

3. पर्यावरण के वहन क्षमा का तात्पर्य क्या है?

(क) भार उठाने की क्षमता

(ख) गाड़ी के चलने की क्षमता

(ग) वह क्षमता जो पर्यावरण के अधिकतम उपयोग के भार अथवा दबाव को सहन कर सके

(घ) उपरोक्त सभी

1.13 सारांष

विभिन्न विद्वानों की परिभाषाए तथा षोधों में पर्यावरण संरक्षण मूल रूप में समाहित है साथ में मानव द्वारा पर्यावरण को असंतुलित करने का लगातार प्रयास तथा पर्यावरण संरचना विषेष रूप से स्थल, जल तथा वायु मण्डल के कम्पोनेटस में मानव हस्तक्षेप से परिवर्तन को कम करने के प्रयासो को और तेज करने जिससे पर्यावरण के जैविक, अजैविक तथा ऊर्जा संघटक द्वारा आपस में विभिन्न उपसंघटको द्वारा संतुलित दिषा में कार्य करते हुये समावेषी विकास को बढ़ावा दें। जैव विविधता की महत्ता को स्पष्ट करते हुये तीनों अल्फा बीटा व गामा की विविधता को सुरक्षित रखने हेतु स्व स्थाने वाह्य स्थाने, संरक्षण के विषेष तरह से ध्यान रखने की आवष्यकता है। जिससे पर्यावरण की वहन क्षमता में बाधा उत्पन्न न हो।

1.14 षब्दार्थ सूची

संघटक– विभिन्न पर्यावरणीय तत्व जो पर्यावरण की संरचना में लगे हुये है।

आवृत– के चारों तरफ

जैविक– जन्तु, मानव वनस्पति जगत को सम्मलित रूप से जैविक कहते है।

अजैविक– जल, स्थल (थल) तथा वायु संघटक एवं इनके विभिन्न उपसंघटको को सम्मलित किया जाता है।

ऊर्जा संघटक– सूर्य ऊर्जा तथा भूतापीय ऊर्जा।

स्व–स्थाने– प्राकृतिक आवास में ही।

वाहय स्थाने– प्राकृतिक आवास से हटाकर कहीं अन्यत्र।

वहन क्षमता वह क्षमता जो पर्यावरण के अधिकतम उपयोग के भार अथवा दबाव को सहन कर सके।

1.15 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

झिंगन, एम. एल. रू " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली

सिन्हा, वी. सी. : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा,

Agarwal R- C- : Economics of Development and Planning, Lakshmi Narayan Agarwal Agra

Taneja M- L- & Myer R- M- : "Economics of Development and Planning, Vishal Publishing Co- Delhi

1.16 बोध/प्रष्न अभ्यास के प्रष्नों के सम्भावित उत्तर

प्रष्न–1. उत्तर– 05 जून

प्रष्न–2. उत्तर– उपर्युक्त सभी

प्रष्न–3. उत्तर– ग विषेष भैगोलिक क्षेत्र में पायी जाने वाले सजीवों की संख्या तथा उनसे जुड़ी अन्तः क्रियायें

प्रष्न–4. उत्तर– ग वह क्षमता जो पर्यावरण के अधिकतम उपयोग के भार अथवा दबाव को सहन कर सके

1.17 प्रष्नोत्तरी (विषयनिष्ठ)

1. पर्यावरण से क्या आषय है? इसकी परिभाषाओं पर प्रकाष डालते हुए पर्यावरण की प्रकृति को स्पष्ट कीजिए।
2. जैव–विविधता की संकल्पना को समझाइये। क्या जैव–विविधता संरक्षण को सविस्तार वर्णन कीजिए।
3. जैव–विविधता संरक्षण की प्रासंगिकता को समझाइये।
4. पर्यावरण के वहन क्षमता का मानवीय दृष्टिकोण स्पष्ट कीजिए।

खण्ड–4

इकाई–02

चक्रीय आर्थिक प्रवाह एवं पर्यावरण

इकाई का संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उददेष्य

2.3 चक्रीय आर्थिक प्रवाह एवं पर्यावरण

2.4 चक्रीय या सकुर्लर अर्थ व्यवस्था

2.5 हरित अर्थ व्यवस्था के लाभ

2.6 सर्कुलर माडल को लागू करने में आने वाली कठिनाई

2.7 सर्कुलन इकोनामी स्थिरता की ओर एक कदम

2.8 वायोमिनीक्री

2.9 भारत में सर्कुलर प्रषिक्षण

2.10 बोध/प्रष्न अभ्यास के प्रष्न

2.11 सारांष

2.12 षब्दार्थ सूची

2.13 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

2.14 बोध/प्रष्न अभ्यास के प्रष्नों के सम्भावित उत्तर

2.15 प्रष्नोत्तरी (विषयनिष्ठ)

2.1 प्रस्तावनाः– चक्रीय आर्थिक प्रवाह– का अर्थ है नए संसाधनों के उत्पादन के बजाय उत्पादों के निपटान और पुर्नपयोग को प्रोत्साहित करने से हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं में सभी प्रकार के अपशिष्ट जैसे कपड़े अपशिष्ट और अप्रचलित इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को अर्थव्यवस्था में लौटा दिया जाता है या बेहतर उपयोग में लाया जाता है। जिससे पर्यावरण को प्रदूषित होने से रोका जा सकता है। चक्रीय अर्थव्यवस्था उत्पादन डिजाइन या अन्य उपयोगो के लिये कचरे के पुर्ननवीनीकरण कच्चे माल में बदलकर प्रसंस्कृत करके हरित अर्थवस्था, औद्योगिक पारिस्थितिकी, पर्यावरण अनुकूल प्रविधि का प्रयोग करते हुये अर्थव्यवस्था को आगे ले जाना। इसके अन्तर्गत सर्कुलर इकोनामी के लाभ लागू करने में कठिनाइया तथा सिद्धान्तो की चर्चा की जायेगी विषेष रूप से पर्यावरणीय संघटको को ध्यान में रखते हुये।

2.2 उददेष्यः– इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्र चक्रीय अर्थव्यवस्था पर्यावरण तथा इससे संबंधित निम्न के बारे में जान सकेगे।

1. चक्रीय अर्थव्यवस्था के बारे में जान सकेगें।
2. ग्रीन पर्यावरण को परिभाषित कर सकेगे।
3. अपने पर्यावरण को संरक्षित करने में मदद कर सकेगे।
4. सर्कुलर अर्थव्यस्था सिद्धान्त को जान सकेगे।
5. सर्कुलर अर्थव्यस्था संघटको को पहचान सकेगे।
6. सर्कुलर अर्थव्यस्था के लाभ से अवगत हो सकेगे।

2.3 चक्रीय आर्थिक प्रवाह एवं पर्यावरण

चक्रीय अर्थव्यवस्था में ऐसे बाजार शामिल होते हैं जो नए संसाधनों के उत्पादन के बजाय उत्पादों के निपटान और पुर्नपयोग को प्रोत्साहित करते हैं। इन अर्थव्यवस्थाओं में सभी प्रकार के अपशिष्ट जैसे कपड़े अपशिष्ट और अप्रचलित इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को अर्थव्यवस्था में लौटा दिया जाता है या बेहतर उपयोग में लाया जाता है। यह न केवल पर्यावरण की रक्षा का एक तरीका है बल्कि प्राकृतिक संसाधनों का अधिक सावधानी से उपयोग करने, नए क्षेत्रों का विकास करने, रोजगार पैदा करने और नए अवसर विकसित करने का भी है।सर्कुलर अर्थव्यवस्था एक आर्थिक मॉडल को संदर्भित करती है, जिसका उद्देश्य उपभोग और संसाधनों (कच्चे माल, पानी, ऊर्जा) की बर्बादी के साथ–साथ कचरे के उत्पादन को सीमित करके वस्तुओं और सेवाओं का टिकाऊ तरीके से उत्पादन करना है। उत्पाद डिजाइन या अन्य उपयोगों के लिए कचरे को पुनर्नवीनीकरण कच्चे माल में बदलने का प्रस्ताव करके यह टेक–मेक–कंज्यूम–थ्रो अवे पैटर्न पर आधारित रैखिक अर्थव्यवस्था के मॉडल के साथ टूट रहा है।सर्कुलर इकोनॉमी मॉडल सतत् विकास के अधिक सामान्य ढांचे में सीधे फिट बैठता है। यह एक वैश्विक रणनीति का हिस्सा है जो अन्य बातों के अलावा हरित अर्थव्यवस्था, औद्योगिक पारिस्थितिकी पर्यावरण–डिजाइन या कार्यक्षमता की अर्थव्यवस्था के सिद्धांतों का भी उपयोग करता है।

2.4 सर्कुलर या चक्रीय अर्थव्यवस्था सिद्धांत

एक संसाधन के रूप में संसाधनों ने अपशिष्ट का उपयोग करना एक चक्रीय अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताओं में से एक। सभी बायोडिग्रेडेबल तत्व प्रकृति में वापस आते हैं और गैर–बायोडिग्रेडेबल का पुर्नपयोग किया जाता है

दूसरा अनुभव– इसका मतलब है कि पारिस्थितिकी तंत्र का घटक जिसमें उपयोग पहले से ही अलग है

पुर्नपयोग मरम्मत का मतलब उत्पाद के क्षतिग्रस्त हिस्सों की मरम्मत और इसे दूसरा जीवन दे रहा है।

मूल्यांकन का अर्थ है संसाधनों से ऊर्जा का शोषण या उत्पादन जिसे पुनर्नवीनीकरण नहीं किया जा सकता है।

कार्यात्मक प्रबंधन का उद्देश्य उत्पादों के मूल्य और उपयोग को बढ़ाने के लिए माल के लाभ के साथ माल की बिक्री को संशोधित करना है। मुख्य फंक्शन को पूरा करने के बाद उत्पाद को अलग किया जाता

है । पुर्नपयोग किया जाता है और तदनुसार पुनर्नवीनीकरण किया जाता है।

उत्पादन पुर्नपयोग या ऊर्जा और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतों के पुनर्चक्रण के लिए जीवाश्म ईंधन का उन्मूलन।

पारिस्थितिक उत्पादों के निर्माण में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में पर्यावरणीय प्रभावों के साथ डिजाइन डिजाइन विचार का अभ्यास है।

2.5 परिपत्र अर्थव्यवस्था के लाभ

जब से औद्योगीकरण शुरू हुआ है उत्पादन और खपत के एक रैखिक मॉडल का पालन किया गया है क्योंकि कच्चे माल को तैयार रमाल में बदल दिया जाता है और कच्चे माल में मूल्य जोड़ा जाता है। एक बार उपयोग करने के बाद अवशिष्ट अपशिष्ट बन जाता है और आमतौर पर अनजाने में इलाज किया जाता है या त्याग दिया जाता है।दूसरी ओर एक परिपत्र अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था के लिए एक मॉडल है जो पुनर्योजी डिजाइन सोच और संसाधनों के प्रदर्शन को बेहतर बनाने के तरीकों को एकीकृत करती है जिसे एक बार अपशिष्ट के रूप में छोड़ दिया गया था।

सर्कुलर इकोनॉमी बनाने के पर्यावरणीय लाभ

1. कम ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन
2. स्वस्थ और उपजाऊ मिट्टी
3. कम नकारात्मक बाह्यताएँ

सर्कुलर इकोनॉमी बनाने के आर्थिक लाभ

1. आर्थिक विकास की संभावना में वृद्धि
2. अधिक संसाधन सहेजे गए
3. आर्थिक विकास
4. संसाधनों के अतिदोहन पर लगाम
5. नये बाजार का सृजन
6. नये उत्पादों का बाजार सृजन
7. स्वरोजगार में वृद्धि

सर्कुलर इकोनॉमी बनाने के अन्य लाभ

1. लाभ के नए अवसर
2. कच्चे माल की कीमत में अस्थिरता में कमी
3. नई सेवाओं की मांग

2.6 सर्कुलर मॉडल को लागू करने में आने वाली कठिनाई

मूल्य निर्धारण करते समय सामाजिक और आर्थिक कारकों पर विचार नहीं किया जाता है, जिससे आर्थिक निर्णय लेते समय वित्तीय बाजार लोगों और प्रकृति से अधिक प्रचलित हो जाता है सर्कुलर आधारित अर्थव्यवस्था के आधार पर संबंधित और डिजाइन किए गए व्यवसायों को विकसित करना कठिन होता है। क्योंकि अधिकांश निवेशक लाभ के उद्देश्य से निवेश करते हैं।सर्कुलर उत्पादों की मांग कम हैडिजाइन थिंकिंग के सर्विस या प्रोफेशनल फील्ड में ज्यादा उपलब्ध नहीं है।

वर्तमान आर्थिक प्रणाली उत्पादन के रैखिक अर्थव्यवस्था मॉडल को बढ़ावा दे रही है।इस तरह के नवाचार के लिए कानून और नियम तैयार नहीं हैं।लघु अवधि के मौद्रिक लक्ष्यों से लंबी अवधि के टिकाऊ

लक्ष्यों में बदलाव की आवश्यकता है और यह ज्यादा लोकप्रिय नहीं है। जीडीपी सूचकांक स्थिरता को मूल्यवर्धन के हिस्से के रूप में नहीं मानता है। जिससे अर्थव्यवस्था में इसकी भूमिका अप्रासंगिक हो जाती है।

2.7 सर्कुलर इकोनामी स्थिरता की ओर एक कदम

क्रैडल टू क्रैडल इस डिजाइन दर्शन का मानना है कि औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रक्रियाओं में शामिल सभी सामग्री मूल्य की होनी चाहिए। यह उत्पाद डिजाइन बनाने पर ध्यान केंद्रित करता है जो अधिक सकारात्मक प्रभाव पैदा करता है और कुशल प्रबंधन के माध्यम से नकारात्मक प्रभाव को कम करता है।इसका उद्देश्य ऐसे उत्पाद घटकों का निर्माण करना है जिन्हें इन प्रक्रियाओं में जैविक और तकनीकी पोषक तत्वों के रूप में लगातार पुनर्प्राप्त और पुर्नपयोग किया जा सकता है

अपशिष्ट की अवधारणा को खत्म करना, उपयोग की जाने वाली शक्ति पूरी तरह से नवीकरणीय ऊर्जा है

प्रदर्शन अर्थव्यवस्था। सर्कुलर इकोनॉमी चार मुख्य लक्ष्यों का पीछा करती है– उत्पाद, जीवन विस्तार, उत्पाद की बजार सेवाएं, कार्यात्मक सेवा अर्थव्यवस्था और प्रदर्शन अर्थव्यवस्था के संदर्भ में एक विचार।

2.8 बायोमिमिक्री biomimicry

यह अध्ययन का एक नया विषय है जहां मानव समस्याओं को हल करने के लिए डिजाइन और प्रक्रिया के संदर्भ में प्रकृति के सर्वोत्तम विचार का अनुकरण किया जाता है।

नवाचार के लिए प्रेरणा के रूप में प्रकृति।

एक स्थिरता मानक के रूप में प्रकृति।

एक संरक्षक के रूप में प्रकृति।

प्राकृतिक पूंजीवाद

प्राकृतिक पूंजी में प्रकृति के सभी प्राकृतिक संसाधनों जैसे हवा, पानी, मिट्टी आदि का भंडार शामिल है। इसका मानना है कि आमतौर पर व्यावसायिक हित और पर्यावरणीय स्थिरता ओवरलैप होती है।

प्राकृतिक संसाधनों की उत्पादकता में वृद्धि करना

जैविक रूप से प्रेरित उत्पादों में बदलाव जो कचरे की अवधारणा को खत्म करते हैं। अवशिष्ट या तो पारिस्थितिकी तंत्र में हानिरहित ईंधन में जुड़ जाते हैं या अन्य निर्माण प्रक्रियाओं में एक इनपुट के रूप में कार्य करते हैं। सेवा और प्रवाह व्यवसाय मॉडल जहां नए उत्पाद का उत्पादन करने के बजाय प्रक्रियाओं और सर्विसिंग के माध्यम से दोष को हटा दिया जाता है या कम या समाप्त कर दिया जाता है। मानवीय जरूरतों ने प्राकृतिक संसाधनों की मांग पर दबाव डाला। लक्ष्य पुर्नस्थापित करना और पुर्नउत्पन्न करना है।

2.9 भारत में पुनर्चक्रण प्रशिक्षण कचरे की रिकवरी और सर्कुलर इकोनॉमी को बढ़ावा देने की निष्क्रिय क्षमता तभी आगे बढ़ सकती है। जब लोगों के नागरिक कचरे को अलग करने जैविक कचरे के लिए कंपोस्टिंग का एक नेटवर्क विकसित करने सूखे कचरे के लिए रीसाइक्लिंग और कचरे को कम करने में सक्रिय रूप से भाग लें। इसके लिए सामुदायिक जागरूकता और संवेदनशीलता जरूरी है। उदाहरण स्वरूप मुम्बई स्थित एक गैर सरकारी संस्थान **पृथ्वी5आर** द्वारा कुछ क्षेत्रीय समुदायों तथा स्वयंसेवक स्थायी समुदायों के सहायता से छोटे छोटे टीम का निर्माण करते हैं, जो पर्यावरणीय मुद्दों से निपटने के लिए Earth5R ने एसीटी मुंबई परियोजना के एक भाग के रूप में भारत के बांद्रा में मैंग्रोव सफाई अभियान का आयोजन किया। टीम में नागरिक और युवा स्वयंसेवक Earth5R इंटर्न शामिल हैं, जो ग्लोबल इंटर्नशिप प्रोग्राम नगर पालिका रैगपिकर्स और स्थानीय व्यवसायों का हिस्सा हैं। कार्य कचरे को इकट्ठा करना और इसे पुर्नप्रयोज्य और गैर–पुनर्नवीनीकरण में अलग करना था। पुनर्चक्रण योग्य वस्तुओं को धातु प्लास्टिक और कांच भी अलग किया जाना चाहिए ताकि कचरा बीनने वालों द्वारा पुनर्चक्रणकर्ताओं को आसानी से बेचा जा सके।भारत में झील की सफाई और पुनर्चक्रण Earth5R छात्रों और नागरिकों के साथ नियमित रूप से सफाई करता है। टीम ने अब तक 1 टन प्लास्टिक को सफलतापूर्वक रिसाइकिल किया है और इसे लैंडफिल भरने की अनुमति देने के बजाय इसे सर्कुलर इकोनॉमी में वापस लाया है। इस विचारधारा के साथ काम करता है कि केवल कचरे को उठाकर कहीं और डंप करना एक स्थायी समाधान नहीं है। इसके बजाय टीम रीसायकल करती है, अपसाइकल करती है और इसे सर्कुलर इकोनॉमी में लौटाती है।

इसी प्रकार के प्रयास भारत के प्रत्येक राज्य में जिला स्तर तथा तहसील स्तर पर होना जरूरी है जिससे इन समूहों का हर घर तक पहुच हो और अपषिष्ट या कचरे के रिसायकलीकरण को प्रोत्साहन मिल सकें। सरकारों को भी गैर सरकारी संस्थानों को यथा संभव वित्तीय मदद के साथ तकनीकी कौषल तथा अन्य रूपों में मदद पहुचानी चाहिए जिससे इनका बाजार निर्माण तथा प्रोत्साहन मिल सके तथा पर्यावरण सुरक्षित रहे और समावेषी विकास की अवधारणा को सहजता से प्राप्त किया जा सकें।

2.10 बोध / प्रष्न अभ्यास के प्रष्न

1. सर्कुलर अर्थव्यवस्था के बारे गलत कथन का चयन किजिए।

क. यह पर्यावरण अनुकूल होती है।

ख. यह पर्यावरण प्रतिकूल होती है।

ग. यह केवल कचरे के पुर्नचक्रण से सम्बन्धित है।

घ. पारिस्थितिक तंत्र में हानि रहित विधि द्वारा खराब ईधन का पुर्नचक्रण करना।

2. चक्रीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक लाभ में सम्मिलित नहीं होता है।

क. लाभकारी

ख, रोजगार सृजन

ग, कचरा प्रबन्धन

घ, उपरोक्त में कोई नहीं

3. निम्नलिखित में चक्रीय अर्थव्यवस्था का उदाहरण है।

क. पुराने बोतल को काटकर पेन रखने हेतु नया बाक्स बनाना

ख. पुराने बोतल को काटकर पेन रखने हेतु बाक्स बनाना

ग. प्लास्टिक की नयी टोकरी बनाना

घ. नया कूलर बनाना

4. अर्थफाइव–आर क्या है?

क. एक स्वयंसेवी संस्था

ख. मैग्रोव की सफाई

ग. नगर पालिका का प्रोग्राम

घ. इनमें से कोई नहीं

2.11 सारांष–

चक्रीय अर्थव्यवस्था विभिन्न प्रकार की विषेषताओ तथा सम्भावनाओं से भरा पड़ा है। आवष्यकता है तो विधिवत प्लान बनाकर इसे लागू करना। घरो से निकलने वाले अपषिष्ट जो पर्यावरण प्रतिकूल भी होते है को रिसायकिल करते हुये अर्थव्यवस्था में पुनः लौटा दिया जाना या उसका जो भी बेहतर उपयोग हो को उपयोग में लाना चक्रीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख लक्ष्य है। इससे नये क्षेत्रों का विकास, रोजगार के नये अवसर, हस्त षिल्प (खिलौना, आकर्षक वस्तुए इत्यादि) को बढावा मिलेगा। गैर वायोडिग्रेडिबल अपषिष्टों का चक्रीयकरण के द्वारा पुर्नउपयोग, पारिस्थितिकी तंत्र के अनुकूल अर्थव्यवस्था का निर्माण करना है।

2.12 षब्दार्थ सूची–

सर्कुलर– अपषिष्टों का पुर्नउपयोग

प्राकृतिक पूंजी– समस्त प्राकृतिक संसाधन प्राकृतिक पूंजी के अन्तर्गत सम्मिलित है, हवा, पानी मिटटी इत्यादि।

जी0डी0पी0– चक्रीय करण के द्वारा अर्थव्यवस्था के सम्पूर्ण आय में हुयी वृद्धि।

वित्तीय सहायता– चक्रीयकरण हेतु आवष्यक न्यूनतम पूंजी सरकार द्वारा उपलब्ध कराया जाना।

कार्यात्मक प्रबंधन– उत्पादों के मूल्य और उपयोग को बढावा देना, लाभ के साथ माल की बिक्री।

रीसायकल–पुनर्चक्रण में कुछ नया बनाने के लिए कचरे को नष्ट करना शामिल है।

अपसाइकल– पुनर्चक्रण में कचरा लिया जाता है और उसकी वर्तमान स्थिति में उससे कुछ नया बनाया जाता है।

2.13 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, ' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट सिंगेंज पब्लिकेषन, 2013.

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

झिंगन, एम. एल. रू " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2022

सिन्हा, वी. सी. : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

Agarwal R- C- : Economics of Development and Planning Lakshmi Narayan Agarwal Agra

Taneja M- L- & Myer R- M- : "Economics of Development and Planning Vishal Publishing Co- Delhi

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज

2.14 बोध/प्रष्न अभ्यास के प्रष्नों के सम्भावित उत्तर

1. ख. यह पर्यावरण प्रतिकूल होती है।
2. घ, उपरोक्त में कोई नहीं
3. ख. पुराने बोतल को काटकर पेन रखने हेतु बाक्स बनाना
4. क. एक स्वयंसेवी संस्था

2.15 विषयनिष्ठ प्रष्न–

1. चक्रीय आर्थिक पर्यावरण से क्या आषय है?
2. चक्रीय आर्थिक पर्यावरणीय प्रवाह को अपने षब्दों उदाहरण सहित स्पष्ट करे?
3. भारत जैसे विकासषील देषों में सर्कुलर इकोनामी की प्रासंगिकता एवं आने वाले कठिनाइयों को स्पष्ट किजिए।
4. अपने आस–पास के पर्यावरण से उदाहरण लेते हुये सर्कुलर या परिपथ या पुर्नचक्रण अर्थव्यवस्था की अवधारणा को स्पष्ट किजिए।

खण्ड–4
इकाई–03
पारिस्थितिकी विकास

इकाई का संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देष्य
3.3 पारिस्थितिकी
3.4 पारिस्थितिकी की षाखायें
3.5 पारिस्थितिकी विकास तथा मानव
3.6 पारिस्थितिकी विकास की आवष्यकता
3.7 बोध प्रष्न /अभ्यास के प्रष्न
3.8 सारांष
3.9 षब्दार्थ सूची
3.10 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें
3.11 बोध प्रष्न/अभ्यास के प्रष्नों के सम्भावित उत्तर
3.12 प्रष्नोत्तरी (विषयनिष्ठ)

.

3.1 प्रस्तावना– पारिस्थितिकी विकास मिलेनियम इको सिस्टम एसेसमेन्ट में मानव के प्रयासों का आकलन किया जा रहा है, जिसके अन्तर्गत पारिस्थितिकी विकास से संदर्भित समस्त पहलुओं को ध्यान रखने तथा संरक्षण करने को अमल में लाया गया। इस इकाई में पारिस्थिकी तथा इसकी षाखाओं का अध्ययन किया जायेगा तथा किस प्रकार मानव हस्तक्षेप द्वारा पारिस्थितकी में अस्थिरता उत्पन्न किया जा रहा है जिसके कारण खाद्य श्रृंखला प्रभावित हो रही है पर प्रकाष डाला जायेगा।

3.2 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद छात्रों में निम्नलिखित समझ को विकसित हो पायेगी।

1. छात्र पारिस्थितिकी को परिभाषित कर सकेगें।
2.छात्र पारिस्थितिकी की षाखाओं की गहनता जान सकेगें।
3.मानव द्वारा पारिस्थितिकी में असंतुलन को समझ सकेंगे।
4.पारिस्थितिकी विकास की आवष्यकता को जान सकेंगे।
5.पारिस्थितिकी विकास को विकसित करने में योगदान दे सकेंगे।

3.3 पारिस्थितिकी विकास(Ecology Development):–

पारिस्थितिकी (Ecology) षब्द दो ग्रीक षब्दों Oikas तथा Logos से मिलकर बना है।Oikas का अर्थ है House (घर) तथा Logos का अर्थ है Study (अध्ययन) अर्थात जीवधारियों के आवास या प्रवास का उसके वातावरण/पर्यावरण से अन्तः क्रिया का अध्ययन है। इस प्रकार पारिस्थितिकी का षब्दिक रूप में अर्थ है आवास का अध्ययन। इकोलॉजी को अध्ययन की अलग षाखा के रूप में पहचान दिलाने का श्रेय जर्मन वैज्ञानिक ई0 हेकिल (Ernst Hackle) को जाता है। क्योंकि अर्नस्ट हैकेल ने सन् 1866 ई0 में इकोलॉजी षब्द का प्रयोग Oekologie के रूप में किया था। इन्होनें इकोलॉजी को परिभाषित किया–श्वातावरण और जीव समूदाय के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन को पारिस्थितिकी कहते हैं''

गौतम गुप्ता ने इकालॉजी को परितन्त्र के अध्ययन के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया। इस जीव जगत में सभी प्राणी चाहे वह मनुष्य हो चाहे पषु हो अपने जीवन निर्वाह के लिए प्रायः वनस्पतियों तथा अन्य छोटे–छोटे जीवों के ऊपर निर्भर रही है तथा पारस्परिक क्रिया करते हैं साथ ही अजैविक समूह (वायु जल मृदा) पर भी निर्भर रहते हैं तथा उनके साथक्रिया करते हैं। अजैविक समूह भी अनेक प्रकार से जैविक समूहों पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार भौतिक तथा जैविक समूहों का यह सहसम्बन्ध या पारस्परिक सम्बन्ध तथा आवास में एक दूसरे से क्रिया करना ही परितन्त्र का निर्माण करना है। अतः यथार्थ रूप में पारिस्थितिकी परितन्त्र के अध्ययन का विज्ञान है। पार्क (1980) ने स्पष्ट किया कि पारिस्थितिकी अनेक अहयेताओं के लिए संरक्षण एवं पर्यावरण की पर्यायवाची है, तथा दासमैन ने पारिस्थितिकी को लोगों को एकीकृत करने वाले सामाजिक आन्दोलन के रूप में स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी के अन्तर्गत न केवल जीवों का अध्ययन किया जाता है अपितु व्यवहारिक बनाने के लिए सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं को भी सम्मिलित किया जाने लगा है। जिस कारण पारिस्थितिकी के एक नये अध्ययन क्षेत्र व्यवहारिक पारिस्थितिकी का उदय हुआ। अतः लगातार चिन्तनों अनुसंधानों को लगातार सम्मिलित करते हुए पारिस्थितिकी के विषय क्षेत्र का विस्तार होता जा रहा है।

अतः पारिस्थितिकी तन्त्र में जैविक–अजैविक संघटक, पोषण स्तर, ऊर्जा प्रवाह, भू–रसायन चक्र, प्रकाष संष्लेषण, आहार श्रृंखला, आहार जाल, उत्पादकता, स्थिरता, पादप–जगत, जीव–जगत, बायोमॉस पर्यावरण अवनयन असंतुलन प्राकृतिक आपदायें प्रदूषण एवं पर्यावरण प्रबन्धन आदि के अध्ययन को सम्मिलित किया जाता है। अतः ध्यान से देखेगें तो हमारे आस–पास उपस्थित इस धरती का षायद ही कोई घटक होगा जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष अध्ययन पारिस्थितिकी के अन्तर्गत न किया जाता हो।

3.4 पारिस्थितिकी की षाखाऐंः–

अध्ययन की दृष्टि से पारिस्थितिकी को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. स्वयं पारिस्थितिकीः–

जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि यहां किसी एक व्यक्तिगत तत्व के अध्ययन को वरियता दी जाती है। अर्थात इसके अन्तर्गत एक वनस्पति या पौधे अथवा जन्तु अथवा व्यक्तिगत उपजाति और उसके वातावरण से स्थापित किया गया क्रिया–प्रतिक्रिया (अन्तःसंबंधों) एवं उसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

2. समुदाय पारिस्थितिकीः–

इसके अन्तर्गत किसी एक भौगोलिक क्षेत्र। स्थान पर पाये जाने वाले समस्त वादप एवं जन्तुओं समुदायों उनकी बनवट उनके क्रियाकलापों व्यवहारों आवासीय क्रियाओं तथा संबंधों का अध्ययन किया जाता है।

समुदाय पारिस्थितिकी को आबादी समुदाय तथा पारिस्थितिकी तन्त्र पारिस्थितिकी में बाँटा जाता है।

आवास स्थान के आधार पर पारिस्थितिकी को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1–जलीय पारिस्थितिकी

2. **स्थलीय पारिस्थितिकी**

पुनः इन दोनों पारिस्थितिकी को भी अलग–अलग उपभागों में विभाजित करते हुए अध्ययन किया जाता है। जैसे जलीय पारिस्थितिकी किसी विष्लेषण तत्व जैसे लवणता के आधार पर स्वच्छ जल पारिस्थितिकी, जिसमें तालाब नदी जल स्रोतों (Stream) पारिस्थितिकी में विभाजित किया जाता है। दूसरे समुद्र जल पारिस्थितिकी, जिसके अन्तर्गत सागर महासागर इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है जो अपनी लवणीय संरचना विषेषता के कारण सर्वाधिक स्थायी पारिस्थितिकी तत्व का निर्माण करती है।

स्थलीय पारिस्थितिकी तन्त्र में घास, वन, मरूस्थल, फसल, स्थल, पारिस्थितिकी जैसे उपभागों में बांट कर अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न पर्यावरण विदों ने पारिस्थितिकी को भिन्न–भिन्न वर्गों में बांट कर अध्ययन किया है। जैसे– उत्पादन, सूक्ष्मजीवी, जाति, आबादी, विकिरण, समुदाय, प्रदूषण, स्थान, पारिस्थितिकी तन्त्र, व्यवहारिक, विकासीय, आनुवांषिक, मानव इत्यादि रूपों में पारिस्थितिकी के रूप में करते हैं।

उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि पारिस्थितिकी विकास को जानने के लिए पारिस्थितिकी कारकों को जानना आवष्यक है। पर्यावरण या वतावरण में भिन्न–भिन्न कारक होते है जिनका अलग–अलग प्रभाव जीवधारियों पर पड़ता है परन्तु अकेले एक कारक के प्रभाव को जान पाना कठिन कार्य है इालिए यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अकेला कारक जीवधारियों पर प्रकाष नही डालता बल्कि सभी कारक आपस में मिल कर जीवधारियों पर प्रभाव डालते है। इन्ही कारकों के प्रभावों के कारण भिन्न–भिन्न स्थानों पर जीवों तथा वनस्पतियों की भिन्न प्रजातियों का अस्तित्व होता है। अतः इन पारिस्थितिक कारकों को मुख्य रूप से चार भागों में बांटा गया है–

1– जलवायवीय कारक

2– मृदीय कारक

3– स्थलाकृतिक कारक

4– जीवीय कारक

इन प्रमुख कारकों को अलग–अलग भागों में बांटा जाता है जलवायुवीय कारक के अन्तर्गत–प्रकाष तापमान जल व वर्ष वायुमण्डलीय नमी वायु (वायुगति तथा वायुमण्डलीय गैसों) इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। स्थलाकृति कारकों में ऊचाँई, ढलान (ढलान की मात्रा दिषा) खुलाव इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

मृदीय पारस्थितिकीय कारकों में मृदा के अन्दर तथा मृदा से सम्बन्धित कारकों जैसे–खनिज पदार्थ, कार्बनिक पदार्थ, षैवाल, मृदा, जल, मृदा, वायु, मृदा जीव, तथा मृदा अभिक्रिया का अध्ययन किया जाता है। जैविक पारिस्थितिक कारक के अन्तर्गत जीवाणु, सूक्ष्म जीव, मृतोपजीविता, अधिपादकता, कीटभक्षी पौधे, कवक, चरने वाले पषु, परजीविता, सहजीविता इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

3.5 पारिस्थितिकीविकास तथा मानव

औद्योगीकरण, वृक्षों की बेरहम कटाई व अनियंत्रित खनन प्रक्रिया, बाँध परियोजना से वन्य जीव भी प्रभावित हो रहे हैं। ऐसी चिन्ताजनक व भयावह स्थिति से निपटने के लिये प्रकृति–प्रेमियों, पर्यावरणविदों को आगे आने व पर्यावरणीय विकास कार्यक्रमों को सच्चे मन से क्रियान्वित करने की सख्त आवश्यकता है। वर्तमान में इस सम्बन्ध के बिगड़ते स्वरूप सन्तुलन व ताने–बाने को परिष्कृत करने लिये पारिस्थितिकी विकास की खास आवश्यकता महसूस हो रही है। हमें आज पेड़ वृक्षों को बढ़ाने की बेहद जरूरत है। क्योंकि ऐसी भयावह स्थिति में वृक्ष ही हमारी सबसे ज्यादा मदद कर सकते हैं। हम सब मिलकर सघन वृक्षारोपण करके उद्योगों के जहरीले धुएँ व मलबे को नियंत्रित करके वनों का कटाव रोक करके पर्यावरण को बचा सकते हैं। पर्यावरण के बचने से ही हम सुरक्षित रह सकते हैं, और यह हम सब की सामूहिक जिम्मेदारी व नैतिक दायित्व भी है। एक ओर जनसंख्या वृद्धि की विस्फोटक स्थिति बनी हुई है तथा दूसरी ओर हम प्राकृतिक संसाधनों का अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर गलत तरीके से दोहन कर रहे हैं। नदियों के साफ जल को गन्दा कर रहे हैं, शुद्ध वायु को प्रतिपल अशुद्ध बना रहे हैं, धरती के कृषि योग्य क्षेत्र को निरन्तर घटा रहे हैं। वाहनों से वायुमंडल को प्रदूषित कर रहे हैं। हमें इस स्थिति से बचने के उपाय सोचने होंगे। आज दिखावे के ढोंग से बचकर अपने ध्येय व दायित्व का निष्ठा व आस्था के साथ क्रियान्वयन करने

की जरूरत है। पर्यावरण संरक्षण को एक अहम दायित्व समझकर दृढ़ निश्चय लेने व विश्वसनीयता को पुनः स्थापित करने की प्रबल आवश्यकता है वरना भावी पीढ़ियाँ हमें कतई क्षमा नहीं करेंगी।

3.6 पारिस्थितिक विकास की आवष्यकता

प्रकृति हमारे जीवन को विविध स्वरूपों व आयामों से प्रभावित करती है। हम पूर्ण रूपेण प्रकृति पर निर्भर हैं फिर भी हम उसके साथ अच्छा सलूक नहीं कर रहे हैं। यदि ऐसी ही स्थिति चलती रही तो आगे के कुछ ही वर्षों में प्रकृति भयावह व विकृत रूप धारण कर लेगी। उस समय हमारा जीना–हँसना खाना–पीना सब कुछ नीरस व दूभर हो जाएगा। इसलिये हमें अब भी चेत जाना चाहिए। सावधान व सतर्क हो जाने में ही भलाई है। हमें अपनी प्रतिभा क्षमता के मुताबिक पर्यावरण सुधार के लिये जी–तोड़ प्रयास प्रारम्भ कर देने चाहिए। हमें इसकी शुरुआत घर, पड़ोस मोहल्ला से शुरू करनी चाहिए। हमें पौधे व वृक्ष लगाने, उनकी सुरक्षा (फैसिंग) करने, उन्हें संरक्षण देने का पुनीत दायित्व वहन करने का संकल्प हृदय में बिठाना होगा। एक समर्पित कार्यकर्ता बनना होगा। इस योगदान के लिये अधिक–से–अधिक लोगों को अभिप्रेरित करना होगा उनका समुचित सहयोग व कुशल मार्गदर्शन लेना होगा। विविध गतिविधियों व कार्यक्रमों के माध्यम से (विकास शिविर गोष्ठी चर्चाएँ आदि) उचित व रचनात्मक स्वरूप प्रदर्शित करना होगा। ऐसा करके ही हम भावी पीढ़ी के भविष्य को बचाने का एक सपना आलोकित रख सकते हैं और उज्ज्वल व प्रदूषण मुक्त सवेरे की आस लगा सकते हैं।

3.7 पारिस्थितिकी सुरक्षा

पारिस्थितिक रूप से क्षतिग्रस्त क्षेत्रों की बहाली बढ़ते प्रदूषण की रोकथाम पर्यावरण विकास सुरक्षा आश्वासन और जन जागरूकता के लिए पर्यावरण और पर्यावरण शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिए। इसके लिए इसे जन आंदोलन का रूप लेना होगा। पारिस्थितिक विकास शिविरों के आयोजन के मुख्य उद्देश्य हैं

1. गाँवों, कस्बों, बस्तियों और प्रदेशों को प्रदूषण रहित, हरा–भरा और स्वच्छ बनाना।
2. छात्रों समाज और आम जनता को पर्यावरण संबंधी जानकारी प्रदान करना।
3. पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए युवाओं की ऊर्जा को निर्देशित करना।
4. पर्यावरण संरक्षण के महत्व और प्राकृतिक संसाधनों के उचित उपयोग की बढ़ती समझ।
5. समाज में रहने वाले लोगों के रहन–सहन खान–पान और गतिविधियों को प्रकृति के अनुकूल बनाने के लिए इंद्रियों को जगाना।
6. युवा पीढ़ी एवं जन साधारण में राष्ट्रीय एवं भावनात्मक एकता की भावना उत्पन्न करना।

3.8 बोध प्रष्न/अभ्यास के प्रष्न

बहुविकल्पीय प्रष्न–

1– पारिस्थितिकी के संबंध में कौन सा कथन गलत है?

क– यह दो ग्रीक षब्दों से मिलकर बना है।

ख– जीव समुदाय तथा वातावरण के पारस्परिक संबंध को पारिस्थितिकी कहते हैं।

ग– जलीय पारिस्थितिकी तथा स्थलीय पारिस्थितीकी, पारिस्थितिकी का भाग है।

घ–पारिस्थितिकी शब्द का प्रयोग ए0जी0 टेन्सले ने किया था।

2–निम्नलिखित में कौन जलीय पारिस्थितिकी का भाग है?

क– नदी

ख–तालाब

ग–समुद्र
घ–उपरोक्त सभी

3– सर्वाधिक स्थायीपारिस्थितिकी तन्त्र कौन सा है?
क– समुंद्र पारिस्थितिकी
ख– तालाब पारिस्थितिकी
ग– घास पारिस्थितिकी
घ– मृदा पारिस्थितिकी
4–पारिस्थितिकी (Ecology) षब्द किन षब्दों मिलकर बना है
क–ग्रीक भाषा के Oikas तथा Logos
ख– इटैलियन भाषा के Oikas तथा Logos
ग– अंग्रेजी भाषा के Oikas तथा Logos
घ– क और ख दोनों

3.9 सारांष

वर्तमान में मानव ने अपने अथाह स्वार्थ में डूबकर, लालच में सुविधाभोगी संस्कृति में अन्धे होकर प्रदत्त संसाधनों का मनमाने तरीके से व अनुचित शैली में दोहन करके पृथ्वी पर पर्यावरणीय असन्तुलन को बढ़ाया है। उसने जल वायु भूमि को प्रदूषित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। यहाँ तक कि ध्वनि आध्यात्म, संस्कृति, वैचारिकी, प्रदूषण को भी अपनाया है। अशिक्षा, होड़ प्रवृत्ति, बढ़ती जनसंख्या, मन की तृष्णा, भविष्य के प्रति लापरवाही, प्रकृति प्रेम, व जन जागृति की न्यूनता इसमें सहायक बनी है। इस अविरल प्रदूषित होते पर्यावरणीय वातावरण को रोकने, पारिस्थितिकी के प्रति जन चेतना जागृत करने विखंडित क्षेत्र का भौतिक सुधार करने लोगों में मानसिक जागरुकता उत्पन्न करने सजीवों में प्रकृति के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करने, पारिस्थितिकी विकास शिविर आयोजित करने, गोष्ठियाँ, चर्चाएँ, सेमीनार व रचनात्मक पहलू उजागर करने की सख्त जरूरत है। मन की तृष्णा पर काबू रखने पौधे लगाने व वृक्षारोपण करने उन्हें संरक्षण देने, खनन कार्य को मर्यादित रखने धुआँ व मलबे को नियंत्रित रखने प्राकृतिक संसाधनों के सदुपयोग करने, वृक्ष मित्र (रूख शायला) बनने छात्रों युवाओं व जन सामान्य को इस आन्दोलन से जोड़ने की परम आवश्यकता है। हमें पारिस्थितिकी विकास को प्रगाढ़, सार्थक जनोपयोगी बनाने के दृढ़ संकल्प को साँसों में बसाने की परम आवश्यकता है।

3.10 षब्दार्थ

पारिस्थितिकी–जीवधारियों का आवास।
जलीय– जल के अन्तर्गत आने वाले समस्त स्थान
कोषिका जल– वह मृदा जल जिसे पौधे अपने जड़ों द्वारा अवषोषित करते है।
मटियार– सार्वाधिक उर्वरकता करने वाली मृदा
श्रृखला– एक दूसरे से जुड़ा होना
उत्पादक– सभी हरे पौधें

3.11 संदर्भ एवं उपयोगी पुस्तकें

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, ' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेषन, 2013.

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

झिंगन, एम. एल. रू " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2022

सिन्हा, वी. सी. : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

Agarwal R- C- : Economics of Development and Planning Lakshmi Narayan Agarwal Agra

Taneja M- L- & Myer R- M- : "Economics of Development and Planningß Vishal Publishing Co- Delhi

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

3.12बोध प्रष्न/अभ्यास के प्रष्नों के सम्भावित उत्तर

1– घ–पारिस्थितिकी षब्द का प्रयोग ए0जी0 टेन्सले ने किया था।

2–घ–उपरोक्त सभी

3– क– समुद्र पारिस्थितिकी

4– क– ग्रीक भाषा के Oikas तथा Logos

3.13 प्रष्नोत्तरी (विषयनिष्ठ)

1–पारिस्थितिकी विकास से क्या आषय है?

2–पारिस्थितिकी को परिभाषित किजीए ? इसके विकास के लिए आयोजित षिविरों के उद्देष्यों पर प्रकाष डालिए?

खण्ड–4

इकाई–04

प्रदूषण एवं प्रदूषण एजेंट

इकाई का संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उददेष्य
4.3 पर्यावरण प्रदूषण
4.4 प्रदूषण के प्रकार
4.5 वायु प्रदूषण
4.6 वायु प्रदूषण के कारक/एजेंट
4.7 जल प्रदूषण
4.8 जल प्रदूषण के स्त्रोत/एजेंट
4.9 जल प्रदूषण के प्रकार
4.10 मृद्रा प्रदूषण
4.11 मृदा प्रदूषण के एजेंट
4.12 ध्वनि प्रदूषण
4.13 ध्वनि प्रदूषण के प्रकार
4.14 ध्वनि प्रदूषण के एजेंट
4.15 अन्य प्रदूषण
4.16 प्रष्नोत्तरी (वहुविकल्पीय)
4.17 विस्तृत प्रष्न
4.18 साराष
4.19 षब्दावली

4.1 प्रस्तावनाः–प्रदूषण आज एक बहुत बड़ी समस्या होता जा रहा है। आये दिन लोगों में नयी–नयी बिमारियों नये रोगों का चलन बिना मौसम बारिस अकारण लोगों में मृत्यु, पषुओं के झुण्डों में मृत पाया जाना पक्षियों का दूर होता झुंड इत्यादि प्रदूषण के प्रभाव को कारण ही होता है। प्रदूषण के प्रकारों को जानना आवष्यक है साथ ही कौन–कौन से तत्व है, जिनके वजह से वायु, जल, मृदा, ध्वनि, इत्यादि प्रदूषण दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है। किस प्रकार के प्रदूषण हमारे वातारण को दिन प्रतिदिन विषैला करते जा रहे है। जल पदूषण के बढ़ने से जलीय जीव तथा उनकी खाद्य श्रृंखला प्रभावित होती जा रही है। ठीक उसी प्रकार मृदा प्रदूषण के कारण मिटटी के आवष्यक तत्वों का हास होना वायु प्रदूषण के कारण दमा, जैसे कई बिमारियों का बढ़ना, ध्वनि प्रदूषण के कारण व्यक्ति के साथ–साथ पषु पक्षियों को जीवन में विभिन्न समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अतः प्रदूषण तथा प्रदूषण एजेंटों के बारे में अध्ययन करना अति आवष्यक है।

4.2 उददेष्यः–इस इकाई के पढ़ने के बाद छात्रों में निम्न समझ विकसित हो सकेगीः–

1. छात्र पर्यावरण प्रदूषण के बारे में जान सकेगें।
2. छात्र पर्यावरण प्रदूषण के प्रकारों में विभेद कर सकेगे।
3. पर्यावरण प्रदूषण के एजेंटों के बारे में लोगों को बता सकेगें।
4. पर्यावरण प्रदूषण के एजेंटों को पहिचान सकेगें।
5. प्रदूषणों से निपटारा पाने के बारे में लोगों को अवगत करा सकेगें।

6. छात्र व्यवहारिक जीवन में प्रदूषणों से निपट सकेगें।

प्रदूषण एवं प्रदूषण एजेंट

4.3 पर्यावरण प्रदूषणः—मानव औद्योगिक विकास, नगरीकरण, परमाणु ऊर्जा आदि के अत्यधिक लाभ उठाने का प्रयास किया परन्तु प्राकृतिक संषाधनों का अंधाधुन दोहन के फलस्वरूप भविष्य में होने वाले घातक परिणामों की अवहेलना की गयी है जिस कारण पर्यावरण का संतुलन डगमगा गया है। फलस्वरूप वायु, जल तथा भूमि में प्रदूषण उत्पन्न हो गया है। मानव प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अनेक विनाषक तत्वों को फैलाकर पर्यावरण को प्रदूषित किया है। अतः पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ होता है मनुष्य के कार्यो द्वारा स्थानीय स्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास होना, जिससे मानव एवं समस्त जीवधारियें के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यदि इसी प्रकार मानव द्वारा अंधाधुन पर्यावरण को क्षति पहुंचाना जारी रहेगा तो एक दिन ऐसा हो जायेगा जब जीव का अस्तित्व भी समाप्त हो जायेगा। पर्यावरण प्रदूषण की चर्चा मुख्यतः वायुमण्डलीय प्रदूषण, जल प्रद्रूषण, ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण, ठोस अपषिष्ट प्रदूषण, ताप प्रदूषण, ई— अपषिष्ट प्रदूषण, प्लास्टिक प्रदूषण, जैव प्रदूषण इत्यादि षीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

4.4 प्रदूषणों के प्रकारः—

4.5 वायु प्रदूषणः—वायु प्रदूषण का सीधा सा अर्थ है वायुमण्डलीय सीमा में उपस्थित गैसों के समायोजन अर्थात निष्चित अनुपात को मानव द्वारा अपनी प्रत्यक्ष या परोक्ष क्रियाओं से परिवर्तित करना। मानव की विभिन्न क्रियाओं द्वारा वायुमण्डल में विषाक्त गैसों का मिल जाना या कार्बन जैसे कणो एवं अन्य कणकीय पदार्थो के मिलने से जो असंतुलन पैदा होता है उसे वायु प्रदूषण कहते है। ऐसा नहीं है कि प्रदूषण केवल मानव द्वारा ही फैलता है। इस प्रकार वायुमण्डल में प्राकृतिक स्रोत तथा मानव जनित स्रोत द्वारा वायु प्रदूषण होता है।

4.6 वायु प्रदूषण के कारकः—

वायु प्रदूषण के प्राकृतिक स्त्रोतों में प्राकृतिक घटनाए, ज्वलामुखी विस्फोटक, वनाग्नि, ज्वालामुखी उदगार, जैविक पदार्थ के सड़ने गलने से निकलने वाली गैसों इत्यादि द्वारा वायु में उपस्थित गैसों की मात्रा एंव अनुपात में परिवर्तन होता है जिससे वायु प्रदूषण होता है।

मानव जनित स्रोतो के अन्तर्गत मानव द्वारा कोयला, लकड़ी, उपले, पेट्रोलियम पदार्थो, प्लास्टिक तथा अन्य पर्यावरणीय कचरों को जलाने से विभिन्न गैसों का उत्सर्जन होता है जो पर्यावरण में उपस्थित वायु के निष्चित मात्रा तथा अनुपात में परिवर्तन लाता है। उपरोक्त पदार्थो के दहन से न केवल गैसे उत्सर्जित होती है बल्कि कणकीय पदार्थ भी उड़कर वायु को दूषित करते है। इस प्रकार गैसीय व कणिकीय वायु प्रदूषण मानव द्वारा उत्पन्न प्रदूषण है। गैसीय वायु प्रदूषण के एजेंट के रूप में ईधन के रूप में खनिज तेल कोयला इत्यादि दहन से कार्बन डाईआक्साईड तथा कार्बन मोनो आक्साइड निकलती है। जबकि जीवष्मों के अपूर्ण दहन से हाइड्रोकार्बन्स, सुपरसोनिक जेट विमानो द्वारा नाईट्रोजन के आक्साइड, नाईट्रस आक्साइड, नाईट्रिक आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, नाईट्रोजन ट्राईआक्साइड, धान के खेतो तथा पषु जुगाली से उत्सर्जित मीथेन गैस इत्यादि गैसीय वायु प्रदूषक एजेंट के रूप में पर्यावरण में मौजूद है।

कणिकीय वायु प्रदूषण एजेंट के रूप में ऐरोसोल, कालिख तथा धुम्र, धूलि, फ्लाई ऐष, निलम्बित कणिकीय पदार्थ (धात्विक, अधात्विक तथा जैविक) इत्यादि कणिकीय वायु प्रदूषण एंजेट है।

4.7 जल प्रदूषणः—

जल इस जीव मण्डल में जीवन का आधार है। अर्थात यह वायुमण्डल के सार्वधिक महत्वपूर्ण यौगिकों में एक है। क्योकि यह पोषक तत्वों के संचरण तथा चक्रण से लेकर विभिन्न आर्थिक क्रियाओं में

भी योगदान देता है। जैसे– बिजली निर्माण, यातायात (नौकायान समुद्री परिवहन), सिंचाई, साफ–सफाई इत्यादि के कार्यो में भी योगदान देता है। तथा जल का प्रदूषित होना आर्थात मानव आहार श्रृंखला के प्रदूषण के साथ–साथ विभिन्न क्रियाओं में अवरोध होना है। पीने योग्य जल केवल 1 प्रतिषत ही है जिसका प्रयोग मानव भूमिगत जल, सरिता (नदी, झील, झरनों, मृदा में स्थित जल इत्यादि से प्राप्त करता है। परन्तु मानव द्वारा औद्योगिकीरण, नगरीकरण, रसायनिक प्रयोगों से प्रदूषित किया जा रहा है।

इस प्रकार ''विभिन्न स्रोतो एवं भण्डारों के जल भौतिक रसायनिक तथा विषेषताओं में प्राकृतिक तथा मानव–जनित प्रक्रियाओं एवं कारको से उस सीमा तक अवनयन एंव गिरावट को जल– प्रदूषण कहते है। इस तरह प्रदूषित जल मनुष्य, समुदाय, जन्तु एंव वाह्य समुदायों के लिये अनुपयुक्त तथा हानिकारक हो जाता है।''

4.8 जल प्रदूषण के स्त्रोत या ऐंजेंटः–जल प्रदूषण ऐंजेटो को उनकी विगलनता, भौतिक व रसायनिक गुणों तथा प्रदूषक स्रोतो के आधार पर बाटा जाता है। इन आधारों पर जल प्रदूषकों को निम्न प्रकार बाटा जा सकता है।

1. **स्रोतों के आधार परः–** स्रोत अर्थात उत्पति के आधार पर जल प्रदूषकों को औद्योगिक प्रदूषक, कृषि जोत प्रदूषक, तथा पाकृतिक प्रदूषक आदि के रूप में बाँटा जा सकता है। इनके अन्तर्गत औद्योगिक अपषिष्ट जल, रसायनिक प्रदूषक जैसे कार्बोनेट, क्लोराइड, सल्फाइड, नाइट्रसनाइट्रेट, अमोनियम नाइट्रोजन, सीसा, पारा, तांबा, जस्ता, रेडियोएक्टिव अपषिष्ट तथा रासयनिक यौगिक (कार्बनिक) इत्यादि औद्योगिक प्रदूषक एजेटों द्वारा तथा खेतों में प्रयोग उर्बरक, रसायनिक कवकनाषी, षाकनाषी, जीवाणुनाषी तथा पौधों के सड़े–गले भागों इत्यादि प्रयोगो द्वारा, नगरों से निकलने वाले नालों से आने वाले नमक, मनुष्य तथा पषुओं के अपक्षय से उत्पन्न नाईट्रेट तथा फास्फोट आयन द्वारा, प्रकृतिक एजेंटों में ज्वालामुखी, राख, धूल, भूस्खलन, अपरदन तथा समुद्री अन्नमाद में निकलने वाले लरवा इत्यादि प्रदूषकों द्वारा जल को प्रदूषित किया जाता है।

2. गुणों के आधार परः–भौतिक तथा रसायनिक गुणों के आधार पर प्रदूषक एजेंटों को ठोस तथा रसायनों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। जैसे अवसाद, ज्वालामुखी, धूल, राख, ग्रीस, तेल तथा अन्य ठोस पदार्थ है जो जल में मिलकर जल को दूषित करते है। इसी प्रकार क्लोराइड, कार्बोनेट, नाइट्रस सल्फाइड, अमोनियम नाइट्रेट तथा अन्य रसायन यथा कृत्रिम रसायन यौगिक भी जल में धुलकर जल को प्रदूषित करते है।

3. विगलनता के आधार परः–विगलनता का अभिप्रायः वायोडिग्रेडेवल है। अर्थात जो तत्व या जो प्रदूषक ऐंजेंट जीवीय कारको द्वारा (नियजको, सूक्ष्म जीवों) द्वारा विघटित कर लिये जाते है अर्थात पुनः उनके द्वारा प्रसारित प्रदूषण का न्यूनीकरण कर लिया जाता है। जैसे पौधों तथा जन्तुओं के अवषेष एक समय के बाद वातावरण मं समाप्त हो जाते है। अर्थात विगलित हो जाते है। ऐसे तत्व जल प्रदूषण में कम योगदान देते है। तथा जिनका षोषण या अपक्षय या विगलन सूक्ष्म जीवों तथा वियोजनों द्वारा नहीं किया जाता है ये जल में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहते है। जैसे– रसायनिक तथा विषाक्त ठोस प्लास्टिक इत्यादि को अजैविक प्रदूषण/ऐजेंट के रूप में जाना जाता है।

4.9 जल प्रदूषण के प्रकारः–जल प्रदूषण को भिन्न–भिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है जो निम्न प्रकार हैः–

1. जल भण्डारण के आधार परः–जब जल भण्डारण के उपर विचार करेगें तो यह देखने में मिलता है कि हमारे पर्यावरण में जल स्त्रोतों के रूप में सर्वाधिक, जल समुद्री जल, भूमिगत जल, धरातलीय जल झील तथा झरनों से जल प्राप्त होते है धरातलीय जल, झील तथा झरनों से जल प्राप्त होते है धरातलीय जल, के अन्तर्गत प्रवाही जल जिसमें नदी, नाला, नहर इत्यादि को सम्मलित किया जाता है साथ ही देखा जाये तो समुद्र का जल भी धरातलीय जल के अन्तर्गत आता है। इन जल स्रोतो के अतिरिक्त वर्षा से प्राप्त

जल, हिम द्रवण इत्यादि भी जल प्रदूषण के प्रकार में सम्मलित होता है। इनको प्रदूषित करने में सभी मानव जनित क्रियाए सम्मलित होती है। पर्यावरण प्रयोगषाला लखनऊ द्वारा जल की गुणवत्ता के आधार पर कुल पांच वर्गों में बाटा है।

1.(पीने के लिये उपयुक्त)

2.(स्नान, तैराकी और मनोरंजन) के लिए उपयुक्त

3. (पारम्परिक उपचार के बाद पीने योग्य)

4.(जीव जन्तुओं मछलियों के लिए उपयुक्त जैसे गंगा जमुना नदियों का जल)

5. (सिचांई औद्योगिक षीतलन तथा अपषिष्ट को समाप्त करने या निपटान हेतु प्रयोग किये जा सकते है)

झील प्रदूषण, सागरीय जल प्रदूषण, भूमिगत जल प्रदूषण इत्यादि जल भण्डारण वाले प्रदूषण के स्रोत है। स्रोत के आधार पर जल प्रदूषण – घरेलू अपषिष्ट, सीवेज का जल, औद्योगिक अपषिष्ट का जल, कृषि अपषिष्ट का जल, तेल अधिप्लाव इत्यादि का भी जल प्रदूषण के प्रकारों के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है।

4.10 मृदा प्रदूषण

जिस प्रकार जल तथा वायु प्रदूषण में प्राकृतिक तथा मानव जनित कारक या स्रोतो के कारण मृदा की प्राकृतिक षक्तियां तथा गुणवत्ता में ह्रास होना मृदा प्रदूषण कहलाता है। मृदा प्रदूषण की वजह से मानव, खाद्य पदार्थ जिनका उत्पादन प्राकृतिक चक्रण के फलस्वरूप होता है, विषेषतः खाद्यान की गुणवत्ता में कमी आयी है।

मृदा प्रदूषण के एजेंट मृदा की गुणवत्ता में कमी या हास होने के लिये निम्नलिखित कारको को जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। जिनमें प्रमुख रूप से तीव्र गति से मृदा–अपरदन मृदा में रसायनिक पदार्थो के मिलने के कारण, मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवो की संख्या में लगातार कमी होना जिससे मृदा में उपस्थित खनिजों का चक्रण प्रभावित होता है। तापमान में अत्यधिक परिवर्तन (चढ़ाव–उतार) मृदा में उपस्थित ह्यूम्स ;में लगातार कमी, मृदा में नमी का असंतुलन, मृदा में विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों का प्रवेष तथा सान्द्रण अम्लीय वर्षा, वनोन्मूलन, भूमि (खेती) पर लगातार बढ़ती जनसंख्या जंगली आग इत्यादि मृदा की जैविक षक्तियों तथा इसकी गुणवत्ता में हास होने के पीछे के प्रमुख कारण है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त प्रदूषक ऐंजेंट मृदा प्रदूषण में सार्वधिक योगदान देते है।

इन ऐंजेंटों को भौतिक वायुजन्य, जैविक स्त्रोत तथा रसायनिक उर्वरक जीवनाषी रसायन नगरीय एवं औद्योगिक स्त्रोतो के अन्तर्गत बाट कर भी अध्ययन किया जा सकता है। उपरोक्त कारक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मिटटी अथवा मृदा के उपजाऊ पन या गुणवत्ता को प्रभावित करते है। जिनमें वर्षा की तीव्रता व मात्रा, हवा का वेग एंव दिषा मिटटी के प्रकार, उपस्थित वनस्पति, सूक्ष्म जीवों, मनुष्यों द्वारा उत्पन्न रोगजनक जीवों पषुओं द्वारा मल–मूत्र त्याग इत्यादि के माध्यम से परित्यक्य रोगाणु तथा जीव इत्यादि जो आहार–श्रृंखला को प्रभावित करते है मृदा प्रदूषण को वढ़ावा देते है।

4.11 ध्वनि प्रदूषणः–ध्वनि का संचरण उनकी उत्पत्ति के केन्द्र के चारो दिषाओं में हवा से होकर (माध्यम) गोलीय रूप में होता है। तथा इनसे या केन्द्र से तरंगो की गति ध्वनि के उत्पत्ति केन्द्र से बढ़ती दूरी के साथ घटती जाती है। परन्तु यदि इसके माध्यम से यदि इसकी तीव्रता से अधिक तीव्र ध्वनि को गुजारा जाये तो इसके मार्ग में बाधा उत्पन्न होती है। जिससे इसकी तीव्रता तथा तरंग दैर्ध्य दोनों प्रभावित होती है फलस्वरूप व्यक्ति की क्षमता प्रभावित होती है।

इस प्रकार उच्च तीव्रता वाली ध्वनि अर्थात अवांछित षोर के कारण मानव में उत्पन्न अषान्ति एवं बेचैनी की दषा को ध्वनि प्रदूषण की संज्ञा देते है।

अतः तेज आवाज ध्वनि प्रदूषण का प्रमुख कारक है।आवाज की उत्पत्ति मानव एवं प्राकृतिक दोनो स्रोतों से हो सकती है। यदि मानव के द्वारा निर्मित कोई औद्यौगिक इकाई या मानव निर्मित कोई यंत्र या मानव के किसी कार्यों द्वारा तीव्र ध्वनि का उत्सर्जन होता है तो वह ध्वनि प्रदूषण का कारक है जिसे कृत्रिम ध्वनि प्रदूषण कहा जाता है। सामान्यतः मनुष्य द्वारा उत्पन्न कृत्रिम ध्वनि का ही ध्वनि प्रदूषण के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। इस तरह ध्वनि प्रदूषण की तीव्रता तथा विस्तार में मानव, बढ़ता नगरीकरण और औद्यौगीकरण के फलस्वरूप होने वाला ध्वनि प्रदूषण का योगदान सार्वधिक होता है।

ध्वनि तथा षोरः—ध्वनि एक विषिष्ट प्रकार का दाब तरंग होती है। जिसका प्रायः वायु के माध्यम से संचरण होता है। यद्यपि ध्वनि तरंग का ठोस तथा द्रव (तरल) में भी संचरण होता है लेकिन इन माध्यमों में तीव्रता अपेक्षाकृत कम हो जाती है। ध्वनि की तीव्रता उच्च ध्वनि या उच्च दाब वाली हो जाती है तो इसे आवंछित आवाज या षोर कहते है। इसके द्वारा मनुष्य अथवा जीवों मे अषान्ति तथा बेचैनी होने लगती है जिससे उनकी सभी क्षमताओं पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और उनकी आर्थिक समाजिक हानि होती है।

4.12 ध्वनि प्रदूषण के प्रकारः—अध्ययन क्षेत्र के आधार पर ग्रामीण ध्वनि प्रदूषण, उपनगरीय ध्वनि प्रदूषण नगरीय ध्वनि प्रदूषण औद्योगिक ध्वनि प्रदूषण तथा संसाधन खानों के ध्वनि प्रदूषण के रूप में बाटा जा सकता है। जब हम ध्वनि के आधार पर ध्वनि प्रदूषण को बांटते है तो पाते है कि प्राकृतिक ध्वनि प्रदूषण तथा कृत्रिम ध्वनि प्रदूषण (मानव जीव—जन्तु अन्य ध्वनि) इत्यादि के रूप में बांट कर अध्ययन किया जा रहा है।

4.13 ध्वनि प्रदूषण के ऐंजेंट या कारकः—

1. घरेलू कारकः—इसके अन्तर्गत तेज आवाज में बजने वाले डी0जे0, टी0वी0, कूलर, फैन, वाषिंग मषीन मिक्सर मोबाइल इत्यादि के कारण उत्पन्न होने वाले षोर भी ध्वनि प्रदूषण का कारक है।

2. व्यवसायिक तथा औद्योगिक कारणः—इसके अन्तर्गत व्यवसायिक अथवा औद्योगिक कारखानों इत्यादि से निकलने वाला तेज आवाज षोर, यथा प्रिटिंग प्रेस, हैमर, बुल्डोजर, ट्रकों की आवाज तेजी से भवनों का गिराया जाना इत्यादि से होने वाले षोर के कारण भी ध्वनि प्रदूषण होता है।

3. परिवहनः—ट्रैफिक वाहन, एयर क्राफ्ट, ट्रेन, मोटर कार इत्यादि परिवहन साधनों से निकलने वाली तेज आवाज विषेषकर सीटी इत्यादि को ध्वनि प्रदूषण का कारक है।

4. समाजिक व धार्मिक स्थलो पर लगे पांडालो, बाजारों, पार्टी डिस्को इत्यादि से होने वाले षोर।

5. बादलों की गरज, तूफान, आधी, सुनामी, वर्षा तथा ओलावृष्टि के कारण भी ध्वनि प्रदूषण होता है।

4.14 अन्य प्रदूषणः—इन प्रदूषण के अतिरिक्त रेडियोधर्मी विद्युत चुम्बकीय विकिरण ताप प्रदूषण ठोस अपषिष्ट प्रदूषण ई—अपषिष्ट प्रदूषण, प्लास्टिक प्रदूषण, जैव प्रदूषण इत्यादि भी प्रदूषण है जिनका प्रभाव मानव के साथ—साथ पूरे पर्यावरण पर पड़ता है।

4.15 प्रष्नोत्तरीः—

1.निम्नलिखित में कौन ध्वनि प्रदूषण का कारक नही है।

क. तेज आवाज

ख. षोर

ग. पानी की समान्य लहरे

घ. एरोप्लेन की आवाज

2. निम्नलिखित में मृदा प्रदूषण के कारको को पहचानिये।

क. रसायनिक खादों का प्रयोग

ख. तेज वर्षा का होना

ग. लगातार पेड़ों की कटाई

घ. उपरोक्त सभी

3. निम्नलिखित में से कौन प्राकृतिक प्रदूषक एजेंट है।
क. षहरों से निकलने वाला नाला
ख. औद्योगिक अपषिष्ट
ग. जानवरों तथा वनस्पतियों के मृत प्राय अपषिष्ट
घ. इनमें से कोई नही

4. विगलनता के आधार पर प्रदूषकों को कितने उपभागों में विभाजित किया जा सकता है।
क. 2
ख. 3
ग. 4
घ. 5

सारांष

पर्यावरण प्रदूषण का अर्थ होता है मनुष्य के कार्यों द्वारा स्थानीय स्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता में ह्रास होना, जिससे मानव एवं समस्त जीवधारियें के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिसका सीधा सा अर्थ है पर्यावरण प्रदूषण। यदि इसी प्रकार मानव द्वारा अंधाधुन्ध पर्यावरण को क्षति पहुंचाना जारी रहेगा तो एक दिन ऐसा हो जायेगा जब जीव का अस्तित्व भी समाप्त हो जायेगा। पर्यावरण प्रदूषण की चर्चा मुख्यतः वायुमण्डलीय प्रदूषण, जल प्रद्रूषण, ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, विद्युत चुम्बकीय प्रदूषण, ठोस अपषिष्ट प्रदूषण, ताप प्रदूषण, ई– अपषिष्ट प्रदूषण, प्लास्टिक प्रदूषण, जैव प्रदूषण इत्यादि षीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है। आवष्यकता है समाजिक जागरूकता की, प्रदूषक एजेंटों को पहचानने की, ससमय निदान की जिससे यथा संभव प्रदूषण के प्रभाव को कम किया जा सके तथा भविष्य में होने वाले हानिकारक प्रभाव से बचा जा सके।

षब्दावली

प्रदूषण– मानव हस्तक्षेप से उत्पन्न असंतुलन।
पर्यावरण ह्रास– प्राकृतिक संसाधनों का दोहन।
वायु, जल तथा स्थल
अपषिष्ट– प्रयोग के बाद बचा हुआ अवषेष।
संचरण– एक स्थान से दूसरे स्थान या एक तत्व से दूसरे तत्व में जाने की प्रक्रिया
आहार श्रृंखला– भोजन के लिये समस्त जीवधारियों का एक दूसरे पर निर्भरता
विगलनता– जब तत्व प्रकृति अर्थात मिटटी में विघटित हो जाता है।
अवांछित– एक सीमा से अधिक

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, ' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेषन, 2013.

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

झिंगन, एम. एल. रू " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2022

सिन्हा, वी. सी. : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, 1907

Agarwal R- C- : Economics of Development and Planning Lakshmi Narayan Agarwal Agra
Taneja M- L- & Myer R- M- : "Economics of Development and Planning Vishal Publishing Co- Delhi

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1.ग. पानी की समान्य लहरें

2. घ. उपरोक्त सभी

3. ग. जानवरों तथा वनस्पतियों के मृत प्राय अपषिष्ट

4. क. 2

दीर्घ उत्तरीय प्रष्न

1. वायु प्रदूषण के प्रकारों तथा प्रदूषक एजेंटों की व्याख्या किजिए।

2. प्रदूषक एजेंट से क्या आषय है, जल, मृदा तथा वायु प्रदूषण एजेंटों को अपने समाज से उदाहरण लेते हुये समझाइये।

3. प्रदूषण से क्या आषय है, विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों को सउदाहरण समझाइयें।

खण्ड–04

इकाई–05

पर्यावरण क्षरण और प्रभाव

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देष्य
5.3 पर्यावरण क्षरण तथा प्रभाव
5.4 पर्यावरणीय गिरावट के कारण
5.5 समाजिक कारण
जनसंख्या, गरीबी, ष्षहरीकरण
5.6 आर्थिक कारण
5.7 संस्थागत कारण
5.8 भूमि क्षरण
5.9 वायु प्रदूषण
5.10 पर्यावरण क्षरण के प्रभाव
5.11 मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव
5.12 जैव विविधता पर प्रभाव
5.13 ओजोन परत का विनाष
5.14 प्रष्नोत्तरी (वहुविकल्पीय)
5.15 सारांष
5.16 षब्दावली
5.17 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
5.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.19 विस्तृत प्रष्न

5.1 प्रस्तावना

हवा, पानी और मिट्टी सहित संसाधनों की कमी के कारण पर्यावरण की गिरावट को पर्यावरणीय क्षरण जाना जाता है। वन्य जीवन का विनाश और पारिस्थितिक तंत्र की बर्बादी। विश्व कचरा, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण और पर्यावरण प्रदूषण की समस्याओं का सामना कर रहा है। विश्व बैंक के विशेषज्ञों का दावा है कि 1995 और 2010 के बीच भारत ने अपनी पर्यावरणीय समस्याओं को दूर करने और अपने पर्यावरण के स्तर को ऊपर उठाने में दुनिया की सबसे तेज प्रगति की है। हालाँकि भारत को अभी भी समृद्ध अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में पर्यावरणीय गुणवत्ता का आनंद लेने से पहले एक लंबा रास्ता तय करना है। भारत के लिए प्रदूषण एक बड़ी संभावना और चुनौती बना हुआ है। बीमारियों स्वास्थ्य समस्याओं और भारत की जीवन शैली पर दीर्घकालीन प्रभाव के लिए मुख्य योगदानकर्ताओं में से एक पर्यावरणीय क्षरण है।

5.2 उददेष्य

इस इकाई को पढने के बाद छात्र निम्नलिखित से परिचय हो सकेगें।

1. पर्यावरण क्षरण के बारे में बता सकेगे।
2. पर्यावरण क्षरण के प्रभावों को जान सकेगें।
3. पर्यावरणीय गिरावट के समाजिक आर्थिक तथा अन्य पहलुओं पर चर्चा कर सकेगें।

4. पर्यावरण संरक्षण की रूचि उत्पन्न हो सकेगी।

5.3 पर्यावरणीय क्षरण और प्रभाव

किसी व्यक्ति का भौतिक वातावरण जिसका वह एक हिस्सा हैं और जिस पर वह अपनी दैनिक गतिविधियों के लिए निर्भर करता हैं, जिसमें शारीरिक कार्य, उत्पादन और उपभोग शामिल हैं को उनके पर्यावरण के रूप में संदर्भित किया जाता है। उसके भौतिक वातावरण में, प्राकृतिक संसाधनों में हवा, पानी, और भूमि के साथ–साथ पौधे, जानवर और पारिस्थितिक तंत्र शामिल हैं। भौतिक पर्यावरण और मानव कल्याण के बीच का संबंध जटिल, बहुआयामी है। इसमें गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों घटक हैं। विकास का परिणाम और गति, प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता और उपयोग से प्रभावित होती है। एक शहरी समाज का वातावरण काफी हद तक मनुष्यों द्वारा बनाया गया है। हालाँकि फिर भी कृत्रिम परिवेश (सड़क भवन) उपकरण और कपड़े बनाने के लिए मानव प्रयास और प्राकृतिक संसाधनों दोनों का उपयोग किया जाता है। विशिष्ट रूप से, परिवेशी पर्यावरण वह सब है जो पर्यावरण शब्द से अभिप्राय है। इस दृष्टिकोण के अनुसार घर के अंदर के वातावरण (जैसे घर या कार्यस्थल) को व्यक्तिगत रूप से संभाला जाना चाहिए। सार्वजनिक स्वास्थ्य प्राधिकरण, आमतौर पर आंतरिक वातावरण की निगरानी करते हैं। जगह को गर्म करना, खाना बनाना और प्रकाश व्यवस्था स्वास्थ्य के लिए मुख्य खतरे हैं। निम्न–श्रेणी के ईंधन और अपर्याप्त वेंटिलेशन अक्सर मुख्य मुद्दे होते हैं। नमी, प्रकाश, घुटन, निर्माण सामग्री से विषाक्त यौगिकों, लाख और पेंट की समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। पीने के पानी सीवेज और कचरे के मुद्दे अक्सर घर के मुद्दों की तुलना में अपर्याप्त बुनियादी ढांचे के कारण होते हैं। मानव बस्तियों और शहरी पर्यावरण पर, सांख्यिकी को इनडोर पर्यावरण (सीओईएस 2013) पर, आंकड़ों के सबसेट के रूप में माना जा सकता है।

आर्थिक विकास और मानव उत्कर्ष के लिए दुनिया और इसके प्राकृतिक संसाधनों का स्थायी रूप से प्रबंधन किया जाना चाहिए। जब ठीक से प्रबंधन किया जाता है, तो अटूट प्राकृतिक संसाधन जैसे वाटरशेड, लाभदायक परिदृश्य और समुद्री दृश्य समर्थित समग्र विकास, खाद्य सुरक्षा और गरीबी में कमी के लिए आधार प्रदान कर सकते हैं। कई लोगों के पास प्राकृतिक संसाधनों के लिए नौकरियां हैं जो काफी कर राजस्व भी उत्पन्न करते हैं। हवा पानी और मिट्टी जिस पर हम सभी निर्भर हैं, ग्रह के चारों ओर जैविक समुदायों द्वारा प्रबंधित की जाती हैं। वे चरम मौसम की घटनाओं और जलवायु परिवर्तन के खिलाफ एक अद्वितीय और उपयोगी सुरक्षा प्रदान करते हैं। कृषि व्यवसाय, रेंजर सेवाओं मत्स्य पालन और पर्यटन सहित वित्तीय क्षेत्रों के दीर्घकालिक विकास के लिए स्वस्थ जैविक प्रणालियां आवश्यक हैं। वे वर्तमान में नौकरियों को एक विशाल विविधता प्रदान करते हैं।

विकासशील देशों में जंगल, झीलें, धाराएँ और समुद्र लोगों के आहार, ईंधन और आजीविका का एक महत्वपूर्ण हिस्सा प्रदान करते हैं। आपातकाल के समय में, एक महत्वपूर्ण सुरक्षा जाल के रूप में कार्य करते हैं विशेष रूप से दुनिया के 78 प्रतिशत अति गरीब लोगों के लिए जो इन क्षेत्रों में रहते हैं। हालांकि इन आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों की कार्यप्रणाली और शुद्धता को अधिक से अधिक कम करके आंका जा रहा है। ग्रह के 60 से 70 प्रतिशत में पारिस्थितिक तंत्र ठीक होने की तुलना में अधिक तेजी से बिगड़ रहे हैं।

भारत में पर्यावरण संबंधी कई समस्याएं हैं। भारत कचरा जल प्रदूषण वायु प्रदूषण आदि समस्याओं का सामना करता है। 1947 से 1995 तक की अवधि में हालत और बिगड़ती गई। विश्व बैंक के पेशेवरों द्वारा सूचना एकत्र करने और स्थिति मूल्यांकन अध्ययनों के अनुसार 1995 से 2010 के बीच प्राकृतिक समस्याओं को दूर करने और पारिस्थितिक गुणवत्ता में सुधार करने में भारतीय प्रगति ग्रह पर सबसे तेज थी। हालाँकि भारत को अभी भी समृद्ध अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में पर्यावरणीय गुणवत्ता का आनंद लेने से पहले एक लंबा रास्ता तय करना है। भारत के लिए प्रदूषण एक बड़ी संभावना और चुनौती बना हुआ है।

बीमारी, स्वास्थ्य समस्याओं और भारत की जीवन शैली पर दीर्घकालीन प्रभाव के लिए मुख्य योगदानकर्ताओं में से एक पर्यावरण है।

5.4 पर्यावरणीय गिरावट के कारण

पर्यावरण क्षरण के मुख्य कारण आधुनिक शहरीकरण, औद्योगीकरण, अधिक जनसंख्या और वनों की कटाई हैं। पर्यावरण प्रदूषण से तात्पर्य प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा में गिरावट से है। विभिन्न प्रकार की मानवीय गतिविधियाँ पर्यावरण क्षरण के प्रमुख कारण हैं। इससे स्थिति में बदलाव आया है जो सभी जीवित चीजों के लिए हानिकारक है। वाहनों और प्रसंस्करण संयंत्रों से निकलने वाला धुआं जहरीले धुएं के स्तर को बढ़ाता है, जिसे हर जगह महसूस किया जा सकता है। कचरा, वाहन और व्यवसायों से निकलने वाला धुआँ प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं। स्वतःस्फूर्त शहरीकरण और औद्योगीकरण ने जल, वायु और ध्वनि प्रदूषण को बढ़ावा दिया है। शहरीकरण और औद्योगीकरण जल प्रदूषण को बढ़ाने में योगदान करते हैं। इसी तरह वाहनों और उपक्रमों जैसे क्लोरोफ्लोरोकार्बन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड और अन्य स्वच्छ कण गंदी हवा से निकलने वाला धुआं भी। कुछ पारिस्थितिक मुद्दों के आधार पर आवश्यकता अभी भी एक मुद्दा बनी हुई है।

5.5 सामाजिक परिस्थिति

❖ जनसंख्या

देश की तीव्र जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास शहरीकरण और औद्योगीकरण का अनियंत्रित विकास, कृषि का विस्तार और गहनता और प्राकृतिक आवासों का विनाश पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहा है। भारत में पर्यावरणीय गिरावट के प्रमुख कारणों में से एक को प्राकृतिक संसाधनों और परिस्थितियों के प्रति शत्रुतापूर्ण व्यवहार जनसंख्या के तेजी से विकास के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि और पारिस्थितिक गिरावट को प्रकृति को नुकसान पहुँचाए बिना स्थायी सुधार के रूप में परखा जाता है। आदर्श संपत्तियों की उपस्थिति या अनुपस्थिति आर्थिक विकास की प्रक्रिया को उत्तेजित या बाधित कर सकती है। जनसंख्या विकास का एक महत्वपूर्ण स्रोत है लेकिन समर्थन प्रणालियों की सीमा से अधिक होना पर्यावरण के क्षरण का एक प्रमुख कारण है। सुधार कार्यक्रम चाहे कितना रचनात्मक हो वांछित परिणाम देने की संभावना नहीं है, जब तक कि बढ़ती आबादी और मौजूदा भावनात्मक रूप से सहायक नेटवर्क के बीच संबंध को हल नहीं किया जा सकता है। पर्यावरण पर जनसंख्या का दबाव पर्यावरणीय दबावों जैसे जैव विविधता हानि, वायु और जल प्रदूषण, और कृषि योग्य भूमि पर बढ़ती मांग से जुड़ा हुआ है। जनसंख्या मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग और कचरे के निर्माण के माध्यम से पर्यावरण को प्रभावित करती है।

बेहतर स्वास्थ्य स्थितियों और बीमारी नियंत्रण ने जनसंख्या वृद्धि में योगदान दिया है। 1951 में 117 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से 2001 में 312 व्यक्ति और फिर 2011 में 382 व्यक्ति तक जनसंख्या घनत्व में वृद्धि हुई है। समस्याग्रस्त ग्रामीण–से–शहरी प्रवासन में योगदान करने के लिए कई पुल और पुश तत्वों की परिकल्पना की गई है। यह प्रति व्यक्ति घटती संपत्ति, पहुंच और ग्रामीण क्षेत्रों में सिकुड़ते वित्तीय अवसरों और शहरी क्षेत्रों में बेहतर वित्तीय अवसरों स्वास्थ्य सुविधाओं और शैक्षणिक संस्थानों के परिणामस्वरूप हो सकता है। जो मानव को उच्च जीवन स्तर के लिए अवसर प्रदान करते हैं। पूंजी विकास जो देश के बहिर्वाह के लिए मूलभूत कारक हो सकते हैं। दुनिया की केवल 2.4: भूमि पर भारत दुनिया के 17/ निवासियों का घर है।

गरीबी

गरीबी को पर्यावरणीय गिरावट में योगदान और परिणाम के रूप में देखा जाता है। गरीबी और पर्यावरण के बीच जटिल संबंध उच्चतम क्रम का आश्चर्य है। इस तथ्य के कारण कि गरीब लोग अमीर लोगों की तुलना में सार्वजनिक संपत्ति पर अधिक निर्भर करते हैं, और क्योंकि उनके पास अन्य प्रकार की

संपत्तियों तक पहुंचने का कोई वास्तविक मौका नहीं है, असंतुलन से अस्थिर विकास हो सकता है। जैसे ही 21वीं सदी शुरू होती है, एक बढ़ती हुई जनसंख्या और प्रति व्यक्ति खपत दर सामान्य संसाधनों को कम कर रही है और ग्रह को दूषित कर रही है। भारत में पर्यावरणीय नुकसान और गरीबी के बीच संबंधों की जांच करते समय जनसंख्या वृद्धि पर विचार करना महत्वपूर्ण है। जैसे–जैसे जनसंख्या बढ़ती है पर्यावरणीय दबाव प्रतिदिन बढ़ता जाता है। प्राकृतिक संसाधन जो आज और भविष्य की पीढ़ियों की आजीविका के लिए आवश्यक हैं, मानव आबादी में तेजी से वृद्धि, गंभीर गरीबी और उपयोग के बढ़ते स्तरों के कारण समाप्त हो रहे हैं। गरीबी जनसंख्या वृद्धि के परिणामों में से एक है और जीवन शैली, खाना पकाने या निर्वाह के लिए ईंधन की आवश्यकता के माध्यम से पर्यावरणीय गिरावट में एक प्रमुख भूमिका निभाती है। संपत्ति का असमान वितरण और संकीर्ण रूप से खुलने वाले दरवाजे गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए एक धक्का और तीव्र कारक बनाते हैं। जिससे शहरी क्षेत्रों में अधिक जनसंख्या और एक प्रकार का नियंत्रित राज्य होता है जिससे शहरी क्षेत्रों में शहरी झुग्गी–झोपड़ियों का निर्माण होता है। इसके अलावा खराब स्थिति दरिद्रता की प्रक्रिया को तेज कर सकती है क्योंकि गरीब लोग प्राकृतिक संसाधनों पर सीधे निर्भर होते हैं।

शहरीकरण

आजादी के बाद भारत का शहरीकरण तेजी से शुरू हुआ क्योंकि इसने मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया। जिसने निजी क्षेत्र के विकास को बढ़ावा दिया। भारत में शहरीकरण तेजी से हो रहा है। 1901 के आंकड़ों के अनुसार भारत की शहरी आबादी 11.4% थी। यह संख्या 2001 की जनगणना के अनुसार 28. 53% बढ़ी और 2011 के अनुमान में 30% घटकर 31.16% हो गई। विश्व जनसंख्या की स्थिति पर 2007 की संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार 2030 तक देश की 40.76ः जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में रहनी चाहिए। विश्व बैंक के अनुसार चीन, इंडोनेशिया, नाइजीरिया और संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ भारत 2050 तक दुनिया की सबसे बड़ी शहरी जनसंख्या वृद्धि का नेतृत्व करेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में सवैतनिक रोजगार के अवसरों की कमी और पर्यावरणीय तनाव के कारण गरीब परिवारों का शहरों की ओर पलायन बढ़ जाता है। इन शहरी क्षेत्रों के तेजी से और सहज विस्तार ने शहरी क्षय को जन्म दिया है। यह आवास, परिवहन, दूरसंचार, शिक्षा, जल आपूर्ति और स्वच्छता और मनोरंजन सुविधाओं जैसी बुनियादी सुविधाओं की सेवाओं की मांग और आपूर्ति के बीच की खाई को चौड़ा करता है। जिससे शहरी क्षेत्रों में मूल्यवान पारिस्थितिक संपत्ति का आधार कम हो जाता है। परिणाम हवा और पानी के क्षरण, अपशिष्ट युग, झुग्गी विस्तार, और प्रतिकूल भूमि उपयोग परिवर्तन के पैटर्न विकसित हो रहे हैं जो सभी शहरी गरीबी में योगदान करते हैं।

5.6 आर्थिक कारक

पर्यावरणीय गिरावट बड़े पैमाने पर बाजार की विफलताओं का परिणाम है। पर्यावरणीय वस्तुओं और सेवाओं के लिए गैर–मौजूद या बेकार बाजार इस अनूठे मामले में पर्यावरणीय क्षरण एक उत्पाद या उत्पादन बाह्यता का एक विशिष्ट उदाहरण है। जो व्यक्तिगत और सामाजिक लागतों लाभों की एक विलक्षणता के रूप में प्रकट होता है। ऊपर वर्णित संपत्ति अधिकारों की कमी बाजार में इस हताशा के कारणों में से एक हो सकती है। दूसरी ओर मूल्यवान निरीक्षणों और दानों के कारण होने वाली विकृतियाँ पर्यावरणीय लक्ष्यों की प्राप्ति को रोक सकती हैं। आर्थिक विकास के स्तर और वैधता ने भी पर्यावरणीय समस्याओं की प्रकृति को प्रभावित किया। भारत के विकास लक्ष्य आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण के लिए नीतियों और कार्यक्रमों के प्रचार पर जोर देना जारी रखते हैं। औद्योगिक नवाचार, जिसने अधिकांश उद्यमों को अत्यधिक केंद्रित संपत्ति और जीवन शक्ति का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया, सामान्य संपत्ति (तेल उत्पाद, खनिज, पेड़) जल, वायु और भूमि प्रदूषण की स्थिति पर बहुत दबाव डाला। सिंक खतरे और विशेष प्रतिध्वनि फ्रेम की वृद्धि है। पेट्रोलियम उत्पादों के उच्च स्तर के कारण जो आधुनिक

जीवन के प्रमुख स्रोत हैं और कुछ वायु–प्रदूषणकारी उद्योग जैसे लोहा और इस्पात, खाद और दूरसंचार विकास, यांत्रिक प्रदूषकों ने आम तौर पर वायु प्रदूषण के उच्च स्तर में योगदान दिया है। रासायन आधारित उद्योगों के विस्तार के परिणामस्वरूप बड़ी मात्रा में औद्योगिक और खतरनाक अपशिष्ट उत्पन्न हुए हैं, जो गंभीर पर्यावरणीय परिणामों के साथ अपशिष्ट प्रबंधन चुनौतियों को बढ़ा देते हैं। यातायात अभ्यासों का ग्रह पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। वायु प्रदूषण, सड़क यातायात, शोर और समुद्र में शिपिंग से तेल रिसाव शामिल है। सिस्टम और प्रबंधन के मामले में भारत के शिपिंग स्टॉक का प्रभावशाली विस्तार हुआ है। इसलिए सड़क यातायात दिल्ली जैसे शहरी क्षेत्रों में वायु प्रदूषण का एक बड़ा स्थानांतरण है। बंदरगाहों और बंदरगाहों का विस्तार मुख्य रूप से संवेदनशील, पानी के नीचे की पारिस्थितिक संरचनाओं को प्रभावित करता है। उनका विकास जल विज्ञान, सतही जल की गुणवत्ता, मत्स्य पालन प्रवाल भित्तियों और मैंग्रोव को अलग–अलग डिग्री तक प्रभावित करता है। कृषि विकास का प्रत्यक्ष पर्यावरणीय प्रभाव कृषि गतिविधियों का परिणाम है, जो मिट्टी के कटाव और पोषक तत्वों के नुकसान में योगदान करते हैं। हरित क्रांति का प्रसार भूमि और जल संसाधनों के दुरुपयोग के साथ हुआ और उर्वरकों और कीटनाशकों के उपयोग ने कई पुनरावृत्तियों को बढ़ा दिया। भूमि क्षरण का एक प्रमुख कारण झूम खेती है। कीटनाशकों और उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग के परिणामस्वरूप निक्षालन, जल निकाय प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है। गहन कृषि और सिंचाई भूमि क्षरण विशेष रूप से लवणता क्षारीयता और बाढ़ में योगदान करती है (आर्थिक समीक्षा 1997–98)।

5.7 संस्थागत कारक

सरकार का पर्यावरण और वन मंत्रालय (एमईएफ) पर्यावरण की सुरक्षा संरक्षण और विकास के लिए जिम्मेदार है। शिक्षा मंत्रालय विभिन्न विभागों, राज्य सरकारों प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों और विभिन्न तार्किक और व्यावसायिक संगठनों, विश्वविद्यालयों, गैर सरकारी संगठनों आदि के साथ मिलकर काम करता है। पर्यावरण संरक्षण (संरक्षण) अधिनियम 1986 एक प्रमुख पर्यावरण प्रबंधन कानून है। इस क्षेत्र के अन्य महत्वपूर्ण कानूनों में वन (संरक्षण) अधिनियम 1980 और वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम 1972 शामिल हैं। वर्तमान ढांचे का नुकसान प्राकृतिक आधारों को केंद्रीय और प्रभावशाली दोनों तरह से लागू करने की संभावना है। परियोजना की शुरूआत योजना चरण में पर्यावरणीय मुद्दों के एकीकरण के संबंध में विभिन्न मंत्रालयों एजेंसियों के बीच कोई प्रभावी समन्वय नहीं है। वर्तमान राजनीति भी विभिन्न नीतिगत शक्तियों वाली कई सरकारी एजेंसियों में विभाजित है। प्रशिक्षित जनशक्ति की कमी और बड़े डेटाबेस कई गतिविधियों में देरी करते हैं। अधिकांश राष्ट्रीय संगठनों में आमतौर पर विशिष्ट कर्मचारियों और संसाधनों की कमी होती है। हालांकि पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (ईआईए) अध्ययनों की समग्र गुणवत्ता और ईआईए प्रक्रिया के प्रभावी कार्यान्वयन में पिछले कुछ वर्षों में सुधार हुआ है। ईआईए को प्रासंगिक तकनीकी कर्मियों के साथ प्रमुख विशेषज्ञों और कर्मचारियों के प्रयासों जैसे संस्थागत सुदृढ़ीकरण उपायों की आवश्यकता है। प्रक्रिया अधिक कुशल है। पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास के लिए एक उपकरण है।

5.8 भूमि क्षरण

भूमि क्षरण भूमि का परिवर्तन या गड़बड़ी है जिसे अवांछनीय माना जाता है। भूमि का कटाव मानव निर्मित और प्राकृतिक कारणों जैसे बाढ़ और जंगल की आग दोनों के कारण हो सकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि विश्व की लगभग 40% कृषि भूमि गंभीर रूप से निम्नीकृत है। भूमि क्षरण के मुख्य कारण जलवायु परिवर्तन, भूमि क्षरण और वनों की कटाई, खराब कृषि पद्धतियों के कारण मिट्टी के पोषक तत्वों की कमी अतिवृष्टि और अतिचारण हैं। जल अपरदन भारत में भूमि निम्नीकरण का एक प्रमुख कारण है। जनसंख्या वृद्धि और परिणामी भोजन, ऊर्जा और आवास की मांग ने भूमि उपयोग प्रथाओं को महत्वपूर्ण रूप से बदल दिया है। भारत के पर्यावरण को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचाया है। जनसंख्या वृद्धि ने वनों और चरागाहों की कीमत पर भूमि समेकन पर बहुत दबाव डाला है। क्योंकि भोजन की जनसंख्या की मांग

में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। क्षैतिज भूमि विस्तार इसलिए कम व्यापक है और मुख्य रूप से कृषि में तकनीकी विकास अर्थात् उन्नतशील बीज, उर्वरक, कीटनाशक शाकनाशी और कृषि उपकरण द्वारा प्रदान किए गए ऊर्ध्वाधर सुधारों पर निर्भर करता है। इन सभी प्रथाओं से पर्यावरण का क्षरण होता है।

5.9 वायु प्रदूषण

भारत में वायु प्रदूषण एक बड़ी समस्या है, और इसका मुख्य कारण ईंधन और बायोमास का जलना, ईंधन प्रदूषण वाहन उत्सर्जन और यातायात जाम है। एशियाई भूरे बादलों में वायु प्रदूषण का भी प्रमुख योगदान है जो मानसून में देरी का कारण बनता है। भारत ईंधन, कृषि अवशेषों और ऊर्जा उद्देश्यों के लिए बायोमास का दुनिया का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। पारंपरिक ईंधन (जलाऊ लकड़ी, फसल अवशेष और खाद) ग्रामीण भारत में घरेलू ऊर्जा उपयोग पर हावी है, जो कुल का लगभग 90% है। शहरी क्षेत्रों में यह पारंपरिक ईंधन कुल का लगभग 24 प्रतिषत प्रतिनिधित्व करता है। जलावन की लकड़ी, कृषि अवशेषों और बायोमास केक के दहन से भारत की इनडोर और आउटडोर हवा में सालाना 165 मिलियन टन से अधिक दहन उत्पाद निकलते हैं। भारत में ये बायोमास होम, स्टोव, ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में प्रमुख योगदानकर्ता हैं जो जलवायु परिवर्तन में योगदान करते हैं। भारत कम प्रति व्यक्ति कार्बन उत्सर्जक है। 2016 में IEA ने प्रति व्यक्ति लगभग 1.4 टन उत्सर्जन का अनुमान लगाया था जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में यह 15. 52 टन प्रति व्यक्ति और वैश्विक औसत 5.3 टन प्रति व्यक्ति था। हालाँकि चीन (10.43 प्रति वर्ष) और संयुक्त राज्य अमेरिका (5.02 टन प्रति वर्ष) के बाद भारत 2016 में 2.5 टन प्रति वर्ष CO_2 का तीसरा सबसे बड़ा उत्सर्जक था। दुनिया की 17 प्रतिषत आबादी के साथ भारत मानव निर्मित CO_2 उत्सर्जन का लगभग 7.09 प्रतिषत के लिए जिम्मेदार है जो चीन की हिस्सेदारी 29.15 प्रतिषत की तुलना में काफी कम है।

5.10 पर्यावरण क्षरण के प्रभाव

पर्यावरण क्षरण के बहुत नकारात्मक परिणाम होते हैं। इन प्रभावों को निम्नानुसार सूचीबद्ध किया जा सकता है।

5.11 मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

पर्यावरणीय गिरावट का मानव और जनसंख्या स्वास्थ्य पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। पर्यावरणीय गिरावट के कारण मानव स्वास्थ्य खतरे में पड़ सकता है। जहरीले वायु प्रदूषकों के संपर्क में आने वाले क्षेत्रों में निमोनिया और अस्थमा जैसी श्वसन संबंधी समस्याएं हो सकती हैं। माना जाता है कि वायु प्रदूषण के नकारात्मक प्रभावों के परिणामस्वरूप लाखों लोगों की मौत हुई है। वायु प्रदूषण, भारतीय शहर दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों में से हैं। बड़े शहरों में हवा बहुत प्रदूषित है, और प्रदूषक सांद्रता विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित सुरक्षा मानकों से अधिक है। दिल्ली में पार्टिकुलेट मैटर का स्तर विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) द्वारा अनुशंसित स्तर से कई गुना अधिक है। पिछले एक दशक में भारत में शहरी वायु प्रदूषण में वृद्धि खतरनाक रही है। सबसे महत्वपूर्ण वायु प्रदूषकों में पार्टिकुलेट मैटर, नाइट्रोजन ऑक्साइड, कार्बन मोनोऑक्साइड, लेड और सल्फर डाइऑक्साइड हैं। शहरों में बिगड़ती वायु गुणवत्ता के लिए जिम्मेदार मुख्य कारक हैं। औद्योगीकरण में वृद्धि और वाहनों से होने वाला प्रदूषण औद्योगिक उत्सर्जन वाहन उत्सर्जन और जीवाश्म ईंधन का जलना। ग्रामीण क्षेत्रों में पशु अपशिष्ट और उर्वरकों से नाइट्रेट मिट्टी को दूषित करते हैं और वाहनों के धुएं से निकलने वाले सीसे से शहर का पानी और हवा प्रदूषित हो गया है। भारत के सबसे बड़े शहरों मुंबई और दिल्ली में 3 वर्ष से कम आयु के लगभग आधे बच्चों में सीसे के संपर्क में आने के लक्षण दिखाई देते हैं। जो रक्त के प्रति डेसीलीटर में लेड की सांद्रता (माइक्रोग्राम से अधिक) के रूप में परिभाषित होते हैं। कलकत्ता, चेन्नई, दिल्ली और मुंबई के महानगरीय क्षेत्रों में पार्टिकुलेट मैटर (पीएमएस) से होने वाली बीमारियों और समय से पहले होने वाली मौतों की संख्या में 5 वर्षों में काफी वृद्धि हुई है (ब्रैंडसन और होनमोन 1992)। इनडोर वायु प्रदूषण मानव स्वास्थ्य के लिए और भी बड़ा खतरा पैदा कर सकता है। खाना पकाने और जलाने वाली लकड़ी, पौधों का कचरा

पशु खाद और निम्न गुणवत्ता वाला, कोयला हानिकारक कणों और गैसों से युक्त धुंआ पैदा करता है। अकुशल स्टोव और खराब वेंटिलेशन का उपयोग करके इन ईंधनों को घर के अंदर जलाने से तपेदिक, अन्य गंभीर श्वसन रोग और अंधापन हो सकता है (मिश्रा रदरफोर्ड और स्मिथ 1999)। वास्तव में विश्व बैंक ने विकासशील देशों में शीर्ष चार पर्यावरणीय समस्याओं में से एक के रूप में खतरनाक ईंधन के उपयोग से खाना पकाने और गर्म करने से इनडोर वायु प्रदूषण की पहचान की है।

5.12 जैव विविधता पर प्रभाव

प्रदूषण नियंत्रण, पोषक तत्वों की रिकवरी जल संसाधन संरक्षण और जलवायु स्थिरीकरण के रूप में पारिस्थितिकी तंत्र संतुलन बनाए रखने के लिए जैव विविधता महत्वपूर्ण है। जैव विविधता के नुकसान के प्रमुख कारण वनों की कटाई, ग्लोबल वार्मिंग, अधिक जनसंख्या और प्रदूषण, जैव विविधता के नुकसान के कुछ प्रमुख कारण हैं। वास्तव में मनुष्यों ने मछली पकड़ने और शिकार करने, जैव–भूरासायनिक चक्रों को बदलने और प्रजातियों को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में ले जाने सहित प्रजातियों का सीधे शोषण करके पर्यावरण और क्षेत्रों को मौलिक रूप से बदल दिया है।

5.13 ओजोन परत का विनाश

ओजोन परत पृथ्वी को हानिकारक पराबैंगनी किरणों से बचाने के लिए जिम्मेदार है। ओजोन रिक्तीकरण का मुख्य कारण हाइड्रोक्लोरोफ्लोरोकार्बन (एचसीएफ) का उत्पादन और रिलीज है। इससे संपूर्ण ओजोन परत का लगभग 80% भाग नष्ट हो जाता है। कई अन्य पदार्थ हैं जो ओजोन रिक्तीकरण का कारण बनते हैं जैसे एचसीएफसी (हाइड्रोक्लोरोफ्लोरोकार्बन) और वीओसी (वाष्पशील कार्बनिक यौगिक)। ये पदार्थ वाहनों के निकास, औद्योगिक प्रक्रियाओं के उप–उत्पादों, एरोसोल और रेफ्रिजरेंट में पाए जाते हैं। ये सभी ओजोन–क्षयकारी पदार्थ निचले वायुमंडल में स्थिर रहते हैं लेकिन जब वे समताप मंडल में पहुँचते हैं तो वे पराबैंगनी प्रकाश के संपर्क में आ जाते हैं। यह मुक्त क्लोरीन परमाणुओं के अपघटन और रिहाई का कारण बनता है जो ओजोन गैस के साथ प्रतिक्रिया करते हैं और ओजोन परत को पतला करते हैं। ग्लोबल वार्मिंग पर्यावरण क्षरण का एक और परिणाम है।

5.14 बोध प्रष्न/ अभ्यास के प्रष्न

1. निम्नलिखित में पर्यावरण क्षरण का प्रमुख कारण है

क. आर्थिक विकास

ख. प्राकृतिक संसाधनों का दोहन

ग.तीव्र जनसंख्या वृद्धि

घ. उपरोक्त सभी

2. 1951 में प्रतिवर्ग किलो मीटर जनसंख्या निवाष करती थी

क.117

ख. 312

ग. 382

घ. 100

3. षहरीकरण ने किस प्रकार की समस्या को जन्म दिया है।

क. मांग और पूर्ति के बीच गैप

ख. षहरी क्षेत्रों के मूल्यवान पारिस्थितिकी सम्पत्ति का आधार कम होना

ग. उपरोक्त दोनों

घ. इनमें से कोई नहीं

4. निम्नलिखित में किसका प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर नहीं है।

क. औद्योगिक उत्सर्जन

ख. सौर उर्जा

ग. जीवाष्म ईधन का जलना

घ. कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन

5.15 सारांश

भारत में पर्यावरणीय गिरावट का एक प्रमुख कारण आर्थिक विकास और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक उपयोग से जुड़ी तीव्र जनसंख्या वृद्धि है। भारत में प्रमुख पर्यावरणीय आपदाओं में भूमि क्षरण वनों की कटाई, मिट्टी का क्षरण, निवास स्थान की हानि और जैव विविधता की हानि। आर्थिक विकास और खपत के बदलते पैटर्न ने ऊर्जा की मांग में वृद्धि की है और परिवहन गतिविधियों में वृद्धि की है। पानी की कमी के साथ–साथ वायु, जल और ध्वनि प्रदूषण भारत की पर्यावरणीय समस्याओं पर हावी है। विश्व बैंक के अनुसार 1995 और 2010 के बीच भारत ने पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान करने और पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार करने में सबसे तेज प्रगति की है। हालाँकि भारत को विकसित देशों की तुलना में पर्यावरण की गुणवत्ता के स्तर को प्राप्त करने के लिए एक लंबा रास्ता तय करना है।

5.16 षब्दावली–

प्रदूषण– मानव हस्तक्षेप से उत्पन्न असंतुलन

पर्यावरण ह्रास– प्राकृतिक संसाधनों का दोहन

वायु, जल तथा स्थल

अपषिष्ट– प्रयोग के बाद बचा हुआ अवषेष

संचरण– एक स्थान से दूसरे स्थान या एक तत्व से दूसरे तत्व में जाने की प्रक्रिया

आहार श्रृखला– भोजन के लिये समस्त जीवधारियों का एक दूसरे पर निर्भरता

विगलनता– जब तत्व प्रकृति अर्थात मिटटी में विघटित हो जाता है।

अवाछिंत– एक सीमा से अधिक

5.17 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1. घ. उपरोक्त सभी
2. क.117
3. ग. उपरोक्त दोनों
4. ख. सौर उर्जा

5.18 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, ' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेषन, 2013.

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

झिंगन, एम. एल. रू " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2022

सिन्हा, वी. सी. : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

Agarwal R- C- : Economics of Development and Planning Lakshmi Narayan Agarwal Agra

Taneja M- L- & Myer R- M- : "Economics of Development and Planningß Vishal Publishing Co- Delhi

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

5.19 दीर्घ उत्तरीय प्रष्न

1. पर्यावरण क्षरण से क्या आषय है, मानव जीवन पर इसके प्रभावों पर चर्चा किजिए।

2. पर्यावरण क्षरण के समाजिक आर्थिक तथा अन्य पहलुओ पर प्रकाष डालिए।

3. अपने आस–पास पर्यावरणीय प्रतिकूल कारको की सूची बनाते हुये स्पष्ट किजिए कि किस प्रकार ये कारक प्रतिकूल है।

खण्ड–04

इकाई–06

पर्यावरणीय लेखांकन

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उददेष्य
6.3 पर्यावरण लेखांकन
6.4 वर्गीकरण और परिभाषा
6.5 पर्यावरण लेखा कानून
6.6 भारत में पर्यावरण लेखांकन की प्रगति
6.7 पर्यावरण लेखांकन की विधियां
6.8 अभ्यास प्रष्न
6.9 सारांष
6.10 षब्दावली
6.11 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.13 विस्तृत प्रष्न

6.1 प्रस्तावना

पर्यावरण लेखांकन समावेषी विकास के दौर में अतिमहत्वपूर्ण है। क्योंकि हमारा समाज लगातार प्राकृतिक अवययों के साथ अपने क्षणिक लाभ के लिये क्षेण–क्षाण कर रहा है अपितु लागत रूप में मानव द्वारा उठाये गये लाभ तथा समाजिक हानि के लेखांकन न केवल में मानव को लाभ नाम का मात्र है। इसलिये पर्यावरण लेखांकन और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है इस इकाई में लेखांकन के वगीकरण, पर्यावरण, लेखा कानून की प्रकृति भारत में पर्यावरण लेखा कानून की प्रगति पर संक्षेप में चर्चा की जायेगी।

6.2 उददेष्य–

इस इकाई को पढने के बाद छात्रो में निम्नलिखित की समझ विकसित हो सकेगी।

1. पर्यावरणीय लेखांकन के महत्व को समझ सकेगें
2. पर्यावरणीय लेखांकन को बर्गीकृत कर सकेगें।
3. पर्यावरणीय लेखांकन को परिभाषित कर सकेगें।
4. पर्यावरणीय लागत तथा भारत में लेखाकन की प्रगति को समझ सकेगे।

6.3 पर्यावरणीय लेखांकन–

पर्यावरणीय लेखांकन जिसे ग्रीन अकाउंटिंग के रूप में भी जाना जाता है को पर्यावरण में होने वाली क्षति के बारे में जानकारी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो कंपनी की गतिविधि कार्यों से जुड़ा हुआ है। (क्रिस्टोफ 1992 पेज 98%)'' प्राकृतिक तत्वों की क्षति के ग्रेड के बारे में कुशल जानकारी की एक प्रणाली, व्यवसाय की गतिविधि से जुड़ा हुआ है उस क्षति को कम करने और कंपनी के अंदर और बाहर के लोगों को सूचित करने के लिए उपयोग किया जाता है।'' पी0एस0 तथा वारफोर्ड ने सर्वप्रथम सम्पूर्ण पूंजी सम्पत्ति के अन्तर्गत मानवीय पूंजी तथा पर्यावरणीय पूंजी को सम्मलित किया इस प्रकार सर्वप्रथम पर्यावरणीय लेखा का प्रयोग किया।

इस मुद्दे को कैसे संभालना है, इस पर व्यवसायों को मार्गदर्शन करने के लिए कोई पर्यावरणीय लेखा कानून नहीं हैं। उन्हें तैयार करने के लिए लेखा संस्थानों में उत्साह की कमी, इस कमी में योगदान देने

वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। क्योंकि समाज चिंतित है यह हाल ही में दिलचस्प हो गया है। भले ही इन खर्चों को उन उत्पादों से जोड़ना तर्कसंगत प्रतीत हो जिनकी निर्माण प्रक्रिया ने उन्हें उत्पन्न किया एक सटीक और औपचारिक समाधान के अभाव में इस मुद्दे को संभालने के लिए अन्य दृष्टिकोण रहे हैं । जैसे कि शक्ति नियम।

लेखांकन के इस पहलू को कुछ व्यवसायों द्वारा अनदेखा किया जाता है। जबकि इसे दूसरों द्वारा लागत के रूप में देखा जाता है । दूसरों द्वारा संपत्ति और अभी तक अन्य व्यवसायों द्वारा आकस्मिकता के रूप में देखा जाता है। जिस तरह से निगम अपने द्वारा किए जाने वाले पर्यावरणीय उपायों को देखते हैं, यह निर्धारित करेगा कि उन्हें कैसे वर्गीकृत किया जाता है।

6.4 वर्गीकरण और परिभाषा

इस मामले में पर्यावरणीय लागत को परिभाषित करना महत्वपूर्ण है। ''पर्यावरणीय लागत पर्यावरण की गुणवत्ता को प्रभावित करने वाली गतिविधियों का व्यक्तिगत परिणाम है'' (Scavone, G, 2000)। इसलिए हम इन लागतों पर विचार कर सकते हैं जो पृथ्वी की रक्षा या इसे बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। सबसे प्रसिद्ध वर्गीकरण, पर्यावरणीय लागत को चार श्रेणियों में विभाजित करता है रोकथाम, मूल्यांकन, नियंत्रण और विफलता।

रोकथाम – वे शुल्क जो पर्यावरणीय समस्याओं को रोकने के उद्देश्य से हैं, जो अंततः इनसे अधिक महंगे होंगे, रोकथाम लागत कहलाते हैं। वे संभावित पर्यावरणीय व्यय की भविष्यवाणी करने के लिए शामिल हैं जो वाणिज्यिक संचालन के दौरान उत्पन्न हो सकते हैं। उदाहरण के लिए एंड–ऑफ–पाइप तकनीक के साथ या क्लीनर तकनीकों का उपयोग करके अपनी प्रक्रियाओं को अपनाना।

मूल्यांकन – मूल्यांकन से जुड़ी लागतें उत्पादन प्रक्रिया के उन हिस्सों की पहचान करने के लिए तैयार की जाती हैं जिनका पर्यावरणीय प्रभाव सबसे अधिक होता है। उदाहरण के लिए पर्यावरण लेखा परीक्षा ।

नियंत्रण – कहा जाता है कि नियंत्रण लागत में खतरनाक सामग्री शामिल है। उदाहरण के लिए रासायनिक या परमाणु कचरे के भंडारण की सुविधा।

विफलता – विफलता से सम्बन्धित लागत वे हैं जो औद्योगिक प्रक्रिया द्वारा लाए गए पर्यावरणीय नुकसान से निपटने के लिए आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए इसे कवर करने के लिये जुर्माना लगाना।

सतत विकास के लिए संयुक्त राष्ट्र प्रभाग ने 2001 में **'पर्यावरण प्रबंधन लेखा प्रक्रिया और सिद्धांत'** प्रकाशित किया उन्होंने परिभाषित किया कि पर्यावरणीय लागत क्या हैं उनके प्रकार और श्रेणियां और कंपनियां उनका इलाज कैसे कर सकती हैं।

उनका वर्गीकरण पर्यावरणीय लागतों के ऐतिहासिक ज्ञान पर आधारित है और यह कंपनियों के लिए खोज को आसान बनाने की कोशिश करता है।

1. पहले समूह में वे लागतें शामिल हैं जिनका शुरू से ही इलाज किया गया था और वे अभी भी संभाली जा रही हैं । जो अपशिष्ट निपटान और उत्सर्जन उपचार लागतें हैं। यह पारंपरिक पर्यावरणीय लागत की परिभाषा से संबंधित है जैसे मौजूदा कचरे और उत्सर्जन के सभी उपचार निपटान और सफाई की लागत से समझौता करना संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण प्रबंधन लेखा प्रक्रिया और सिद्धांत 2001 में उक्त लागतो को स्पष्ट किया गया हैं।

2. दूसरा पर्यावरणीय खर्चों के बेहतर प्रबंधन के लिए कर्मचारियों और बाहरी सेवाओं को बढ़ाना है। पर्यावरण प्रबंधन और रोकथाम इस समूह में शामिल हैं। यह श्रेणी अपशिष्ट और उत्सर्जन रोकथाम से जुड़े वार्षिक व्यय पर केंद्रित है।

3. व्यर्थ सामग्री की खरीद की लागत तीसरे समूह द्वारा जोड़ी जाती है। यहां अपशिष्ट पदार्थ के प्रत्येक टुकड़े का मूल्य – चाहे वह खरीदा गया हो या उपभोग किया गया हो – का आकलन किया जाता है।

4. गैर–उत्पाद आउटपुट की निर्माण लागत शामिल की जाती है। जिससे पर्यावरणीय लागत को और स्पष्ट किया जा सके।

5. इसके अलावा ऐसे अतिरिक्त खर्चे भी हैं जो व्यवसाय से संबंधित नहीं हैं। हालांकि वे कंपनी के नियंत्रण से बाहर हैं। लेकिन इसका पर्यावरणीय लागत पर प्रभाव पड़ सकता है। इनका आकलन भी किया जा सके।

6.5 पर्यावरण लेखा कानून

पर्यावरण लेखा कानून को जानने से पूर्व यह समझ लेना आवष्यक है कि कंपनियां उन्हें कैसे पहचानती हैं। इसके आधार पर पर्यावरणीय लागतों का इलाज कैसे किया जाता है।

संपत्ति के रूप में मानी जाने वाली पर्यावरणीय लागत

यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि उपचार की यह विधि लागू करने के लिए सबसे चुनौतीपूर्ण है। विभिन्न प्रकार के पर्यावरणीय व्यय यहाँ शामिल हैं। प्रमुख अधिग्रहण लागत में उत्पादन प्रक्रिया के पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने के लिए उपकरणों के विभिन्न टुकड़ों के लिए व्यवसायों द्वारा किए गए खर्च शामिल हो सकते हैं। ये लागत आम तौर पर उन संपत्तियों से जुड़ी होती हैं जिनका लंबा उपयोगी जीवन होता है। इसलिए उन्हें मूल्यह्रास पद्धति का उपयोग करके खर्च किया जाएगा। एक अन्य प्रकार की लागत वह है जो कंपनी संपत्ति खरीदने के बाद लगाती है लेकिन जो इसकी कार्यक्षमता को बढ़ाती है या इसके राजस्व में वृद्धि करती है। उदाहरण के लिये फिल्टर जो किसी उद्योग द्वारा छोड़ी जाने वाली हवा से प्रदूषकों को हटाता हैं, जल उपचार प्रक्रियाएं आदि। कुछ पर्यावरणीय लागतों को सक्रिय करना जिन्हें लागतों के रूप में भी माना जाता है। किसी व्यवसाय के लिए स्वतंत्र रूप से या अन्य लागतों के साथ धन उत्पन्न करने के लिए एक पर्यावरणीय व्यय की क्षमता, इसे एक संपत्ति के रूप में वर्गीकृत करने के लिए महत्वपूर्ण है। यह समूह कंपनी की बैलेंस शीट पर सूचीबद्ध होगा। व्यवसाय के पास अपनी आगामी पर्यावरणीय योजनाओं को रेखांकित करने वाली वित्तीय रिपोर्ट में टिप्पणी शामिल करने का विकल्प है।

पर्यावरणीय लागतों को व्यय के रूप में माना जाता है।

यह सबसे जाना–पहचाना/प्रचलित तरीका है। इस विकल्प के साथ पर्यावरणीय लागतों को उस अभ्यास की नियमित लागतों के रूप में स्थापित किया जाता है, जिससे वे जुड़े हुए हैं। यदि उन्हें व्यय के रूप में प्रबंधित किया जाता है तो उन्हें उस अभ्यास में ध्यान में रखा जाएगा। एक उदाहरण के रूप में उस प्रक्रिया पर विचार करें जिसका व्यवसाय को पानी में फेंके गए कचरे को साफ करने के लिए पालन करना चाहिए या पर्यावरण रिपोर्ट बनाने के लिए किसी बाहरी विशेषज्ञ को काम पर रखने की कीमत पर विचार करें। यह समूह परम्परागत रूप से लाभ और हानि खाते में दिखाया जाएगा।

पर्यावरणीय व्यय को एक आकस्मिकता माना जाता है।

देयता प्रावधान और आकस्मिकता जैसे विशिष्ट शब्दों को अब परिभाषित किया जाना चाहिए। ऐसा करने के लिए यह (PGC, 2007) द्वारा प्रदान किए गए वैचारिक ढांचे का उपयोग करना सही प्रतीत होगा।

उत्तरदायित्व पिछली घटनाओं से उत्पन्न वास्तविक प्रतिबद्धताएं जिनके लिए वित्तीय संसाधनों का उपयोग करने के लिए नियम की आवश्यकता होती है जो अन्यथा भविष्य के लाभों या वित्तीय लाभों को रद्द करने के लिए परिणामित हो सकते हैं, से सम्बन्धित प्रावधान यहां शामिल किये जाते हैं।

प्रावधान देनदारियां जो ढांचे की परिभाषा और पंजीकृत मानदंडों का पालन करती हैं लेकिन उनके आकार या समय के बारे में अनिश्चित हैं। एक कानूनी निर्णय एक अनुबंध या एक अनुमानित या मौन दायित्व सभी प्रावधान द्वारा तय कर सकते हैं।

आकस्मिकता प्रावधानों से भिन्न देनदारियां जिनका उल्लेख नोट्स में किया जाता है। एक आकस्मिकता एक दायित्व है लेकिन संभावित के बजाय बस संभव है। इसलिए कंपनियाँ एक दायित्व को एक आकस्मिकता के रूप में पहचानेंगी जब इसकी घटना अनिश्चित भविष्य की घटनाओं पर निर्भर करती है। जब इसका हिसाब नहीं दिया गया है, क्योंकि यह निश्चित नहीं है कि इसे रद्द करने के लिए कंपनियों को आर्थिक संसाधनों का बहिर्वाह करना होगा, या जब इसे मजबूती से निर्धारित नहीं किया जा सकता है।

इस पद्धति में जिन लागतों को आकस्मिकताओं के रूप में माना जाता है उन्हें वास्तविक लागतों के बजाय संभावित भविष्य की लागतों के रूप में देखा जाता है। केवल उनकी सटीक गणना की जा सकती है और उनके होने की संभावना को एक विशिष्ट व्यय के रूप में माना जा सकता है। संभव न होने पर कंपनी को उन्हें नोट्स में पेश करना होगा। किसी भी प्रकार के पर्यावरणीय अपराध के लिए जुर्माना एक प्रकार का पर्यावरणीय परिणाम है।

वह दुर्घटना जो व्यवसाय द्वारा की गई थी, जो अंतिम क्षण में परीक्षण के लिए रिमांड पर है। इस समूह का बैलेंस शीट लाभ और हानि खाते और वित्तीय रिपोर्ट पर भी प्रभाव पड़ेगा।

6.6 भारत में पर्यावरण लेखांकन की प्रगति

हालांकि राष्ट्रीय खातों में प्राकृतिक संसाधनों को शामिल करना महत्वपूर्ण है लेकिन भारत में इस विषय पर कुछ ही अध्ययन हुए हैं। उदाहरण के लिए चोपड़ा और कडेकोडी (1997) ने उदाहरण दिया कि चार उत्तर भारतीय राज्यों के लिए यमुना बेसिन में वनों का हिसाब कैसे दिया जाए। उन्होंने संसाधन निष्कर्षण, पुनर्जनन गिरावट और संरक्षण को ध्यान में रखा। चार कारकों को ध्यान में रखा गया। घने जंगल से आच्छादित कुल क्षेत्र, वन क्षरण की वार्षिक दर निष्कर्षण दर, और पुनर्जनन दर। मापदंडों के मौद्रिक मूल्यों की गणना उनके भौतिक मूल्यों से की जा सकती है। SEEढांचे का उपयोग करते हुए हरिप्रिया (1998 2000) ने महाराष्ट्र के राज्य खातों में वन संसाधनों को शामिल करने का प्रयास किया। हरिप्रिया (2001) ने एक अलग शोध में वन संसाधनों को सभी राज्यों के राष्ट्रीय खातों में शामिल किया। अध्ययन में खाते बनाए जाते हैं, जिनमें प्रारंभिक शेयरों पर डेटा आर्थिक गतिविधि द्वारा लाए गए परिवर्तन अन्य संचय अन्य मात्रा में परिवर्तन और समापन स्टॉक शामिल होते हैं। एटकिन्सन और हरिप्रिया (2004) द्वारा किए गए अध्ययन के अनुसार रिक्तीकरण के मूल्य की गणना समापन स्टॉक के मूल्य से शुरुआती स्टॉक के मूल्य को घटाकर की जाती है। जिसमें अन्य लाभों को भी ध्यान में रखा गया है। अन्य शिक्षाविदों ने भी प्राकृतिक संसाधनों को ध्यान में रखने का प्रयास किया है, लेकिन ठीक SEEA के ढांचे के भीतर नहीं। मूर्ति एट अल द्वारा अध्ययन (1999) ने एक उदाहरण दिया कि जल संदूषण को कैसे ध्यान में रखा जाए। साहित्य में जल संदूषण के प्रभावों को मापने और उनका लेखा–जोखा करने के लिए दो विधियों का उपयोग किया गया है।

पहला लोगों और जानवरों दोनों पर स्वास्थ्य प्रभाव और जल प्रदूषण के अन्य प्रभावों का मूल्यांकन करना है। दूसरा है प्रदूषक भुगतान दृष्टिकोण को अपनाना और नदियों और झीलों जैसे जल निकायों में अपशिष्टों को छोड़ने से पहले जल उपचार के खर्च का लेखा–जोखा रखना। पहली बार ब्रैंडन और होमैन (1995) ने पूरे भारत में शहरी और ग्रामीण स्वास्थ्य पर जल प्रदूषण के परिणामों की मात्रा निर्धारित करने के लिए मृत्यु दर और रुग्णता दर का उपयोग किया। एफ्लुएंट ट्रीटमेंट प्लांट मूर्ति और अन्य की स्थापना के लिए। (1999) प्रदूषक भुगतान करता है। सिद्धांत के आधार पर एक अलग अनुमान प्रस्तुत करता है। परिखंड पारिख (1997) ने बिजली और परिवहन क्षेत्रों के डेटा देश स्तर पर इनपुट–आउटपुट क्षेत्रीय आंकड़ों और घरेलू स्तर के उत्सर्जन का उपयोग करके भारत में वायु प्रदूषण मापन के लिए एक प्रयास

किया। उन्होंने वायु प्रदूषण के कारण होने वाले नुकसान का आकलन करने के लिए परिहार लागत दृष्टिकोण का इस्तेमाल किया है। इस प्रकार लगातार प्रयास हो रहे है।

विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देश के लिए पर्यावरणीय खातों का निर्माण करना आसान नहीं है। पर्यावरण लेखांकन में बड़ी मात्रा में डेटा शामिल होता है। विशेष रूप से भारत जैसे विकासशील देशों में कई डेटा प्रतिबंध हैं, जो पर्यावरण के सटीक आकलन को रोक सकते हैं।

• एक अन्य मुद्दा यह है कि पर्यावरणीय लेखांकन के लिए अधिक विशिष्ट रणनीति की आवश्यकता होती है। तथ्य यह है कि दिल्ली गंदी है, इसका मतलब यह नहीं है कि इसका परिवेश भी उतना ही दूषित है। वह इलाका जहां एक शहर स्थित है वायु की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। पानी की भी ऐसी ही स्थिति है। एक पोर्टेबल स्रोत पानी है। इसके अलावा तापमान वर्षा हवा की दिशा और स्थिति–धारा के ऊपर या नीचे–सभी सहित कारक प्रभावित करते हैं, कि किसी एक साइट पर कितना प्रदूषण मौजूद है। नतीजतन पानी की गुणवत्ता के उपायों के लिए कई निगरानी स्थान हैं जिन्हें अक्सर जांचना चाहिए। इसमें कई स्थानों पर खाते बनाने और अंततः उन्हें एकत्र करने की आवश्यकता होती है।काउंटर के बीच एक और बड़ी समस्या है विकल्प की समस्या । चीजों के मूल्यांकन के लिए कई अलग–अलग तरीके हैं, लेकिन उनमें से कोई भी इस बिंदु पर आदर्श नहीं है और उनमें से कुछ बहस योग्य भी हैं (जैसे किसी व्यक्ति को मूल्य देना)। इसलिए इस विषय पर शोध में कई बाधाएँ हैं। हालांकि इससे हमें खाते बनाने से नहीं रोकना चाहिए।

6.8 **अभ्यास हेतु प्रष्न**

1. पर्यावरणीय पूंजी को लेखा में सर्वप्रथम सम्मिलित किया।

क. क्रिस्टोफर

ख. जे0 आर0 हिक्स

ग. वारफोर्ड

घ. पीयर्स और वारफोर्ड

2. पर्यावरण लेखांकन में सम्मिलित है।

क. रोकथाम

ख. मूल्यांकन

ग. नियंत्रण

घ. उपरोक्त सभी

3. भारत में जल प्रदूषण का लेखा जोखा कितने विधियों से किया जाता है।

क. 1

ख. 2.

ग. 3

घ. इनमें से कोई नहीं

4. पर्यावरण लेखांकन के बारे में गलत कथन है–

क. राष्टीय में वृद्धि के दौरान उपयोग हुये प्राकृतिक संसाधनों के क्षय (लागत))को पता लगाकर, प्राप्त राष्ट्रीय आय में से घटाया जाता है

ख. प्राकृतिक संसाधनों के पुनः पूर्ति हेतु किये गये प्रयासेा को जोडा जाता है।

ग. उपरोक्त दोनो

घ. इनमें से कोई नहीं

6.9सारांष– इस प्रकार हरित लेखांकन या पर्यावरण लेखांकन राष्ट्रीय आय के आय का आकलन का एक ऐसा उपकरण है जिसमें राष्टीय आय में वृद्धि के दौरान उपयोग हुये प्राकृतिक संसाधनों के क्षय (लागत)

का पता लगाकर, प्राप्त राष्ट्रीय आय में से घटाया जाता है तथा प्राकृतिक संसाधनों के पुनः पूर्ति हेतु किये गये प्रयासेा को जोडा जाता है। इसे ग्रीन लेखांकन या प्रो0 जे0आर0 हिक्स के ष्षब्दों में समाजिक लेखांकन भी कहा जाता है। इस प्रकार पर्यावरणीय लेखांकन का महत्व लगातार बढता जा रहा है।

6.10 षब्दावली–

लेखांकन–प्राकृतिक तत्वों की क्षति के मौद्रिक मूल्य का लेखा जोखा

विफलता– पर्यावरण प्रतिकूल तत्वों या संघटको का निवारण न होने पर लगाया गया जुर्माना

राष्ट्रीय आय– 1 वर्ष में उत्पादित समस्त अन्तिम उत्पाद का मौद्रिक मूल्य।

आच्छादित क्षेत्र– वन(पेड–पौधों) से ढका हुआ क्षेत्र।

डाटा– पर्यावरणीय संघटक का विवरण

6.11 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर

1 घ. पीयर्स और वारफोर्ड

2. घ. उपरोक्त सभी

3. ख. 2.

4. ग. उपरोक्त दोनो

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, ' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेषन, 2013.

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

झिंगन, एम. एल. " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2022

सिन्हा, वी. सी. : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

Agarwal R- C- : Economics of Development and Planning Lakshmi Narayan Agarwal Agra

Taneja M- L- & Myer R- M- : "Economics of Development and Planningß Vishal Publishing Co- Delhi

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

6.13 विस्तृत प्रष्न –दीर्घ उत्तरीय प्रष्न

1. पर्यावरण लेखांकन से क्या आषय है, लेखांकन के वर्गीकरण, लेखा कानून को स्पष्ट किजिए?

2. भारत में पर्यावरण लेखांकन पर प्रकाष डालिए?

खण्ड–04

इकाई–07

पर्यावरण प्रबंधन सिद्धांत (कोज प्रमेय(Cossetheorem) और प्रदूषक भुगतान सिद्धांत (Polluter Pay Principle))

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उददेष्य
7.3 प्रदूषक भुगतान सिद्धान्त
7.4 भारत में प्रदूषण भुगतान सिद्धांत से संबंधित कानूनी प्रावधान
7.5 प्रदूषक भुगतान सिद्धांत की सीमाएं
7.6 प्रष्नोत्तरी (वहुविकल्पीय)
7.7 सारांष
7.8 कोज प्रमेय
7.9 कोज प्रमेय की मान्यताए
7.10 कोज प्रमेय की सीमा
7.11 प्रष्नोत्तरी (वहुविकल्पीय)
7.12 सारांष
7.13 षब्दावली
7.14 अभ्यास प्रष्नों के उत्तर
7.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.16 विस्तृत प्रष्न

7.1 प्रस्तावना–इस इकाई के अन्तर्गत अर्न्तराष्ट्रिय स्तर पर प्रदूषण की रोकथाम हेतु किये जा रहे नियंत्रक उपायों का अध्ययन किया जायेगा। किन लागतों पर पर्यावरणीय क्षति, कहाँ तक हो, से सम्बन्धी नियंत्रक उपायों पर चर्चा की जायेगी साथ ही भारत में प्रदूषण भुगतान से सम्बन्धित कानूनी प्रावधानों जैसे प्रर्यावरण संरक्षण अधीनियम, वायु संरक्षण अधिनियम, जल संरक्षण इत्यादि पर प्रकाष डाला जायेगा। प्रदूषण भुगतान की सीमाओं पर भी प्रकाष डाला जायेगा।

7.2 उद्देष्य

इस इकाई को पढने के बाद छात्र निम्नलिखित से परिचय हो सकेगें।

1. छात्र भुगतान सिद्धान्त के बारे में बता सकेगें।
2. छात्रों के मध्य पर्यावरण से सम्बन्धित विभिन्न प्रावधानों/अधिनियमों इत्यादि पर चर्चा हो सकेगी।
3. छात्र भारत में प्रदूषण भुगतान सिद्धान्तों के बारे में अवगत हो सकेगे।
4. छात्र प्रदूषण भुगतान सिद्धान्तों को बता सकेगें।
5. छात्रों के मध्य पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धित जागरूकता पैदा हो सकेगी।

पर्यावरणीय गिरावट पर संयुक्त राष्ट्र के द्वारा नियुक्त ब्रंटलैण्ड आयोग (विश्व आयोग) ने अपनी रिपोर्ट ''अवर कॉमन फ्यूचर'' में कहा कि पर्यावरण की मरम्मत की लागत का भुगतान किसी उद्यम के

आंतरीकरण द्वारा किया जा सकता है। यहाँ आर्थिक संदर्भ में आंतरिककरण का अर्थ है कि प्रदूषक स्वयं लागत वहन करता है और किसी एजेंट को कार्य नहीं सौंपता है। रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है कि उद्यम को निवारक पुर्नस्थापनात्मक और प्रतिपूरक उपाय करने के लिए, निवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। प्रदूषक वेतन सिद्धांत पहली बार 1972 में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (OECD) द्वारा पेश किया गया था। रिपोर्ट में कहा गया है कि प्रदूषक कारखाने की प्रक्रिया से जुड़े प्रदूषण के नियंत्रण और रोकथाम के लिए जिम्मेदार है। प्रदूषकों को जल्द ही पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग द्वारा अपशिष्ट के रूप में मान्यता दी गई। इसलिए प्रदूषकों का प्रकृति में प्रसार औद्योगिक उत्पादन की अक्षमता के रूप में माना जाता था। इसलिए प्रदूषण की समस्या को नियंत्रित करने के लिए प्रदूषक भुगतान सिद्धांत के कार्यान्वयन को एक मजबूत आर्थिक प्रशासनिक और कानूनी उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया गया था।

7.3 प्रदूषक भुगतान सिद्धांत

प्रदूषक भुगतान सिद्धांत (पीपीपी) अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त सिद्धांतों में से एक है जो पर्यावरण कानून, प्रबंधन और अर्थशास्त्र को आम तौर पर प्रभावित करता है। पीपीपी कई अंतरराष्ट्रीय सिफारिशों और संधियों में व्यक्त किया गया है।पीपीपी को पहली बार 1972 में आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (ओईसीडी) द्वारा राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के लिए एक दिशानिर्देश के रूप में परिभाषित और अनुशंसित किया गया था। कुशल पर्यावरण नीति प्राप्त करने के लिए प्रदूषण निवारण लागतों के आवंटन के संबंध में अर्थशास्त्रियों के बीच चर्चा पीपीपी में परिणत हुई। OECD की पर्यावरणीय नीतियों के अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक पहलुओं के संबंध में मार्गदर्शक सिद्धांतों में यह कहा गया है कि– प्रदूषण रोकथाम की लागतों के आवंटन और दुर्लभ पर्यावरणीय संसाधनों के तर्कसंगत उपयोग को प्रोत्साहित करने और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में विकृति से बचने के लिए नियंत्रण उपायों के लिए उपयोग किए जाने वाले सिद्धांत और नियम। 1974 में स्वीडिश सरकार ने पीपीपी को विस्तारित प्रदूषण उत्तरदायित्व (ईपीआर) के रूप में वर्णित किया।

पर्यावरण और विकास पर ब्रटलैण्ड आयोग 1987 ने पीपीपी को सतत विकास की विशेषताओं में से एक के रूप में समझाया। 1992 में रियो डी जेनेरियो में पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में प्रदूषक भुगतान सिद्धांत की भी पुष्टि की गई थी। रियो घोषणा में काक 16वां सिद्धांत बताता है कि राष्ट्रीय अधिकारियों को पर्यावरणीय लागतों के आंतरिककरण और आर्थिक साधनों के उपयोग को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए। इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कि प्रदूषक को, सिद्धांत रूप में प्रदूषण की लागत को वहन करना चाहिए सार्वजनिक हित के संबंध में और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश को विकृत किए बिना। टिकाऊ विकास पर विश्व शिखर सम्मेलन और कार्यान्वयन की जोहान्सबर्ग योजना दोनों में उल्लेख किया गया है।

सरल शब्दों में पीपीपी का अर्थ है प्रदूषक को पर्यावरणीय क्षति के लिए जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए और प्रदूषण निवारण उपायों को पूरा करने या पर्यावरण की स्थिति को नुकसान पहुंचाने के लिए भुगतान करना चाहिए जहां पर्यावरणीय क्षति के कारण उपभोग्य या उत्पादक गतिविधियां शामिल नहीं हैं।

प्रोफेसर बग्गे ने कहा कि प्रदूषक भुगतान सिद्धांत के कई अर्थ हैं और इसने प्रदूषण भुगतान सिद्धांत के चार संस्करणों की पहचान की है जिसे विभिन्न न्यायालयों में अभिव्यक्ति मिली है–

(1) एक आर्थिक सिद्धांत है, दक्षता का सिद्धांत।
(2) एक कानूनी सिद्धांत है लागतों के उचित वितरण का सिद्धांत
(3) राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के अंतर्राष्ट्रीय सामंजस्य में से एक है
(4) राज्यों के बीच लागत के आवंटन का सिद्धांत है।

7.4 भारत में प्रदूषण भुगतान सिद्धांत से संबंधित कानूनी प्रावधान –

भारतीय कानून में प्रदूषक भुगतान सिद्धांत का कोई प्रत्यक्ष कार्यान्वयन नहीं है लेकिन विभिन्न अधिनियमों में कुछ प्रावधान हैं जो प्रदूषकों द्वारा किए गए प्रदूषण के लिए दंड प्रदान करते हैं। उनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं–

क.पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 से प्रावधान–

धारा 15(1) जो कोई भी व्यक्ति ईपीए के किसी भी प्रावधान का पालन करने में विफल रहता है वह 100000 के जुर्माने या 5 साल के कारावास या दोनों के लिए उत्तरदायी है।

यदि फिर भी आगे अधिनियम के नियमों के खिलाफ रहता है तो अपराधी के खिलाफ अतिरिक्त जुर्माना लगाया जा सकता है जिसे 5000 तक बढ़ाया जा सकता है।धारा 16 यदि किसी कंपनी द्वारा इस अधिनियम के तहत कोई अपराध किया गया है तो प्रभारी प्रत्येक व्यक्ति को तदनुसार दंडित किया जाएगा।

ख. वायु से प्रदूषण (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम 1981–

धारा 31 एक व्यक्ति जो अधिनियम के प्रावधान का पालन करने में विफल रहता है उसे जुर्माने से दंडित किया जाता है और इस तरह के जुर्माने को प्रतिदिन के लिए 5000 तक बढ़ाया जा सकता है।

धारा 38 में किसी भी संपत्ति को नष्ट करने पर कारावास या 10000 के जुर्माने की सजा का प्रावधान है। (धारा 39) यदि उल्लंघन जारी रहता है तो जुर्माना 5000 रुपये प्रतिदिन बढ़ाया जा सकता है।

ग) जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम 1974 के प्रावधान– धारा 32 सी (1) यदि किसी व्यक्ति को जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम 1974 की धारा 20 (2) और (3) के तहत दोषी ठहराया जाता है तो यह कारावास और 10000 तक जुर्माना या दोनों के साथ दंडनीय है। यदि कोई व्यक्ति किसी जलधारा या कुएं में किसी भी प्रदूषणकारी पदार्थ का निस्तारण करता है तो उसे 6 महीने तक की कैद और जुर्माने से दंडित किया जा सकता है।

7.5 प्रदूषक भुगतान सिद्धांत की सीमाएं

हालांकि भारतीय कानून में प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए कुछ प्रावधान हैं, प्रदूषण भुगतान के सिद्धांत को पूरी दुनिया में स्वीकार किया जाता है इस सिद्धांत की कुछ सीमाएँ हैं।

1. प्रदूषक कौन है? यह निर्धारित करने में अस्पष्टता अभी भी मौजूद है। कानूनी शब्दावली में एक प्रदूषक वह है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है या स्पष्ट रूप से इस तरह के नुकसान से संबंधित स्थितियां बनाता है। यह परिभाषा कई स्थितियों में वास्तविक दोषी के निर्धारण में असमर्थ है।

2. बड़ी संख्या में गरीब परिवार, अनौपचारिक क्षेत्र, फर्म और निर्वाह करने वाले निर्धारक ऊर्जा या अपशिष्ट शुल्क के लिए कोई अतिरिक्त शुल्क वहन नहीं कर सकते हैं। जबकि इनके सामूहिक क्षति पर ध्यान हो तो अत्यधिक भयावह होती है।

3. एक औपचारिक क्षेत्र से छोटी या मध्यम आकार की फर्में जो मुख्य रूप से घरेलू बाजारों में कार्य करती हैं और अपने उत्पाद के घरेलू एंडयूजर्स की उच्च लागत को पास करना मुश्किल हो जाता है।

4. विकासशील देशों में निर्यातक आमतौर पर लोचदार मांगों के कारण लागत आंतरिककरण का बोझ विदेशी उपभोक्ताओं पर डालते हैं।

5. विकासशील देशों में कई पर्यावरणीय समस्याएं सामान्य पूल संसाधनों के अतिदोहन के कारण होती हैं। इन सामान्य पूल संसाधनों तक पहुंच निजी संपत्ति अधिकारों को सौंपने के मामलों में सीमित हो सकती है, हालांकि इस समाधान से गंभीर वितरण संबंधी संघर्ष हो सकते हैं।

6. कभी–कभी कंपनियों के समूह के मामले में यह तय करने में विफल रहता है कि प्रदूषक कौन है।

7.6 बोध प्रष्न/ अभ्यास के प्रष्न–

1. वायु प्रदूषण रोकथाम अधिनियम 1981 के धारा 38 में सार्वजनिक सम्पत्ति नष्ट करने पर प्रावधान है?

क. करावास
ख. दस हजार का जुर्माना
ग. मृत्यु दण्ड
घ. क या ख दोनो

2. जल प्रदूषण रोकथाम अधिनियम 1974 के धारा 20 (2) के अन्तर्गत दोषी पाये जाने पर प्रावधान है?)

क. करावास
ख. दस हजार का जुर्माना
ग. मृत्यु दण्ड
घ. क या ख दोनो

3. भुगतान प्रदूषक पहली बार आर्थिक सहयोग और विकास संघटन द्वारा प्रयोग किया गया
क. 1972
ख. 1974
ग. 1986
घ. 1982

4. कहाँ की सरकार ने भुगतान प्रदूषण सिद्धान्त को पहली बार विस्तारित प्रदूषण उत्तरदायी सर्वप्रथम घोषित किया।

क. स्वीडेन
ख. जापान
ग. चीन
घ. भारत

ष7.7 सारांष– लगातार प्रदूषको से निपटारा पाने हेतु विभिन्न सार्वाजनिक संसथाओं द्वारा लगातार प्रयास किये जा रहें है। जिसके लिये समय–समय पर विभिन्न रिपोर्ट आयोगो, अधिनियमों तथा नियमों द्वारा नियमन करने का प्रयास किया जा रहा है परन्तु फिर भी प्रदूषण के उत्तरदायी कारक प्रभावी है। जिसे रोकने हेतु प्रदूषक भुगतान सिद्धान्त की आवष्कता बदलते परिवेष में और कठोरता से लागू करने की जरूरत है जिससे कम से कम पर्यावरण क्षति हो। छात्रों में जागरूकता यथा सम्भव तरीकों से लाना नितान्त आवष्यक है। जिससे पर्यावरण को और सुरक्षित किया जा सके।

7.8 कोजप्रमेय

कोजप्रमेय Coase जिसे 1960 में ब्रिटिश–अमेरिकी अर्थशास्त्री रोनाल्ड कोज द्वारा विकसित किया गया था। लेकिन यह एक नियामक ढांचा नहीं है। क्रोच प्रमेय ने प्रोत्साहन–संचालित या बाजार–आधारित नियामक प्रणालियों के लिए रास्ता साफ कर दिया। कोज प्रमेय के अनुसार निजी व्यक्ति (या व्यवसाय)

बाह्यताओं द्वारा लाई गई बाजार की अक्षमताओं के सामने पारस्परिक रूप से लाभप्रद सामाजिक रूप से वांछनीय समाधान पर बातचीत करने में सक्षम हैं । बशर्ते कि बातचीत प्रक्रिया में कोई लागत शामिल न हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि प्रदूषक को प्रदूषित करने का अधिकार है या औसत प्रभावित दर्शक को स्वच्छ वातावरण का अधिकार है।

जहां माता–पिता को औद्योगिक गतिविधियों में वृद्धि के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य देखभाल की आसमान छूती लागतों का भुगतान करने के लिए मजबूर किया जाता है। कोज प्रमेय कहता है कि सरकार की भागीदारी के अभाव में भी प्रदूषक और माता–पिता बाहरी समस्या के समाधान के लिए बातचीत कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि समाज की कानूनी प्रणाली ने कंपनी को प्रदूषण पैदा करने की अनुमति दी है तो बीमार बच्चों के माता–पिता इस बात पर ध्यान दे सकते हैं कि वे चिकित्सा व्यय में कितना भुगतान कर रहे हैं और कंपनी को कम प्रदूषण के बदले में कम राशि की पेशकश कर सकते हैं। जब उनकी स्वास्थ्य देखभाल की लागत की तुलना की जाती है तो माता–पिता पैसे बचा सकते हैं और कंपनी को पता चल सकता है कि उत्सर्जन में कमी से होने वाले उच्च खर्च ऑफसेट से अधिक हो सकते हैं।

कंपनी पड़ोस में उच्च स्तर के प्रदूषण को सहन करने के बदले में माता–पिता को पैसे का भुगतान कर सकती है यदि माता–पिता अपने बच्चों के लिए स्वच्छ सुरक्षित हवा का अधिकार रखते हैं। कंपनी को तब तक लाभ होगा जब तक पेशकश की गई राशि घटते उत्सर्जन की कीमत से कम है। माता–पिता बातचीत के परिणाम का चयन भी कर सकते हैं यदि धन की राशि स्वास्थ्य देखभाल की लागत से अधिक है जो प्रदूषण के स्तर में वृद्धि के कारण होगी। दुर्भाग्य से कोज प्रमेय एक व्यावहारिक समाधान के रूप में शायद ही कभी प्रासंगिक हो क्योंकि इसके बिना लागत वाली बातचीत के केंद्रीय सिद्धांत अक्सर सच होने में विफल होते हैं। फिर भी कोज प्रमेय एक महत्वपूर्ण अनुस्मारक है कि जटिल पर्यावरणीय समस्याओं के मामले में भी पारस्परिक रूप से लाभकारी समझौते के लिए जगह हो सकती है

7.9 कोज प्रमेय की मान्यताए

केवल विशिष्ट अनुमान ही कोज प्रमेय को कार्य करने की अनुमति देते हैं।

1. कोई लेनदेन शुल्क नहीं

प्रभावित पार्टियों या व्यापार भागीदारों का पता लगाने का खर्च तब संदर्भित होता है जब हम घोषणा करते हैं कि कोई लेनदेन लागत नहीं है। उदाहरण के लिए नीचे की ओर मछुआरों के साथ बातचीत करने के लिए किसान को उनका पता लगाने की आवश्यकता होगी। समझौते का मामला अगली स्थिति है। लेन–देन की लागत में वृद्धि कानूनी खर्च आवश्यक हो सकता है। अनुपालन भी होता है। यह गारंटी देने के लिए कि किसान समझौते की शर्तों का पालन करता है मछुआरा इस बात पर नजर रख सकता है कि वह कितने उर्वरक का उपयोग करता है। इसलिए इनमें से कोई भी लेन–देन लागत कोज प्रमेय के अनुसार मौजूद नहीं हो सकती है अन्यथा आर्थिक दक्षता प्राप्त नहीं की जा सकती है।

2. सही विवरण

सही जानकारी के अभाव में दो पक्षों के बीच सामाजिक रूप से आदर्श समझौता नहीं किया जा सकता है। हम इसके करीब पहुंच सकते हैं लेकिन हम वहां नहीं पहुंचेंगे। ऐसा इसलिए है ताकि पूर्ण ज्ञान के अभाव में भी दोनों पक्ष मूल्य का मूल्यांकन कर सकें। यदि हम किसान के उदाहरण पर वापस जाते हैं तो वह किसी चीज का सही मूल्यांकन करने में असमर्थ होता है यदि उसे यह नहीं पता होता है कि उसके उर्वरक उपयोग को आधा करने से क्या प्रभाव पड़ेगा। किसान लगातार एक ही मात्रा में उर्वरक का उपयोग कर सकता है। इसलिए वह अनिश्चित है कि इसके अभाव में उसकी फसल की उपज कैसे प्रभावित होगी। सांकेतिक डेटा की कमी के कारण वे जो मूल्य प्रदान करते हैं वह निशान से दूर होने की संभावना है। परिणाम इसलिए आर्थिक रूप से अक्षम है क्योंकि प्रदूषण का मूल्य वास्तविक मूल्य से नाटकीय रूप से

भिन्न होने की संभावना है। इसलिए कोज प्रमेय मानता है कि किसान और अन्य सभी पक्षों को इस तरह के बाह्यताओं के मूल्य और व्यक्तिगत रूप से उनकी लागत के बारे में जानकारी है।

3. समान बाजार की ताकत

एक मछुआरे और एक किसान की तुलना समान स्तर पर की जा सकती है। कोज प्रमेय मानता है कि प्रत्येक पक्ष में समान मात्रा में शक्ति होती है। इस बीच वॉलमार्ट के पास एक छोटे किसान के साथ बातचीत करने का अधिक लाभ होगा क्योंकि इसमें उनके पूरे स्टॉक को खरीदने की क्षमता है क्योंकि बातचीत मजबूत पार्टी के पक्ष में झुकी हुई है । सामाजिक रूप से आदर्श समझौता नहीं किया जा सकता है। यह इंगित करता है कि बाहरी पक्ष के मूल्य को कमजोर पक्ष के लिए अवमूल्यन किया गया है प्रभावी रूप से उन्हें दूसरे पक्ष के तुलनात्मक लाभ के विपरीत शुद्ध हानि पर रखा गया है। इसलिए यह माना जाता है कि कोज प्रमेय और संपत्ति के अधिकारों की शक्ति के वैध होने के लिए दोनों पक्षों के पास समान बाजार शक्ति है।

4. संपत्ति अधिकार

जो वास्तविक आर्थिक मूल्य के संरेखण का समर्थन करते हैं कोज प्रमेय की नींव हैं। जब संपत्ति के अधिकार नहीं सौंपे जाते हैं संसाधनों को अक्षम रूप से आवंटित किया जाता है। यह वायु प्रदूषण या ध्वनि प्रदूषण जैसी खराब बाह्यता हो सकती है। कोज प्रमेय के अनुसार जब ऐसी नकारात्मक बाह्यताएँ उत्पन्न होती हैं तो संपत्ति के अधिकार आवंटित करके और फिर दोनों पक्षों को सौदेबाजी करने की अनुमति देकर उनसे बचा जा सकता है। दूसरे शब्दों में कोज प्रमेय का प्रस्ताव है कि संपत्ति के अधिकार हानिकारक बाह्यताओं को कम कर सकते हैं। इसे व्यक्त करने का सबसे सरल तरीका एक उदाहरण के माध्यम से है।

एक किसान विकास को प्रोत्साहित करने के लिए अपनी फसलों को उर्वरक देता है। हालाँकि उन उर्वरकों का रिसाव पास की नदी में हो जाता है। जिसका डाउनस्ट्रीम एंग्लरों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यह संभव है कि डाउनस्ट्रीम सदस्य भी प्रभावित होंगे। ऐसे में किसान बाहरी तौर पर मछुआरों को नुकसान पहुंचा रहा है। संपत्ति के अधिकारों के बिना ऐसी लागतों के लिए कोई तंत्र नहीं है। इसलिए लागत अज्ञात है। कोज प्रमेय इस बिंदु पर चलन में आता है। स्पष्ट रूप से परिभाषित संपत्ति अधिकारों के बिना कौन सही है इस बारे में एक लंबा कानूनी विवाद किसान और मछुआरे दोनों को शामिल कर सकता है। ऐसा करने में बहुत पैसा समय और प्रयास लगेगा। संपत्ति के अधिकारों को सौंपना और बातचीत की अनुमति देना प्रदूषण के लिए एक वास्तविक आर्थिक लागत आवंटित करने के लिए कोज प्रमेय का सुझाया गया तरीका है। किसानों की फसलों के विकास में सहायता के लिए कीटनाशकों को लागू करने का अधिकार उनके पास होगा यदि उनके पास स्पष्ट रूप से परिभाषित विभाजित और बचाव योग्य संपत्ति अधिकार हैं। प्रतिकूल वाह्यता की कीमत मछुआरे पर पड़ेगी। दोनों पक्षों को उस प्रतिकूल बाह्यता को कम करने या कम करने की कीमत पर सहमत होना होगा। मछली पकड़ने की अनुमति के बदले में मछुआरा किसान को जो कुछ भी लायक होता है उसे दे देगा। यह 50,100 या 1000 भी हो सकता है। मुख्य विचार यह है कि कीमत उस मूल्य से तय होती है जो किसान को कम उर्वरक का उपयोग करके बलिदान करना चाहिए। इसलिए उर्वरक में कटौती करने से फसल की पैदावार कम हो सकती है लेकिन मछुआरे नीचे की ओर अंतर पैदा करेंगे। इसी तरह कितना उर्वरक नदी में बहाया जाता है इसके आधार पर यदि नदी का मालिक मछुआरा है तो किसान को मछुआरे को भुगतान करना होगा। कोज प्रमेय का दावा है कि नकारात्मक बाह्यता को महत्व दिया जाएगा। इसलिए इस उदाहरण में मछुआरा जमींदार है और यदि किसान उर्वरक का उपयोग करना चाहता है तो उसे भुगतान किया जाना चाहिए इसलिए बाह्यता की भरपाई की जाती है।

7.10 कोज प्रमेय की सीमा

1. सौदेबाजी करना चुनौतीपूर्ण है

सामाजिक रूप से आदर्श उत्पादन की मात्रा प्राप्त करने के लिए कोज प्रमेय दो पक्षों के बीच कुशल और प्रभावी सौदेबाजी पर निर्भर करता है। लेकिन एक ग्राफ यह प्रदर्शित करना आसान बनाता है कि दो लोग कैसे जान सकते हैं या उस स्तर को हासिल करने की परवाह भी कर सकते हैं? हो सकता है कि आपके पास एक ही समय में दो बिल्कुल भिन्न पार्टियां मौजूद हों। आकार और शक्ति अंतर के परिणामस्वरूप उनके पास अधिक बातचीत शक्ति हो सकती है। या दूसरे पक्ष के पास अधिक सौदेबाजी की विशेषज्ञता हो सकती है और अन्यथा की तुलना में बेहतर सौदा सुरक्षित करने में सक्षम हो सकता है। वास्तविक दुनिया में संभवतः बातचीत करने की शक्ति का असमान वितरण होता है; जिसके परिणामस्वरूप कम–से–आदर्श परिणाम मिलते हैं। हालांकि कोज प्रमेय बताता है कि संपत्ति के अधिकार आर्थिक परिणामों को बढ़ा सकते हैं यह धारणा कि सभी पक्षों के पास समान सौदेबाजी की शक्ति है व्यवहार में नहीं है।

2. व्यावहारिक रूप से कभी भी शून्य लेन–देन खर्च नहीं होता है।

इस तथ्य के बावजूद कि एक पक्ष सही स्वामी हो सकता है वास्तव में हमेशा लेन–देन शुल्क शामिल होता है। उदाहरण के लिए एक सौदा हासिल होने के बाद विशेष रूप से प्रदूषण को कम करने के लिए शायद इसे पुलिस करने की आवश्यकता होगी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सीमा या स्थापित कोटा पार नहीं हुआ है किसी प्रकार का निरीक्षण या परीक्षण आवश्यक होगा। एक औपचारिक और कानूनी रूप से लागू करने योग्य समझौते पर पहुंचने के लिए हम अतिरिक्त रूप से कानूनी खर्च उठा सकते हैं। कुछ स्थितियों में भुगतान नहीं किया जा सकता है जिस स्थिति में ऋण की वसूली के लिए और कानूनी शुल्क आवश्यक होगा। उदाहरण के लिए अगर कई मासिक भुगतान छूट जाते हैं तो कानूनी कार्रवाई की आवश्यकता हो सकती है

3. आय वितरण प्रभावित होता है

जिसके पास संपत्ति का अधिकार होगा वह अंततः दूसरे से मुआवजा प्राप्त करने वाला व्यक्ति होगा। मछुआरे को, किसान को नदी का उपयोग करने के लिए भुगतान करना होगा यदि उसके पास इसका अधिकार है। इसके अलावा यदि मछुआरा नदी का मालिक है तो भुगतान करने के लिए किसान जिम्मेदार होगा। जब हम संपत्ति के मालिक को चुनते हैं तो एक समस्या उत्पन्न होती है। क्या उच्चतम बोली लगाने वाले को यह प्राप्त होगा? उस स्थिति में धन असमानता केवल लंबी हो सकती है। बाह्यताओं की कीमत सबसे अधिक आय वाले लोगों द्वारा निर्धारित की जा सकती है।

4. असंभव परिकल्पना

कोज प्रमेय कई तरह की धारणाएँ बनाता है जिसमें लेन–देन की लागत की कमी समान सौदेबाजी की शक्ति और सही जानकारी शामिल है। हालांकि वास्तविकता में धारणाएं अविश्वसनीय हैं। आमतौर पर एक आधारवाक्य होता है जो सत्य प्रतीत नहीं होता है।

7.11 बोध प्रष्न/ अभ्यास के प्रष्न–

1. कोज प्रमेय विकसित किया गया–

क. 1960

ख. 1965

ग. 1970

घ. 1975

2. कोज प्रमेय विकसित करने का श्रेय किसको जाता है।

क. ब्रिटिष–अमेंरिकीअर्थषास्त्री रोनाल्ड कोज

ख. जर्मन–अमेंरिकीअर्थषास्त्री रोनाल्ड कोज

ग.अमेंरिकीअर्थषास्त्री रोनाल्ड कोज

घ. इनमें से कोई नहीं

7.12 सारांष–समस्त नाकरात्मक वाहयताओं को समाप्त करने हेतु सम्पत्ति के अधिकार को दोनों पक्षों में बांटकर हानिकारक प्रभावों से बचा जा सकता है। अर्थात कोज प्रमेय के विषिष्ट मान्यताए लेन–देन ष्षुल्क, वितरण, बाजार की ताकत इत्यादि, वैद्य होने पर ही कोज प्रमेय सुचारू रूप से लागू होती है।

7.13 षब्दावली–

प्रमेय– अर्थात थियरम जिसे प्रमाण द्वारा सिद्ध किया जा सके।

लेन–देन– व्यपार भागीदारों के मध्य कोई लेन–देन की लागत नहीं होना

उर्वरक– उपजाऊ बनाने हेतु प्रयोग किया जा रहा है

वाहयताए– बाहर से प्रभावित करने वाले।

7.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, ' इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट', सिंगेंज पब्लिकेषन, 2013.

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

झिंगन, एम. एल. रू " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2022

सिन्हा, वी. सी. : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

Agarwal R- C- : Economics of Development and Planning Lakshmi Narayan Agarwal Agra

Taneja M- L- & Myer R- M- : "Economics of Development and Planning, Vishal Publishing Co- Delhi

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

7.15 दीर्घ उत्तरी प्रष्न–

1. प्रदूषक भुगतान सिद्धान्त की व्याख्या किजिए?
2. कोज प्रमेय की वर्तमान में प्रासंगिकता को स्पष्ट किजिए?
3. प्रदूषक भुगतान सिद्धान्त को अपने आस–पास के उदाहरण से स्पष्ट किजिए?

खण्ड–04

इकाई–08

वर्तमान पर्यावरणीय वैश्विक प्रयास एवं संस्थाएं

वियना कन्वेन्शन World Summit (Vienna convention)–1985

पृथ्वी सम्मेलन

इकाई का संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उददेष्य
8.3 आई0यू0सी0एन (इन्टरनेषनल यूनियन फार कन्जरवेषन आफ नेचर)
8.4 विष्व वन्य जीव कोष
8.5 विष्व मौसम संगठन
8.6 संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम
8.7 पर्यावरण एवं विकास का विष्व व्यापी आयोग
8.8 जलवायु परिवर्तन, अन्तर सरकारी कार्यदल
8.9 वन्य जीव संरक्षण सोसायटी
8.10 विष्व बैंक समूह की पर्यावरण रणनिति
8.11 पर्यावरण संरक्षण हेतु सम्मेलन एवं समझौते
8.12 टोरन्टो विष्व सम्मेलन
8.13 वियना सम्मेलन 1985
8.14 मान्ट्रियस समझौता
8.15 पृथ्वी षिखर सम्मेलन
8.16 प्रष्नोत्तरी (वस्तुनिष्ट)
8.17 प्रष्नोत्तरी (विषयनिष्ट)
8.18 षब्दावली
8.19 सारांष–

8.1 प्रस्तावना–

पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विभिन्न समितियों का गठन किया गया है जो पर्यावरण हित के लिए कार्य कर रही है। इन संस्थाओं का प्रमुख कार्य मानव स्वस्थ्य और पर्यावरण संरक्षण के लिए कार्य करना है हानिकारक उद्योगों से जुड़े लोगो के बीच जाकर उनमें जागरूकता का प्रचार–प्रसार करना उन्हें सीधे प्रभावित करने वाले मामलों में निर्णय लेने के उनके अधिकारों पर जोर देना और उनके बच्चों के भविष्य पर ध्यान केन्द्रित करके चलना, संगठन की प्राथमिकता रहती है साथ ही संगठन पर्यावरण के विभिन्न उपागमों की सुरक्षा के लिए भी तत्पर रहते हैं ।

8.2 उददेष्यः–

इस इकाई को पढने के बाद छात्रों में निम्न समझ विकसित हो सकेगी।

1. पर्यावरण संरक्षण हेतु किये जा रहे वैष्विक प्रयासो को छात्र बता सकेगें।
2. पर्यावरण संरक्षण में लगे संगठनों को जान सकेगे।

3. पर्यावरण संरक्षण की सार्थतकता को समझ सकेगे।
4. वियना सम्मेलन 1985 पर प्रकाष डाल सकेगे।
5. पृथ्वी षिखर सम्मेलन पर विस्तृत चर्चा कर सकेगे।

पर्यावरण संरक्षण से संबंधित, कुछ महत्वपूर्ण समितियां निम्न है जिन पर चर्चा करना आवष्यक है–

8.3 IUCN (International Union for Conservation of Nature)

प्राकृतिक संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ (IUCN) की स्थापना 5 अक्टूबर 1948 को फ्रांस में की गई थी। इसका मुख्यालय स्विट्जरलैण्ड के ग्लैण्ड षहर में है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्य अन्तर्सरकारी एजेंसियोंके लिए विष्व वन्य जीव कोष (World Wild Life Fund-WWF) के कार्यों के साथ समन्वय स्थापित कर वैज्ञानिक रूप से संरक्षण तकनीक को बढ़ावा देता है।सन् 1963 से यह संस्था विलुप्त प्रायः असुरक्षित तथा दुर्लभ जीवों तथा पादपों से संबंधित 'रेड डाटा बुक' (Red Data Book) जारी करता है।

8.4 विष्व वन्य जीव कोष (World Wild Life Fund-WWF)

26 अप्रैल 1961 को IUCNके सहायक संगठन विष्व वन्य जीव कोष की स्थापना की गयी। इसका मुख्यालय स्विटजरलैण्ड के ग्लैण्ड में है। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वन्य जीवों की देख–भाल पर नजर रखती है तथा उसके रख–रखाव संबंधी मानदण्डों को पूरा करने में विभिन्न देंशों तथा एजेंन्सियों को वित्तीय सहायता प्रदान कराता है। WWF का प्रतीक विलुप्त प्रायः प्राणी प्वाइंट पांडा है।

8.5 विष्व मौसम विज्ञान संगठन (World Metrological Organisation-WMO)

WMO की स्थापना 23 मार्च 1950 को हुआ। इसका मुख्यालय जेनेवा में स्थित है जो स्विटजरलैण्ड में है। WMO का उद्देष्य वायुमण्डल की दषा और व्यवहार का अध्ययन करना है।

8.6 संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme-UNEP)

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की स्थापना सन् 1972 ई0 में की गयी थी। इसका मुख्यालय कीनिया के नैरोबी षहर में है। यह एजेंसी संयुक्त राष्ट्र की महत्वपूर्ण एजेंसी है जो पर्यावरण परीक्षण के लिए अन्तर्सरकारी उपायों के समन्वय के लिए उत्तरदायी है।

8.7 पर्यावरण एवं विकास का विष्वव्यापी आयोग (World Commission on Enviromnet and Development-WCED)

पर्यावरण एवं विकास के मुद्दों के पुनर्निरीक्षण तथा उनके लिए प्रस्ताव सूत्रबद्ध करने के लिए पर्यावरण विकास का विष्वव्यापी आयोग (WCED) की स्थापना 1983 में गयी। जो पर्यावरण विकास की रणनीति तथा अन्य पहलुओं पर रिपोर्ट प्रकाषित करता है।

8.8 जलवायु परिवर्तन पर अन्तर सरकारी कार्यदल (Inter-Governmental Panel on Climate Change-IPCC)

IPCC संयुक्त राष्ट्र संघ के तहत एक वैज्ञानिक अन्तर सरकरी निकाय है। इसकी स्थापना 1988 में विष्व मौसम विज्ञान संगठन व संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा की गयी थी।IPCC जो रिपोर्ट देती है वह UNFCC द्वारा प्रकाशित की जाती है जो जलवायु परिवर्तन मुख्य अंतर्राष्ट्रीय संधि है।

8.9 वन्यजीव संरक्षण सोसाइटी (Wildlife Conservation Society)

अंतर्राष्ट्रीय वन्यजीवों एवं स्थानों के संरक्षण हेतु में एक संस्था 'वन्यजीव संरक्षण सोसाइटी' की स्थापना की गयी। जिसका मुख्यालय USA के न्यूयार्क में है। इस संस्था का लक्ष्य विष्व केष्षीर्ष 15 जैव विधिता वाले क्षेत्रों कासंरक्षण करना है जो संसार के 50 प्रतिषत से अधिक जैवविविधता को धारण करते हैं।

8.10 विष्व बैंक समूह की पर्यावरण रणनीतिः–

विकासषील देषों में गरीबी निवारण हेतु विष्व बैंक समूह; हरे भरे, स्वच्छ और प्रतिरोधक विकास को बढ़ावा देने के लिए एक महत्वाकांक्षी कार्ययोजना पर कार्य कर रहा है; जिसकी संज्ञा है :–

'पर्यावरण रणनीति 2012–22' इस रणनीति में विष्व बैंक के साथ–साथ उसकी सहयोगी संस्था IFC और MIGA जैसी बड़ी संस्थाओं की भी महत्वपूर्ण भुमिका है।

8.11 पर्यावरण संरक्षण हेतु पर्यावरण सम्मेलन एवं समझौतेः–

पर्यावरण की सुरक्षा या संरक्षण को नजर में रखते हुए विष्व स्तर पर चिंता जतायी गयी और विभिन्न समझौते विभिन्न देषों, संगठनों के मध्य होते रहते हैं, जिससे पर्यावरण संरक्षण को बनाये रखा जा सके। इससे संबंधित प्रमुख समझौते निम्न प्रकार हैः–

वर्ष 1972 में संयुक्त राष्ट्र ने स्टाकहोम में पर्यावरण से संबंधित एक सम्मेलन आयोजित किया था तब से लेकर इससे संबंधित सम्मेलन होते रहते हैं।

8.12 टोरेण्टों विष्व सम्मेलन (1988):–

1988 में टोरण्टों (कनाडा) में आयोजित पर्यावरणीय सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित कर सभी देषों से कहा गया कि वे वर्ष 2005 तक कार्बनडाई आक्साइड के उत्सर्जन में स्वेच्छा से 20 प्रतिषत कटौती करें ताकि ग्रीन हाउस प्रभाव को कम किया जा सके।

8.13 वियना सम्मेलन (1985):–

वियना संधि ओजोन परत की सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के लिए एक ढांचे के रूप में कार्य करता है। हालांकि इसमें क्लोरोफोरो कार्बन (CFC) के इस्तेमाल के लिए कानूनी रूप से वाह्यकारी न्यूनता के लक्ष्य षामिल नही है। वियना संधि ओजोन परत के संरक्षण के लिए एक बहुपक्षीय पर्यावरण समझौता है। इस पर 1985 में वियना सम्मेलन में सहमति बनी और 1988 में यह लागू किया गया। 196 देषों के साथ–साथ यूरोपिय संघ द्वारा इसे मंजूर किया जा चुका है।चूंकि 1970 के दौरान अनुसंधान ने संकेत दिया कि ये मानव निर्मित क्लोरोफ्लोरोकार्बन वायुमंडल में ओजोन अणुओं को कम कर रही या क्षति पहुंचा रही है। CFC, कार्बन, फ्लोरीन, क्लोरीन से बने स्थिर अणु होते हैं जिनका प्रयोग रेफ्रिजेरेटर जैसे उत्पादों में प्रमुखता से किया जाता था।ओजोन ह्रास से जुड़े खतरों में इस मुद्दे को विष्व जलवायु मुद्दों में से सबसे आगे कर दिया और विष्व मौसम विज्ञान संगठन और संयुक्त राष्ट्र जैसे संगठनों के माध्यम से

सहमति प्राप्त की। वियना कन्वेंषन ने 'मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल' के रूप में नियामक उपायों को बनाने के लिए आवष्यक रूप रेखा प्रदान की।

8.14 वियना कनवेन्षन के प्रमुख बिन्दु–

1. ओजोन परत पर प्रभावों के ज्ञान को बढाने के लिये विभिन्न संगठनों (जलवायु और वायुमण्डलीय) अनुसंधान को अन्तर्राष्ट्रय स्तर पर साझा करना।
2. ओजोन पर प्रतिकुल प्रभाव डालने वाले उत्पाद को नियंत्रित करना
3. सी0ओ0पी0 सी0एफ0सी0 उत्सर्जन को कम करने हेतु नयी नीतियों का सुझाव देना।
4. सी0ओ0पी0 और मान्ट्रियल प्रोटोकाल के तहत होने वाली बैठक में समन्यवय स्थापित करना।

वियना कनवेन्षन के आधार पर मान्ट्रियल प्रोटोकाल के तहत विभिन्न नितियों को लागू किया गया ज्ञातव्य है कि वियना सम्मेलन को विस्तृत रूप समझने के लिए मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल समझौता को समझना आवष्यक है।

8.15 मॉन्ट्रियल समझौता (1987):–

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल ओजोन परत के क्षीण करने वाले पदार्थों के बारे में (ओजोन परत के संरक्षण हेतु वियना सम्मेलन में पारित प्रोटोकॉल) अन्तर्राष्ट्रीय संधि है, जो ओजोन परत को संरक्षित करने के लिए बनाई गई है, जिन्हें ओजोन परत को ह्रास करने के लिए उत्तरदायी माना जाता है।

यह संधि 16 सितम्बर 1987 को हुआ तथा प्रभावी 01 जनवरी 1989 में हो गया। ज्ञातव्य है कि 16 सितम्बर 'ओजोन दिवस' के रूप में मनाया जाता है।ओजोन परत के क्षय को रोकने वाले ओजोन अनुकूल उत्पादों और जागरूकता जगाने के लिए मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल विषयों के महत्व के उल्लेख हेतु ही 16 सितम्बर को प्रत्येक वर्ष ओजोन दिवस मनाते हैं।

8.16 पृथ्वी षिखर सम्मेलन (1992):–

स्टाकहोम सम्मेलन की 20वीं वर्षगांठ मनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने रियो–डी जेनरो (ब्राजील की राजधानी) में 1992 में पर्यावरण और विकास सम्मेलन आयोजित किया। इसे 'अर्थ समिट' (Earth Summit) या पृथ्वी षिखर सम्मेलन भी कहा जाता है। इसमें सम्मिलित देषों में विकास (टिकाऊ विकास) के लिए व्यापक कार्यवाही योजना 'एजेण्डा 21' स्वीकृत किया।

इस सम्मेलन में वैष्विक सुरक्षा कोष बनाया गया जो ग्लोबल वार्मिंग को रोकने, जैव विविधता के संरक्षण एवं अन्तर्राष्ट्रीय जल संसाधनों के प्रदूषण नियन्त्रण में सहयोग देगा।

उल्लेखनीय है कि रियो–डी–जेनरो में यह निर्धारित किया गया कि सदस्य राष्ट्र प्रत्येक वर्ष एक सम्मेलन में एकत्रित होंगे तथा जलवायु संबंधित चिंताओं और कार्ययोजनाओं पर चर्चा करेंगे। इस सम्मेलन को कॉफ्रेस ऑफ पार्टीज (COP) की संज्ञा दी गयी। 1995 में पहला कोप (COP) सम्मेलन बर्लिन (जर्मनी) में आयोजित किया गया था।वर्ष 2021 में COP-26 सम्मेलन किया गया।

पृथ्वी सम्मेलन में सहमति के महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न है–

1. विष्व के देष पृथ्वी के वायुमण्डल के स्वास्थ्य और अखंडता को संरक्षित, सुरक्षित और पुनः स्थापित करने के लिए विष्वव्यापी साझेदारी की भावना से सहयोग करेंगे।
2. एक देष दूसरे देष को किसी भी प्राकृतिक दुर्घटना या आपातकालीन स्थितियों की सूचना तुरंत देगा।
3. राष्ट्रों के प्रभावी पर्यावरण विधानों का क्रियान्वयन करना चाहिए।

4. सभी लोगो के लिए सतत् विकास और जीवन की उच्च गुणवत्ता की प्राप्ति के लिए सरकारों को उत्पादन और उपभोग के निःसाध्य तारतम्य को कम करना तथा हटा देना चाहिए।

पृथ्वी षिखर सम्मेलन से संबंधित मुदद् निम्न हैं जिनको ध्यान में रखकर इसमें कार्यान्वयन किया जाता है–

I. जल के बढ़ते उपयोग और सीमित आपूर्ति का प्रबंन्धन करना।

II. जीवाष्म ईधन के उपयोग से बदलनें के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत जो वैष्विक जलवायु परिवर्तन से जुड़े हुए हैं।

III. उत्पादन के पैटर्न का व्यवस्थित निरीक्षण विषेष रूप से विषैले घटकों का उत्पादन जैसे पेट्रोल में लेड या रेडियोधर्मी रसायनों सहित विषैला अपषिष्ट।

IV. वाहनों के उपर अत्यधिक निर्भरता उत्सर्जन; षहरों में भीड़भाड़ और प्रदूषित हवा और धुँए के कारण होने वाली स्वास्थ्य समस्याओं को कम करने के लिए सार्वजनिक परिवहन माध्यमों पर निर्भरता।

8.17 प्रष्नोत्तरी (वस्तुनिष्ट)

1. रेड डाटा बुक प्रकाषित किया जाता है

क.1948

ख.1963

ग.1961

घ.1950

2. विष्व मौसम विज्ञान संगठन का मुख्यालय स्थित है

क. स्विटजरलैणड

ख. नैरोबी

ग. वियना

घ. इनमें से कोई नही

3. वियना सम्मेलन सम्बन्धित है

क. ओजोन परत

ख. जलवायु परिवर्तन

ग. ओजोन परत संरक्षण

घ. उपरोक्त सभी

4. पृथ्वी षिखर सम्मेलन आयोजित किया गया।

क. 1992 रिया–डी– जेनेरियो

ख. 1990 रियो–डी– जेनेरियो

ग. 1992 स्टाक होम

घ. 1992 स्विटजरलैण्ड

8.18 सारांषः– पर्यावरण संरक्षण हेतु किये जा रहे प्रयासो के लिये पूर्व में किये गये प्रयासो की जानकारी होना आवष्यक है। उसी प्रकार पर्यावरण संरक्षण में लगे विभिन्न अन्तर्राष्टीय संगठनों का आपसी समन्वय भी अति महत्वपूर्ण है। जैसे अन्तर्राष्ष्टीय संघ के तत्वाधान में आयोजित विभिन्न सम्मेलन बनाये गये

कार्यदल, कार्यक्रमों तथा रणनितियों पर विचार किया गया। साथ ही वियना सम्मेलन तथा पृथ्वी षिखर सम्मेलन तथा सम्मेलन के प्रावधानों को लागू कराने की आवष्यकता है, तथा भारत और फ्रांस के अन्तर्राष्ट्रीय सौर समझौतो को वैष्विक स्तर पर लागू करने तथा सादृष्य समझौते अन्य क्षेत्रों में भी करने के प्रयास होने चाहिए।

उत्तर–

1. ख. 1963
2. क स्विटजर लैण्ड
3. ग ओजोन परत
4. क.1992 रिया–डी– जेनेरियो

8.19 षब्दावली

1. संरक्षण–संरक्षण का अर्थ मानव हस्तक्षेप से उत्पन असंतुलन के कारण के उत्पन्न सम्स्या से बचाव।
2. अन्तर्राष्ट्रीय संघ– अन्तराष्ट्रीय स्तर पर किये जाने वाली प्रयासों के लिये एक संगठन।
3. कोज– पर्यावरण के लिये जुटायी गयी धनराषि
4. दुर्लभ– बहुत कम बचे जीवों तथा पादपों की प्रजातियां।
5. रेड डाटा बुक– विलुप्त, असंरक्षित तथा दुर्लभ जीवों व पादपों से सम्बन्धित किताब।
6. आयोग– पर्यावरण सम्बन्धित दायित्वों कार्यो इत्यादि से सम्बन्धित कार्य करने के लिये स्थापित लोगो का समूह।
7. सम्मेलन– किसी विषेष मुददे पर बात करने हेतु एक स्थान पर विभिन्न देषो का लोगो का जाना ।

8.20 संदर्भ ग्रन्थ सूची

एम. थामस एण्ड स्काट जे कैलन, 'इनवायरमेन्टल इकोनामिक्स एण्ड मैनेजमेन्ट' सिंगेंज पब्लिकेषन, 2013.

ए. कैथल एण्ड एस. कुमार, 'पर्यावरणीय अर्थषास्त्र' प्रकाषन केन्द्र लखनऊ–2020

झिंगन, एम. एल. रू " विकास का अर्थशास्त्र एवं आयोजन", वृंदा पब्लिकेशन्स प्रा. लि., दिल्ली, 2022

सिन्हा, वी. सी. : "आर्थिक संवृद्धि और विकास", मयूर पेपरबैक्स, नौएडा

Agarwal R- C- : Economics of Development and Planning Lakshmi Narayan Agarwal Agra

Taneja M- L- & Myer R- M- : "Economics of Development and Planning Vishal Publishing Co- Delhi

एस.एन.लाल– 'आर्थिक विकास तथा आयोजन' षिव पब्लिषिग हाउस प्रयागराज 2022

8.21 प्रष्नोत्तरी (विषयनिष्ठ)

प्रष्न–1. पर्यावरण संरक्षण हेतु किये जा रहे वैष्विक प्रयासों पर प्रकाष डालिये।

प्रष्न.2 पृथ्वी षिखर सम्मेलन की स्थापना मुख्य उददेष्यों पर विस्तृत चर्चा किजिए।

प्रष्न.3 वियना सम्मेलन की वर्तमान में क्या प्रासंगिकता है उत्तर दिजिये।